सिद्धेश्वर : अंकों से अक्षर तक

(जीवनी साहित्य)

लेखक
डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

सिद्धेश्वर : अंकों से अक्षर तक
लेखक - डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

सिद्धेश्वर: अंकों से अक्षर तक

(जीवनी साहित्य)

लेखक

डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

संपादकद्वय

जयप्रकाश मल्ल

मनोज कुमार

प्रकाशक

सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन

दिल्ली-92

सिद्धेश्वर: अंकों से अक्षर तक
(जीवनी साहित्य)

लेखक : डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार, पूर्व कुलपति
कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय
कामेश्वर नगर, दरभंगा, बिहार
75सी, पाटलीपुत्र कॉलोनी, पटना-800013
दूरभाष: 0612-2274383

संपादकद्वय: 1. जय प्रकाश मल्ल, परामर्शी, 'प्रहरी'
वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी, कार्यालय,
महालेखाकार (लेखा परीक्षा), बिहार, पटना-1
2. मनोज कुमार, संपादक, 'प्रहरी', वरीय लेखा परीक्षा
अधिकारी,कार्यालय महालेखाकार(लेखापरीक्षा),बिहार,पटना

प्रकाशक : सुधीर रंजन, सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन,
'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग,
दिल्ली-92, दूरभाष-011-22530652
मो.-9811281443,

(c) सुधीर रंजन, प्रकाशक, दिल्ली

मुद्रक : ....

शब्द-संयोजन : अमित कुमार,सुशीला सदन,रोड नं.-17,राजीव नगर,पटना

छायांकन : डॉ. शाहिद जमील, सी-84, बैंक रोड,
मस्जिद के नजदीक, पटना

प्रथम संस्करण : वर्ष 2018

पृष्ठ सं. : 256

मूल्य : छः सौ रुपए मात्र (Rs Six Hundred Only)

Sidheswar: Ankon Se Akshar Tak
Jeevani-Sahitya
Written by Dr. Brahmchari Surendra Kumar Price-Rs. 600/-

सिद्धेश्वर : एक नजर

पूरा नाम : सिद्धेश्वर प्रसाद

संक्षिप्त नाम : सिद्धेश्वर

पिता का नाम : स्व. इन्द्रदेव प्रसाद

माता का नाम : स्व. फूलझार प्रसाद

पत्नी का नाम : श्रीमति बच्ची प्रसाद

जन्म तिथि : 18 मई, 1941

जन्म स्थान : ग्राम+पत्र.-बसनियावाँ, भाया-हरनौत, जिला-नालंदा, बिहार(भारत)

शैक्षिक योग्यता : सन् 1962 में पटना विश्वविद्यालय से श्रम एवं समाज कल्याण विषय में स्नातकोत्तर

तकनीकी शिक्षा : सन् 1973 में भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग से एस.ए.एस. (Subordinate Accounts Service)

सरकारी सेवा : भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के कार्यालय, महालेखाकार, राँची एवं पटना में लेखा परीक्षक से प्रोन्नति प्राप्त करते हुए वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर छतीस वर्षो तक सेवा प्रदान करने के पश्चात् सन् 2000 के 31 मई से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर वृहतर एवं व्यापक समाज व राष्ट्रहित में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश।

सार्वजनिक सेवा : 1.भारतीय रेलवे के रेलवे हिंद्री सलाहकार समिति के सदस्य

2. बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष पद पर 15 सितंबर, 2008 से 14 सितंबर, 2011 तक कार्यरत।

अभिरुचि : समाज व साहित्य सेवा तथा पत्रकारिता, राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए संघर्षशील तथा रचनात्मक लेखन से जुड़ाव।

रचनाएँ प्रकाशित :1.सामाजिक-'आरक्षण' 'कल हमारा है', 'समता के सपने', 'आत्ममंथन', 'बिहार के कुर्मी (निबंध संग्रह)' एवं 'बिहार के कुर्मी (निर्देशिका)'

2.स्मृति-'यादें'(भोला प्र. सिंह 'तोमर' की स्मृति में)

3.हाइकु काव्य संग्रह-'पतझड़ की सांझ', 'सुर नहीं सुरीले', 'कवि और कविता'

4. सेन्र्यु काव्य संग्रह-'जागरण के स्वर', 'बुजुर्गों की जिंदगी'

5. काव्य संग्रह-'यह सच है'

6. जीवनी- 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा',

'डॉ. मोहन सिंह: एक तपस्वी मन'

7. शैक्षिक-'समकालीन यथार्थबोध'एवं 'समकालीन संपादकीय'

जीवनी-साहित्य : 1.'सिद्धेश्वर:व्यक्तित्व और विचार'-प्रो. रामबुझावन सिंह

2.'सिद्धेश्वर:अंकों से अक्षर तक' डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

रचनाएँ प्रकाश्य:साक्षात्कार-1.'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर', डॉ. बलराम तिवारी द्वारा संपादित

2. 'इंसानियत की धुँआती आँखें'

3. 'राष्ट्रीय राजनीति'

4. 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले'

5.'वैश्विक कूटनीति'

राजनीति : 'आम आदमी की आवाज'

आत्मकथा-'जीवन-रागिनी' तथा हाइकु में 'मेरी जीवन-यात्रा'

संस्मरण-1.'हमें अलविदा ना कहं' 2.'जो जीवित हैं हमारे जेहन में'

संपादन- 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' दो भाग में

सम्मान : देश के विभिन्न सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संगठनों द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित।

विदेश यात्रा : 13-15 जुलाई, 2007 तक अमेरिका के न्यूयॉर्क में आयोजित 8वें विश्व हिंदी सम्मेलन में बिहार सरकार की ओर से भारतीय प्रतिनिधिमंडल में शामिल होकर सम्मेलन के शैक्षिक सत्र में 'वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी' विषय पर आलेख पाठ एवं परिचर्या में सक्रिय भागीदारी।

संप्रति : राष्ट्रीय महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच, दिल्ली

संस्थापक संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली

संपर्क : 'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92

दूरभाष: 011-22530652, मो.-9431037221

'संस्कृति' ए-164, पार्क रोड, ए.जी. कॉलोनी, शेखपुरा, पत्रा.-आशियाना नगर, पटना-800025,

मो.-9431037221, मो.-9472243949

अनुक्रम

पृष्ठ

सिद्धेश्वर: एक नजर..3
अनुक्रम..5
प्राक्कथन..7
संपादकीय..14
नायक के दो शब्द..18
अभिमत: 1. प्रो.(डॉ.) युवराज देव प्रसाद....................24
2.श्री सुरेश कुमार सिन्हा....................26
3.श्री उमेश्वर प्रसाद सिंह....................29
4.श्री कुमार शैलेन्द्र....................31
शुभाशंसा: 1. प्रो.(डॉ.) उमेश शर्मा....................33
2. प्रो.(डॉ.) मधु धवन....................35
प्रकाशकीय..39

प्रथम अध्याय
अंकों की दुनिया

(1) लेखा एवं लेखा परीक्षा....................42
(2) लेखा परीक्षा (ऑडिट)....................48
(3) विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' का प्रकाशन....................51
(4) अंकों से सिद्धेश्वर जी की विदाई....................59

द्वितीय अध्याय
अक्षरों की दुनिया

1. सिद्धेश्वर जी का सच 62
2. सिद्धेश्वर जी का वक्त की पाबंदी एक सांस्कृतिक संवाद...80
3. सामाजिक सरोकार के साहित्यकार 82
4. संस्कृत बोर्ड को दिलाई एक राष्ट्रीय पहचान....................84
5. संस्कृत बोर्ड में बदलाव की बड़ी इबारत लिखी..............100

6. सिद्धेश्वर जी का सृजन-कर्म....106
7. साक्षात्कार विधा में बढ़ते कदम....111
8. सरस्वती के साधक....125
9. स्वाभिमानी शख्सियत....126
10. सिद्धेश्वर जी के व्यवहार व आदतें 129
11. नैतिक मूल्यों की रक्षा के पक्षधर 135
12. कर्मवादी सिद्धेश्वर:नाम से भी बड़े हैं जिनके काम....143
13. सिद्धेश्वर और हिंदी पत्रकारिता 149
14. सिद्धेश्वर जी की सादगी 154
15. भ्रष्टाचार के खिलाफ एक निडर नायक 157
16. अदम्य जिजीविषा के विनम्र विचारक....165
17. इंसानियत के दीवाने 169
18. सोच, स्वभाव और व्यक्तित्व में आंतरिक सामंजस्य 170
19. उम्र नहीं होती हौसले की 174
20. जीवंत साहित्यिक एवं सांस्कृतिक धारा के संगम 176
21. स्वच्छ राजनीति की चाहत 182
22. शिष्टाचार जीवन का दर्पण 186
23. सिद्धेश्वर जी की व्यापक दृष्टि 187
24. 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' का संपादन....195
25. यात्रा-संस्मरण....198
26. काशी की धर्म-यात्रा....199
27. राष्ट्रभाषा हिंदी और सिद्धेश्वर जी की अमेरिकी यात्रा....202
28. राजनीति पर विविध व्यंग्य-वक्रोक्तियों में अभिव्यक्ति....234
29. स्वयं गढ़ रहे तकदीर 254
30. खुशहाल दांपत्य जीवन का राज 256

प्राक्कथन

डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

प्रस्तुत पुस्तक के नायक सिद्धेश्वर जी ने अपने जीवन के छत्तीस वर्ष अंकों की दुनिया में गुजारे हैं। इसलिए सर्वप्रथम अंकों पर दृष्टि डालना हमारा दायित्व हो जाता है। भारत-विद्या के प्रख्यात अस्ट्रियाई-जर्मन विद्वान मॉरिट्ज विंटरनिट्ज ने तीन खंडों में 'भारतीय साहित्य का इतिहास' लिखा है जिसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है। डॉ. विंटरनिट्ज ने अपने इस ग्रंथ में कहा है कि भारतीय कथा, साहित्य की सबसे बड़ी देन है, लेकिन डॉ. विंटरनिट्ज के इस कथन को थोड़ा सुधार कर सुविख्यात विज्ञान लेखक गुणाक मुण्ठे ने कहा है, "साहित्य के क्षेत्र में संसार को भारत की सबसे बड़ी देन है-उसका कथा साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में संसार की सबसे बड़ी देन है- भारतीय अंक पद्धति और भारतीय अंक संकेत।" आज हम अपनी सभी गणनाओं में सिर्फ दस अंक संकेतों का इस्तेमाल करते हैं। ये दस अंक संकेत हैं-1,2,3,4,5,6,7,8,9,0,केवल दस चिह्न। इन दस अंक संकेतों से हम किसी भी संख्या को व्यक्त कर सकते हैं। इनमें इस बड़ी से बड़ी संख्या लिख सकते हैं। ऐसी है इस संकेतों पर आधारित अंक पद्धति जिसकी खोज भारत में हुई और यह भारत का अपना मौलिक अविष्कार है। निकोलस कॉपर्निकस ने वर्ष, दिन और तारीख को सूचित करने के लिए रोमन अंकों का उपयोग किया है, मगर बड़ी-बड़ी संख्याएँ लिखने के लिए उन्होंने भारतीय अंकों का ही प्रयोग किया है, उनके ग्रंथ की सारी सरणियाँ भारतीय अंकों में हैं। आज सारे संसार में जिस अंक पद्धति का इस्तेमाल होता है, वह भारतीय अंक पद्धति है। यही है विज्ञान के क्षेत्र में भारत की संसार को सबसे बड़ी देन। भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग में छत्तीस वर्षों तक सिद्धेश्वर जी इसी अंक तक पद्धति से खेलते रहे हैं जिसका लेखा-जोखा यहाँ प्रस्तुत है।

अंकों का जीवन में काफी महत्व है। चाहे सरकार का बजट हो या घर परिवार का संगठन हो या संस्थान का, रुपए-पैसे का आकलन करना होगा। और जब रुपए-पैसे की बात आती है, अंकों से वास्ता पड़ ही जाता

है। इसी प्रकार दूरभाष की संख्या हो या मोबाइल की, घर की संख्या हो या गाड़ी की, सभी में अंकों की दरकार होती है। यही नहीं, इसी अंक की वजह से जीवन में उतार-चढ़ाव, भावों की अभिव्यक्ति, रिश्तों का सहयोग, आदर-सम्मान, यश-कृर्ति, जमीन-जायदाद, कारोबार या व्यापार सब में अंक अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। छत्तीस वर्ष अंकों की दुनिया में गुजारने के बाद सिद्धेश्वर जी आज अक्षरों से खेल रहे हैं। यह पुस्तक '**सिद्धेश्वर:अंकों से अक्षर तक**' में सिद्धेश्वर जी के अबतक के अंकों से अक्षर तक गुजरने के विवरण हैं जिससे इनके समस्त जीवन की झलक मिलती है। अंकों और अक्षरों के माध्यम से हमने इनके समग्र जीवन की उपलब्धियों तथा उतार-चढ़ाव का आकलन किया है, उनके खट्टे-मीठे अनुभवों को संजोया है। साहित्य, समाज, संस्कृति और पत्रकारिता के प्रति समर्पित तथा चिंतन की प्रमुखता से आलोकित सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व का समग्र मूल्याँकन तो एक किताब में संभव नहीं फिर भी उनके सम्मान स्वरूप मैंने एक छोटा सा प्रयास किया है।

अंकों पर चर्चा करने के बाद हम अक्षर पर भी थोड़ी बातचीत करें, क्योंकि सिद्धेश्वर जी ने अंकों की दुनिया से गुजरते हुए आज वह अक्षर से खेल रहे हैं। अक्षर से ही शब्द बनते हैं और अक्षर वह है जिनका क्षरण न हो। अक्षर से बनने वाले शब्द पर संकट अनुभव किए जाने के बाद भी लगातार उस शब्द का सृजन और उत्पादन हो रहा है। हालांकि यह भी सही है कि सिर्फ साहित्य में ही नहीं, सामाजिक जीवन में भी शब्द की गरिमा का बड़े पैमाने पर स्खलन हुआ है। कारण कि मीडिया खासतौर पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने शब्द पर अधिपत्य कायम कर लिया है।

शताब्दियों ने स्मृति की अनगिनत परतों में सुरक्षित होकर शब्द निरंतर अपने अर्थ की तलाश में जुटा रहा। यह तलाश तब तक जारी रही जब तक वाचिक परंपरा की अनाग्रही और उदार सामाजिकता जीवित रही। शब्द मनुष्य के लिए बीज रूप में परिणत होते हैं। शब्द के इस विलक्षण सामर्थ्य की वजह से ही संभवत: उसे ब्रह्म कहा गया है। संस्कृतियों ने शब्द को अर्थ प्रदान किए, स्मृतियों ने अर्थ का विस्तार और सृजन किया। उसे कल्पसृष्टि का वैभव दिया, पृथ्वी के एक प्राणी मनुष्य को अपरिमेय सृष्टि की विराट चेतना से जोड़ा और उसके जीवन धर्म, कर्मकांड और उसके सृजन को सि[illegible]।

ज्ञान और तकनीक से अपेक्षाकृत उन्नत स्तरों पर संक्रमण के

फलस्वरूप समाज शब्द की भूमिका बदलने लगी। तकनीक ने उस पर निरंतर प्रहार किया। फिर भी लिखित शब्द की ऊर्जा से नवजागरण की संपूर्ण चेतना परिचालित हुई और भारतीय भाषाओं में गद्य का प्रवर्तन हुआ। इसी गद्य की प्राणवायु में आरंभिक पत्रकारिता ने अपने सांसें संजोई। आज उसी शब्द की रचनात्मकता के क्षरण के वक्त ज़ब रचनात्मक शब्द सृजनात्मक शब्द को विस्थापित करने पर तुला है सिद्धेश्वर जी अपनी संपूर्ण क्षमता के साथ शब्द की गरिमा और सौंदर्य को बरकरार रख रहे हैं साहित्य के माध्यम से। अब तो साहित्य के अत्यंत सीमित समाज से बाहर आकर शब्द व्यापक जन समूह को संबोधित होता है। अक्षर आत्मीयता बढ़ाने के सर्वश्रेष्ठ साधन होते हैं और आत्मीयता बढ़ाने के लिए पाँचों इंद्रियों में एकरूपता लाने की जरूरत होती है।

वस्तुतः शब्द साहित्य का मूल निवासी है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में शब्द न तो उच्चतर स्थिति हासिल करता है और न सार्थकता। साहित्य में शब्द की अपूर्व काव्य-सृष्टि चरितार्थ होती है। सिद्धेश्वर जी अपनी कल्पना की विराट संभावनाओं से शब्द को ऊर्जस्वित कर रहे हैं। कल्पना उनकी मौलिक शक्ति है जिसके बल पर वह साहित्य प्रस्तुत करते हैं। इनका मानना है कि शब्द का चाहे जितना अवमूल्यन हो, उसका विनाश संभव नहीं है। सभ्यता के साथ शब्द का जन्मजन्मांतर का संबंध है। हमारी सभ्यता ने उसे मीडिया की संगति में रख दिया है और मीडिया ने चाहे उसका जो नुकसान किया हो, साक्षर समाज के दायरे से उसे बाहर निकाला है, और उसके संबोध्य समाज का विस्तार किया है। ऐसे शब्द की प्रतीक्षा हमेशा बनी रहेगी और ध्वनि अंतिम आदमी तक पहुँच सकेगी, ऐसा उनका विश्वास है।

अक्सरहा मैंने महसूस किया है कि हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के अतिरिक्त जिस सलिके से सिद्धेश्वर जी ने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड में काम किया, लोगों में यह जानने की उत्सुकता है कि ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण किस पृष्ठभूमि में हुआ, किन परिस्थितियों से होकर इन्हें गुजरना पड़ा, कौन से तत्व इनके व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक हुए आदि। उनकी जिज्ञासाएँ अनेकानेक रूपों में प्रकट होती रही हैं, क्योंकि मुझे इनके सन्निकट रहने का अवसर मिला है इसलिए मुझे हर समय इन जिज्ञासाओं का सामना करना पड़ा है। ये कुछ ऐसी बाते थीं, जिसने मुझे सिद्धेश्वर जी पर पुस्तक लिखने के लिए प्रेरित किया। मेरे मन में यह विचार घर कर गया कि मैं अपने आदरणीय भाई सिद्धेश्वर जी पर ऐसी पुस्तक लिखूँ, जो लोगों की

जिज्ञासाओं को शांत कर सके और उनके संकल्प और दूरदृष्टि, उनकी सफलताएँ और असफलताएँ, उनकी बुद्धिमानी, उनका कठोर परिश्रम और धैर्यशीलता, सहिष्णुता, विश्वसनीयता, वचनबद्धता, बोर्ड और संस्कृत के प्रति उनका समर्पण और मानवीय जीवन के प्रति उनकी दार्शनिक दृष्टि, सामाजिक सरोकारों से जुड़े साहित्य की रचना, एक जीवित इतिहासकार का साक्षात्कार, अंकों की दुनिया में छत्तीस वर्ष बिताए उनके जीवन की विस्मयकारी उपलब्धियों, सफलताओं और लोकप्रियता के कथानकों का प्रस्तुत पुस्तक में हृदयग्राही वर्णन है।

पहहत्तर की उम्र से गुजर रहे सिद्धेश्वर जी न केवल हिंदी साहित्य को अपने लेखन से समृद्ध कर रहे हैं, बल्कि दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' तथा बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना द्वारा प्रकाशित संस्कृत एवं हिंदी की द्वैभाषिक पत्रिका-'वाग्वन्दना' का संपादन कर संस्कृत एवं हिंदी भाषाओं के प्रचार-प्रसार तथा उसके साहित्य की अभिवृद्धि कर लोगों के लिए प्रेरणा-स्रोत बने। यही नहीं, पिछले तीन दशकों से पटरी पर से उतरे संस्कृत बोर्ड को पटरी पर लाने का उन्होंने प्रयत्न किया। इस पुस्तक का उद्येश्य लोगों, खासतौर पर युवा रचनाकारों एवं सजग नागरिकों को सिद्धेश्वर जी के विचारों एवं सिद्धांतों से परिचित कराना है।

हालांकि सिद्धेश्वर जी का संपूर्ण जीवन साहित्य, पत्रकारिता, संगठन तथा राजनीति के इर्द-गिर्द कई आयामों में पसरा हुआ है, फिर भी इस पुस्तक के जरिए उनके सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का पूरा ब्यौरा प्रस्तुत करने का दावा कतई नहीं हैं, वस्तुतः सिद्धेश्वर जी ने अबतक के अपने जीवन में जो प्रयोग किए हैं, उसके सागर से कुछ मोती चुन लाने का प्रयास है। इसे पढ़कर अगर एक भी व्यक्ति इनके रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित होता है, तो निश्चित रूप से इस पुस्तक की सार्थकता सिद्ध होगी। समय की कसौटी पर खरे उतरे सिद्धेश्वर जी के विचार और कर्म सामयिक बने रहेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

मेरी समझ से सिद्धेश्वर जी का जीवन और इनके कर्म ही संदेश हैं और वे ही हमारे अंत:करण के लिए चुनौतियाँ हैं, क्योंकि उन्होंने विचार-विमर्श की प्रक्रिया को प्रभावित किया है। इतिहास मिथकों के आसपास बनते-बिगड़ते रहे, पर लेखन और कर्म में जिस शाश्वत विचार की बात होती है, वह है जीवन के प्रति एक समग्र दृष्टि की अभिव्यक्ति। यथार्थ ही सब कुछ नहीं होता है, बल्कि इसके परे भी एक जीवंत दुनिया होती है।

प्रस्तुत पुस्तक सिद्धेश्वर जी की इसी जीवंत दुनिया की अभिव्यक्ति है जिसे हमने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने की कोशिश की है। सही मायने में यह मात्र अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि दोनों को जोड़ने वाला वह मंत्र है जो आम जन के करीब ले जाता है और जिसमें जीवन का स्पंदन सुनाई पड़ता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि समाजवादी चिंतक, सर्जक और भारतीय संस्कृति के उपासक सिद्धेश्वर जी के जीवन में यथार्थ और परंपरा दोनों का समन्वित रूप मिलता है। हमारा यह प्रयास रहा है कि उनके व्यक्तिगत एवं साहित्यिक मान्यताओं का उद्‌घाटन करते हुए सिद्धेश्वर जी के सामाजिक एवं सांस्कृतिक चिंतन को उजागर किया जाए। इसके माध्यम से उनकी राष्ट्रीय भावना भी स्पष्ट होती है और साक्षात्कार से सिद्धेश्वर जी के जीवन और साहित्य की अनेक परतें खुलती हैं। उनके दृढ़ और शक्तिशाली व्यक्तित्व के अनुरूप उनका साहित्य काफी समृद्ध एवं संपन्न है उसका रसास्वादन किसी अमृत-पान से कम संतोष देने वाला नहीं है। इनका चिंतन हमारी सांस्कृतिक धरोहर है जो पाठकों के लिए अत्यंत उपयोगी है। इससे खासकर साहित्य से जुड़े लोग विशेष रूप से लाभान्वित हो सकते हैं। इसमें आजकल के बदले हुए सामाजिक एवं सांस्कृतिक विडंबना की झलक भी देखने को मिलती है। सिद्धेश्वर जी कहीं भी एकांगिक नहीं हैं। आपकी चिंता पूरे समाज व राष्ट्र के लिए है। सत्य अपना पूरा मूल्य चाहता है। उसे पाने का सीधा और एकमात्र रास्ता उसकी कीमत चुका देना ही है। वैसे भी कहा जाता है कि जब साधक साधना करते-करते साध्यमय हो जाता है, तो वह संस्कृति बन जाता है। सचमुच में सिद्धेश्वर जी साहित्य, समाज और राष्ट्रीयता के संरक्षक के रूप में चलती-फिरती संस्कृति बन गए हैं।

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्याँकन करते वक्त मैंने इस बात का ध्यान रखा है कि उनके चिंतन और उनकी रचनाधर्मिता में जागतिक विषमता के प्रति गहरा सरोकार है, सामाजिक सरोकार से इनका लेखन लबालब है। जिस विषमता की आधुनिक चिंतक विसंगति कहते हैं, उसके आयामों एवं रूपों की गहरी जानकारी उनके लेखन में है। सिद्धेश्वर जी की अधिकांश रचना-विधा निबंध है। वे मूलतः निबंधकार हैं और मेरी समझ से वे हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ व्यक्तिपरक निबंधकार हैं। उनके निबंधों का विषय-क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। निबंध की विधा ही ऐसी है कि उसमें सब कुछ समा सकता है। निबंध विधा की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमें लेखक का आंतरिक व्यक्ति सर्वाधिक व्यंजित होती है। सिद्धेश्वर जी

गंभीर विद्वता का बोझ क्षण-भर में उतारकर सामान्य जन की भाँति सोंच -विचार अभिव्यक्त कर सकते हैं और करते हैं।

सिद्धेश्वर जी हिंदी के साथ-साथ सभी भारतीय भाषाओं के प्रति सम्मान का भाव रखते हैं। आखिर तभी तो हिंदी की उन्नति और प्रगति का भारत की अन्य भाषाओं की प्रगति और उन्नति के संदर्भ से देखने का आग्रह करते हैं। संभवतः इसी वजह से वे दक्षिण भारत के भाषा-भाषियों और साहित्यकारों के बीच लोकप्रिय एवं स्वीकार्य बने हुए हैं।

मेरा यह प्रयास रहा है कि सिद्धेश्वर जी के अतीत, वर्तमान और भविष्य को रेखांकित करने वाली इस कृति में राग-द्वेष से ऊपर उठकर उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का विस्तृत और बहुकोणीय विवेचना की जाए, ताकि इनके विचारों, भावनाओं और चेतना से पाठक सीधा-सीधा जुड़ सके। मेरा यह प्रयास रहा है कि सिद्धेश्वर जी के जीवन के सभी पक्षों और रागों को संजीदगी से उकेरा जाए।

सिद्धेश्वर जी से साक्षात्कार को 'प्रहरी' के संपादक मनोज कुमार द्वारा काफी मेहनत से और व्यक्तिगत, साहित्यिक, सांस्कृतिक आदि विषयों से संबंधित बड़े दिलचस्प सवाल के प्राप्त उत्तर संस्कृत बोर्ड द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'वाग्वन्दना' और स्मारिका 'संस्कृत संजीवनी' में प्रकाशित किए जा चुके हैं, मगर सिद्धेश्वर जी के संस्कृत बोर्ड से मुक्त होने के बाद पटना तथा दिल्ली सहित अनेक शहरों के पत्रकारों एवं प्रबुद्धजनों द्वारा तकरीबन सोलह विषयों से संबंधित पूछे गए ढेर सारे प्रश्नोत्तर को संकलित कर उन्हें पुस्तक का रूप दिया गया है जिसकी चर्चा भी हमने प्रस्तुत पुस्तक में की है, क्योकि हमारा विश्वास है कि इनके मार्मिक एवं तल्ख उत्तर समाज के लिए मशाल का काम करेंगे। कारण कि उनके सामने प्रस्तुत करने के बाद उनसे उत्तर प्राप्त कर उन्होंने रोचक और पठनीय बनाया है और साक्षात्कार को बहुअर्थमय माध्यम बना दिए जाने की वजह से साक्षात्कार सिर्फ प्रश्नोत्तर भर नहीं रह गए हैं, वे वाद-विवाद और संवाद की सार्थकता भी अर्जित करते हैं और साहित्य की अन्य विधायों की तरह रस प्रदान करने लगते हैं। इसे पढ़ने पर सिद्धेश्वर जी के अलावा भी दुनिया जहान की ढेरों जानकारियाँ मिलती हैं, क्योंकि सवालों का जवाब देते-देते सिद्धेश्वर जी और भी बहुत कुछ कह देते हैं।

जीवन के अनुभवों, संबंधों, घटनाओं और विचारधर्मिता को साधना के फलक पर सहजता से उतारना कठिन कार्य है। संबंधों को जीना और उसे

निर्वैयक्तिक होकर लिखना और भी मुश्किल है। और तब यह और गुरुत्तर हो जाता है जब इन पर जीवनी-साहित्य लिखना हो।

खैर! हमारी चेष्टा यही रही है कि इसके निर्धारित पृष्ट संख्या की सीमा के अंदर सिद्धेश्वर जी के बारे में उनके अंकों से अक्षर तक की यात्रा की पूरी चर्चा शामिल कर ली जाए। हम यही मानकर चलते हैं कि बड़े भाई प्रो. रामबुझावन बाबू ने 'सिद्धेश्वरः व्यक्तित्व एवं विचार' नाम्नी पुस्तक लिखकर सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व और विचार को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने की जो शुरुआत की थी उसे हमने थोड़ा और आगे बढ़ाया है। शायद बाद का कोई और लेखक एवं संपादक और अधिक समय लेकर और अधिक हिम्मत जुटाकर सिद्धेश्वर जी पर और अधिक विस्तृत एवं शेष जानकारी प्रस्तुत कर सकेंगे। वैसे इन्हें और भी अपनी शेष जिंदगी में बहुत कुछ करना बाकी है और लोगों की इनसे अपेक्षाएँ भी हैं। बहरहाल मैं इतना जरूर कहना चाहूँगा कि इतने कम समय में सिद्धेश्वर जी की सारी उपलब्धियों का बखान करना संभव नहीं था, फिर भी हमारा मानना है कि यह भी कम बड़ी उपलब्धि नहीं रही है। यह तो कहिए कि इसके संपादक द्वय 'प्रहरी' के परामर्शी एवं वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी जयप्रकाश मल्ल और मनोज कुमार ने इतने कम समय में इतना बड़ा काम किया जिनकी सहायता के बिना यह संभव नहीं था। सिद्धेश्वर जी के सहकर्मी के.एन.पी. सिन्हा एवं पी.के.कर्ण के सुझाव काम आए हैं। ये सभी हमारे धन्यवाद और आभार के पात्र हैं। इसके नायक सिद्धेश्वर जी के प्रति भी हम अपना आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने इस योजना को अपनी स्वीकृति दी और इसे पूर्ण करने में तथ्य उपलब्ध कराए। सभी सामग्रियों के शब्द संयोजन करने में राजेश कुमार और अमित कुमार, प्रूफ देखने में सुरेश कुमार सिन्हा तथा अन्य कार्यों में जैसे साज-सज्जा के अलावा आवरण साज-सज्जा में डॉ. शाहिद जमील के सहयोग के लिए मैं आभारी हूँ।

संपर्क-75 सी. पाटलीपुत्र कॉलोनी,
पटना-13, दूरभाष: 0612-2274383

डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार
पूर्व कुलपति
कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय
कामेश्वर नगर, दरभंगा

संपादकीय

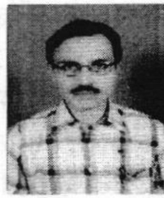

जय प्रकाश मल्ल मनोज कुमार

संस्कृत और संस्कृति के प्रति समर्पित शिक्षा शास्त्री डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार जी द्वारा विरचित जीवनी साहित्य 'सिद्धेश्वर: अंकों से अक्षर तक' पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमदोनों अत्यंत गर्व का अनुभव कर रहे हैं। साहित्य, समाज और पत्रकारिता की सेवा करते हुए इसके नायक सिद्धेश्वर जी अपने जीवन के पचहत्तर वर्षो की सारस्वत यात्रा पूरी कर ली है। इनकी इस साहित्यिक एवं सांस्कृतिक यात्रा में शामिल होकर हमदोनों को भी स्नेहिल सान्निध्य प्राप्त है और समय-समय पर अपने सुझावों से हमारा मार्गदर्शन करते रहे हैं और आज भी कर रहे हैं। मुझे यह कहते हुए खुशी हो रही है कि अपनी सेवावधि में जिस विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' के सिद्धेश्वर जी संस्थापक-संपादक रहे, आज उसके संपादन का दायित्व हमदोनों के कंधे पर है इसलिए हम इनके योगदान और सहयोग को कैसे भूल सकते हैं?

यों तो, खासतौर पर इस जीवित इतिहास से साक्षात्कार का जिम्मा हमदोनों में से एक को दिया गया था, महालेखाकार कार्यालय में सिद्धेश्वर जी के साथ सहकर्मी के रूप में बिताने की वजह से इनकी छत्तीस वर्षो के अंकों की दुनिया के तथ्यों को जुटाने के साथ-साथ पुस्तक के संपादन की जवाबदेही भी हमदोनों को दी गई जिसे हमलोगों ने सहर्ष स्वीकार किया इसलिए कि इसी बहाने हमदोनों को भी सीखने का एक सुनहला अवसर मिला।

सिद्धेश्वर जी का सदैव यह प्रयास रहा कि युवा लेखकों एवं पत्रकारों की नई पीढ़ी तैयार की जाए, क्योंकि देश का भविष्य नई पीढ़ी पर निर्भर है और उनसे काफी आशाएँ हैं। सिद्धेश्वर जी के बढ़ते कदमों के साथ-साथ हम लोग भी अपनी सारस्वत यात्रा जारी रख सकें, इसी शुभकामना की चाहत इनसे है।

इस पुस्तक में सिद्धेश्वर जी के आस-पास के अविस्मरणीय जिंदगी के ताने-बाने को पाठकों के समक्ष रखने का प्रयास किया गया है।

इसमें लेखक के द्वारा व्यक्त विचारों में पाठकों को सिद्धेश्वर जी का नया रूप और नया अंदाज मिलता है जो अपनी विशिष्ट शैली की वजह से पाठकों को नई ताजगी का अहसास कराता है। उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने कहा था जिस जीवन के बारे में लिखना चाहते हो, वह जीवन जीकर देखो। डॉ. ब्रह्मचारी जी ने भुगते हुए जीवन के बारे में प्रभावशाली रूप से तब लिखा है जब वे पिछले कई वर्षो से निकट रहकर इनके जीवन के यथार्थ को शब्द रूप देने में इन्हें काफी सफलता मिली है।

इस पुस्तक के साथ-साथ सिद्धेश्वर जी ने अपनी सारस्वत यात्रा के पचहत्तर वर्ष पूरे कर लिए हैं वह न केवल हमारे लिए, बल्कि उन समस्त साहित्यकारों एवं पाठकों के लिए भी गौरव का क्षण है जो पूरे मर्म से इनके साथ जुड़े रहे हैं।

व्यावसायिकता की अंधी दौड़ में जब हिंदी की तमात अच्छी पत्रिकाएँ एक के बाद एक दम तोड़ रही हों, सिद्धेश्वर जी के संपादकत्व में दिल्ली से प्रकाशित 'विचार दृष्टि' का एक दशक से अधिक अवधि तक टिके रहना क्या यह आश्चर्य की बात नहीं? हमलोग तो इनके साहस और परिश्रम को दाद देते हैं और यह हमारी चिंतन परंपरा और वैचारिक सोच का दस्तावेज बन गई है। जहाँ तक सिद्धेश्वर जी के लेखन का संबंध है इनके लेखन में सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक विद्रूपताओं को बड़ी बेबाकी से उकेरा गया है। दरअसल, इनका परिवर्तनशील व्यक्तित्व, गतिमान और जीवंतता का पर्याय है, इसलिए इस सत्य से युक्त जीवन को उन्होंने पूरी शिद्दत से जिया है और वास्तव में इनके जीवन के समस्त क्रियाकलापों के पीछे इनकी धर्मपत्नी श्रीमति बी. प्रसाद की भूमिका रही हैं।

इंसान के व्यक्तित्व के अनगिनत पक्ष होते हैं। लेखक ने सिद्धेश्वर जी के विराट व्यक्तित्व को निर्मित करने वाले सद्‌गुणों, मूल्यों एवं कार्यो को ही जीवनी में नहीं इंगित किया है, बल्कि इनकी विनम्रता और खासकर संस्कृत शिक्षा बोर्ड के कार्यकलापों को बड़े चातुर्य से चलाने में उन्होंने जिस सहृदयता और आद्रता का परिचय दिया है उसे अपने लेखन में बड़ी सहजता से पिरोया है। कहना नहीं होगा कि उनके विचारों, जीवनशैली, मान्यताओं, कार्यो और साहित्य सृजन को बड़े बेबाक, जीवंत और निरपेक्ष होकर लिखने की कोशिश लेखक ने की है। हो सकता है इसमें मनुष्यजनित दुर्बलताएँ आ गई हों, किंतु सृजन का आरंभ और अंत कहीं भी दुराव-छिपाव या मुखौटे-परक नहीं लगते। सिद्धेश्वर जी के बारे में लिखते समय लेखक ने

ऐसा ईमानदार चित्र खींचा है जिसे नकारना किसी के बूते की बात नहीं है। यह जीवनी विधा की ही विशेषता है कि आग को आग और पानी को पानी महसूस कर, स्पर्श कर पूरे आग्रह या दुराग्रह होकर, डुबकर लिखा जा सकता है। इस जीवनी में लेखक ने सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के समाजधर्मी फलकों को ही नहीं दर्शाया है, बल्कि नवयुगीन राष्ट्र प्रवृत्तियों को जीवनी का बिंदु बनाया है। लेखक ने इसमें सिर्फ उनके जीवन से जुड़ी घटनाओं और क्रियाकलापों को क्रम से सामने ही नहीं लाया है, बल्कि अनेक चरित्रों, रीति-रिवाजों, मध्यवर्गीय जीवन की मान्यताओं, जीविका से जुड़े जटिल प्रश्नों को पार करते हुए एक खास तरह के उतार-चढ़ाव को जीवनी-साहित्य के रूप में प्रस्तुत किया है। डॉ. ब्रह्मचारी जी ने नायक को सिद्धेश्वर जी कहकर संबोधित किया है, कहीं भी निकटता के घेरे में सच्चाई से दूर नहीं जाने दिया है। सिद्धेश्वर जी को उन्होंने भावुक और अत्यंत संवेदनशील कहा है। इसी स्पष्टता के चलते यह जीवनी 'बनावटीपन' से दूर है।

पुस्तक में वह अध्याय भी है जिसमें पारिवारिक जीवन सामने आता है, और वे अध्याय भी हैं जहाँ तत्कालीन वातावरण उभरा है। पटना और दिल्ली सिद्धेश्वर जी के कर्मस्थल हैं। इन्हीं जगहों पर उन्होंने राजनीति, साहित्य, पत्रकारिता और समाज के विविध पक्षों को प्रभावित किया। पुस्तक में सिद्धेश्वर जी से जुड़े ऐसे अनेक प्रसंग हैं जो अपने से जोड़ लेते हैं और सिद्धेश्वर जी के लेखकीय मन का परिचय देते हैं। पाठक यदि किसी प्रकार के पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं है, या स्वयं अपनी महान प्रतिभा से आक्रांत नहीं है साथ ही हर बात में अपनी प्रशंसा के शब्द खोजकर दूसरे पर चस्पां करने की आदत से लाचार नहीं है तो कहा जा सकता है कि-'सिद्धेश्वर:अंकों से अक्षर तक' का एक-एक पृष्ठ आत्मीयता का कुछ इस प्रकार परिचय देता है कि मन अपनत्व से भर जाता है। दरअसल, सिद्धेश्वर जी अपने प्रबुद्ध व्यक्तित्व और सुचारू-संपन्न स्वभाव से किसी पर भी छाप छोड़ने में समर्थ हैं, लेकिन यह भी सच है कि सिद्धेश्वर जी हर एक को 'मुँह' नहीं लगते हैं और उन्हीं से जुड़ते हैं जिनमें वह बौद्धिकता को अपने अनुकूल पाते हैं। और जिनमें प्रतिकूल पाते हैं उनसे पींड छुड़ा लेते हैं। इंसानियत को वह व्यवहार और लेखन, दोनों में सम्मान देते हैं। भावुक मन कई बार उतनी दूर तक नहीं सोच पाता है जहाँ हिंदी की साहित्यिक राजनीति या कहा जाए ओछापन घात लगाए रहता है। इसलिए कई बार पछतावे की ध्वनि भी उभरती है। जिन्हें वे अपना मानते या कहा जाए जिन्हें लेखक या शुभेच्छु

मानकर सम्मान देते हैं उन्हीं से जब चुभन मिलती है, तो तिलमिलाहट होना स्वाभाविक है। लेकिन इस चुभन को सिद्धेश्वर जी आमतौर पर भूल जाते हैं। इस भूल जाने की प्रवृत्ति ने ही उन्हें रचनात्मक लेखन से बराबर जोड़े रखा है। जिजीविषा गहराई से जुड़ रही है, वरना जीवन में ऐसे भी उतार-चढ़ाव आए तब आदमी सहम जाता है, ठहर जाता है। सिद्धेश्वर जी तो आगे बढ़ते ही जा रहे हैं। रचनात्मकता कलम से बराबर जुड़ी है। जो भी षड्यंत्र के घिराव सामने आते हैं उसे कपड़ों पर जमी धूल समझकर झार देते हैं। तनाव कई अवसरों पर भोगा, मगर उसे सीने से लगा बैठे नहीं रहे। इसी ने एक अच्छे रचनाकार की पहचान को सार्थक किया है।

अगर कहा जाए कि सिद्धेश्वर जी को केंद्र में रखकर डॉ. ब्रह्मचारी जी ने एक जीवित इतिहास लिख दिया है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। पढ़ने वाले के पास अगर हृदय है, दृष्टि है और साहित्य और पत्रकारिता से लगाव है, तो यह पुस्तक अविस्मरणीय है, अनूठा है इसे स्वीकार करना होगा।

मनोज कुमार
संपादक 'प्रहरी'

जय प्रकाश मल्ल
परामर्शी 'प्रहरी'

कार्यालय, महालेखाकार (लेखा परीक्षा) बिहार,
वीरचंद पटेल पथ, पटना

नायक के दो शब्द

सिद्धेश्वर

आज से चार साल पूर्व जब बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के निदेशक प्रो. रामबुझावन सिंह जी ने मेरे जीवन पर आधारित पुस्तक-'सिद्धेश्वर: व्यक्तित्व एवं विचार' लिखने की शुरुआत की थी, तो मैंने उस वक्त भी उनसे कहा था कि मुझे शेष जीवन में अभी बहुत कुछ करना बाकी है इसलिए आपकी यह पुस्तक अधूरी रह जाएगी अथवा इसका दूसरा खण्ड प्रकाशित करना पड़ेगा। इसके उत्तर में उन्होंने अपने को पके आम कहकर कभी भी टपक जाने की ही बात कही और आखिर में वह पुस्तक उन्होंने लिख ही डाली जिसका लोकार्पण बिहार के लोकप्रिय मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के कर कमलों द्वारा बिहार विधान परिषद् के सह सभागार में खचाखच भरे साहित्यकारों, पत्रकारों, राजनीतिज्ञों, सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यकर्ताओं तथा प्रबुद्धजनों एवं नगर के सुधीजनों के बीच में संपन्न हुआ था। बी.एन. कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष तथा उस पुस्तक के लेखक प्रो. रामबुझावन बाबू ने मुझे उस दिन यह भी कहा था कि मेरे शेष जीवन की उपलब्धियों पर वह नहीं, तो कोई और सही, विद्वान रचनाकार प्रकाश डालेंगे। प्रोफेसर साहब के स्नेह-सम्मान के प्रति यदि सहस्त्रों बार विनम्रता से मैं आभार व्यक्त करूँ, तो भी उनकी भावनाओं से ऋण-मुक्त नहीं हो पाऊँगा। उनकी पावन स्मृति को प्रणाम। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार जो प्रो. रामबुझावन बाबू को बड़े भाई-सा सम्मान देते रहे, ने उनका दायित्व अपने कंधे पर लिया और अपनी पुस्तक का नाम 'सिद्धेश्वर: अंकों से अक्षर तक' रखा जिसके लिए कुछ अपने भावोद्‌गार प्रकट करना मैंने मुनासिब समझा बतौर इसके नायक होने के नाते। यह पुस्तक भी डॉ. ब्रह्मचारी जी की मुझ अकिंचन के प्रति हार्दिक स्नेहांजलि ही कही जाएगी।

प्रस्तुत पुस्तक 'सिद्धेश्वर: अंकों से अक्षर तक' के नाम की सार्थकता इसलिए समझ में आती है, क्योंकि अपने जीवन के सुनहले छत्तीस वर्षों में मैं अंकों से ही खेलता रहा हूँ। जी हाँ, अप्रैल, 1964 से 31 मई, 2000 तक

भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक, नई दिल्ली के अंतर्गत कार्यालय, प्रधान महालेखाकार, बिहार, राँची एवं पटना में अपनी सेवा प्रदान कर मैं लेखा एवं लेखा परीक्षा से ही जुड़ा रहा और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पश्चात् अक्षरों की दुनिया में विचरण करने लगा हूँ। हालांकि यह सच है कि अंकों से खेलने के दौरान भी हमारी कलम चलती रही है राष्ट्रभाषा हिंदी और उसके साहित्य की अभिवृद्धि के लिए अथवा पटना से प्रकाशित विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' एवं नई दिल्ली से प्रकाशित 'लेखा परीक्षा प्रकाश' तथा 'विचार दृष्टि' पत्रिकाओं के लिए। कार्यालय, प्रधान महालेखाकार (लेखापरीक्षा) बिहार, पटना से प्रकाशित विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' का मैं संस्थापक संपादक रहा हूँ और उसके सहयोगी थे श्री जयप्रकाश मल्ल और श्री मनोज कुमार, जो उस पत्रिका के संप्रति परामर्शी एवं संपादक हैं और उस कार्यालय में दोनों वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर पदस्थापित।

आमतौर पर किसी पुस्तक के लेखक की भूमिका ही अहम होती है, किंतु प्रस्तुत पुस्तक के लेखन के लिए संपादकद्वय के सहयोग की आवश्यकता इसलिए महसूस की गई, क्योंकि लेखा एवं लेखापरीक्षा में बिताए मेरे छत्तीस वर्षो की सेवा का लेखा-जोखा तो वही कर सकता था जिसने मुझे और मेरे कार्यकलापों को करीब से देखा हो और हर कदम का साथी रहा हो। मनोज कुमार, जय प्रकाश मल्ल इसमें खरे उतरे और इन दोनों ने इसके संपादन में सहयोग किया जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। इस पुस्तक के लिए सारे तथ्य इन दोनों ने जुटाए।

प्रो. रामबुझावन बाबू की पुस्तक से प्रस्तुत पुस्तक इस माने में भिन्न है कि इसमें अंकों से अक्षर तक के दौरान मेरे जीवन के कई ऐसे अनछुए पहलू हैं जिसे इस पुस्तक में संजोया गया है और जिसके विषय में जानने की निश्चित ही उत्सुकता होगी।

साधारण किसान परिवार में जन्म लेने के बाद भी मैंने अपने जीवन का लक्ष्य हमेशा ऊँचा बनाए रखा। जीवन के शुरुआती दौर में राजनीतिक हलचल से दूरी बनाए रखने के बावजूद भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त कुप्रवृत्तियों, विद्रूपताओं और विसंगतियों के प्रश्न पर मैंने सदैव सुलझा हुआ दृष्टिकोण रखा और मेरे इस दृष्टिकोण को रसिक पाठकों ने हमेशा सराहा और उन्हें आज भी इस सृजन को समझ लेने का सुख मिलता है। दरअसल, रचनाकार की मानसिक क्षमता में और उसकी रचना के रसिक पाठक की मानसिक क्षमता में मामूली-सा अंतर होता है। जो व्यक्ति अपना

भाव, विचार या कल्पना को किसी माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करने में सफल हो जाता है, उसे रचनाकार मान लिया जाता है। जिसके मन में वह भाव, विचार या कल्पना तो पहले से ही होती है, किंतु उसे अभिव्यक्त करने में वह समर्थ नहीं होता या उसके पास साधन नहीं होते उसे रचना का रसिक पाठक मान लिया जाता है। इसमें रचयिता को जहाँ अपनी रचना का सुख मिलता है, वहीं पाठक को इस सृजन को समझ लेने का सुख मिलता है। किस व्यक्ति के लिए क्या सरल है, क्या कठिन है, यह व्यक्ति के अपने अनुभव, अनुभूति और कार्यक्षेत्र के ज्ञान पर निर्भर है। जैसे सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं पत्रकारिता के क्षेत्र मुझे अत्यंत प्रिय लगते हैं। इसलिए मेरे अधिकांश लेखन इन्हीं से जुड़े विषयों पर हुए हैं और आज भी हो रहे हैं जिसे पाठक बड़े चाव से पढ़ते हैं। मैं अपने पाठक के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। संभवतः इस पुस्तक के विद्वान लेखक एवं संपादकद्वय को हमारे लेखन का यही पक्ष भाया है जिससे उत्साहित हो अपनी कलम चलाने के लिए वे अग्रसर हुए हों। हमारे जीवन और लेखन का अक्स बड़ी सूक्ष्मता और संवेदनशीलता के साथ इस पुस्तक के रचयिता ने उभारा है और हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं को सहज-सरल भाषा में मोती-सा पिरोया है। इन भागीरथ प्रयासों के लिए मैं किन शब्दों में इनके प्रति अपना आभार व्यक्त करूँ। भाब विह्वल हूँ और अहसानमंद भी।

जहाँ तक मेरे लेखन का प्रश्न है मेरे अंदर तक जो छूता रहा है उसे मैं अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रकट करता हूँ। आज मैं जो कुछ भी हूँ और जो कुछ मैं लिख रहा हूँ उसमें उन साहित्यकारों एवं लेखक-मित्रों का हाथ रहा है जिनके सान्निध्य में मैं आता रहा। यह मेरा सौभाग्य है कि साहित्य एवं पत्रकारिता से जुड़ी इस देश की बड़ी-बड़ी हस्तियों से मेरे अच्छे संबंध रहे हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि वैचारिक तौर पर दिखने वाले बदलाव ने मुझे यह सोचने और उसी हिसाब से लिखने को मजबूर किया है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि अपनी बात को संप्रेषित करने का सबसे अव्वल माध्यम है साहित्य, जो किसी भी बदलाव में निर्णायक हो सकता है। हालांकि मुझे यह भी पता है कि सत्ता कई बार साहित्य माध्यम पर अपनी भौहें टेढ़ी किए रहती है, फिर भी मुझे उसकी परवाह कतई नहीं रहती।

दरअसल, मैं स्वच्छंद प्रकृति का व्यक्ति हूँ। समाज के किसी बाधा-बंधन को नहीं स्वीकारता। जब समाज लोगों को समाज व्यवस्था के बंधन से बांधना चाहता है, तो मैं हस्तक्षेप करने से बाज नहीं आता। मुझे

लगता है कि प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता एवं संपादकद्वय ने हमारे व्यक्तित्व के इन्हीं पक्षों को परखा और अपने भावों, अनुभूतियों एवं विचारों को मूर्तरूप प्रदान करना उन्होंने लाजिमी समझा, ताकि और लोग भी इससे अनुप्राणित-प्रोत्साहित हो सकें। इस संदर्भ में मैं यह भी कहना चाहूँगा कि समाज को बदलने की चाहत तो अनेक के मन में होती है, लेकिन अपनी ठाठ-बाट की नौकरियाँ छोड़कर इस दिशा में बढ़ने वाले कम ही होते हैं। जी हाँ, यह कहने में मुझे गर्व महसूस होता है कि भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग (Indian Audit & Accounts Department) के वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी की नौकरी से स्वैच्छिक सेवानिवृति (Voluntary Retirement) भी मैंने इसलिए ली, ताकि व्यापक और वृहतर स्तर पर समाज व राष्ट्रहित में मैं कुछ कर सकूँ और वह इच्छा मेरी पूरी हो रही है। यह मेरे लिए खुशी की बात है। मूल्यों की राजनीति, राष्ट्रभाषा हिंदी सहित संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं की सेवा, पत्रकारिता तथा संगठन से जुड़कर कुछ करना मुझे सुखद और संतोषप्रद लगता है। स्वैच्छिक सेवानिवृति के पूर्व से ही मैं रेलवे हिंदी सलाहकार समिति का सदस्य रहकर और उसके बाद जबसे बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष पद का दायित्व मेरे दुर्बल कंधों पर डाला गया है मेरा कार्यक्षेत्र बढ़ा है और हिंदी एवं संस्कृत जगत के लोगों को मुझसे अपेक्षाएँ भी बढ़ी हैं। मुझे नहीं मालूम कि विगत दो-ढाई वर्षो में मैंने हिंदी और संस्कृत के लिए क्या कुछ किया है, परंतु इतना जरूर है कि मेरी निष्ठा और ईमानदारी स्पष्ट दिख रही है, यह मैं नहीं लोग कह रहे हैं। आज की भारतीय राजनीति की जो स्थिति है उसमें एक राजनीतिक पदधारक के लिए इससे बढ़कर और क्या चाहिए? लोग तो यहाँ तक कह जाते हैं कि बोर्ड के तीस वर्षो के इतिहास में पहली बार एक नई और लंबी लकीरं खींची जा रही है। बोर्ड की ओर से प्रकाशित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैचारिक पत्रिका-'वाग्वन्दना' के साथ ही राष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलन एवं संगोष्ठी के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका 'संस्कृत संजीवनी' और प्रस्तुत पुस्तक इस बात का साक्षी है। संस्कृत के अध्येता और मर्मज्ञ डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार इस पुस्तक के रचयिता तो हैं ही 'वाग्वन्दना' के परामर्शी एवं मेरे मार्गदर्शक भी। मैं कृतज्ञ हूँ उनका तहेदिल से। डॉ. ब्रह्मचारी जी के प्रति हमारी यह कृतज्ञता उस अमृत की तरह काम करेगी, जो धीरे-धीरे हमारे अहंकार के कड़े कवच को नियंत्रण करने की जरूरत को गले लगाकर हमें उदार व्यक्ति में बदल देगा। हमने

हमेशा ही खुद के साथ रहना सीखा और इसीलिए यह हमारे हित में रहा, क्योंकि ब्रह्मचारी जी जैसे शुद्ध, सच्चा, ईमानदार और उदार मार्गदर्शक एवं हमसफर हमें मिले।

अपनी बात का अंत करने के पहले एक और बात का उल्लेख करना उचित होगा कि सफलता सिर्फ विजन और मुश्किलों से तत्काल निजात पाने की क्षमता पर निर्भर करता है। मैं मुश्किलों और परेशानियों को झेलने और उनपर विजय पाने में ही विश्वास करता हूँ। मगर मैं इतना जरूर कहना चाहूँगा कि बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहते हुए तथा उसकी गतिविधियों को मूर्तरूप देने में अगर इस पुस्तक के लेखक डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार जी न होते, तो न मैं आगे बढ़ पाता और न कार्यकलापों को साकार कर पाता। डॉ. कुमार ने न केवल मेरा साथ दिया, बल्कि मेरे द्वारा उठाए गए कदम और काम को अपना काम समझकर बहुत कुछ किया और आज भी कर रहे हैं जिसके लिए मैं हृदय से उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

जहाँ तक साहित्य सृजन का सवाल है साहित्य की स्थिति में आस्था और निष्ठा रखने के कारण से ही हम उसके सृजन के अस्तित्व के विषय में आश्वस्त रहते हैं। साहित्य हमारे निकट जीवन की गंभीर अभिव्यक्ति है। साहित्य के प्रति इसी आस्था और निष्ठा ने सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के अनेक प्रश्नों के समाधानों से मुझे बाँध रखा है। आज जिस प्रकार स्वार्थ, वंशवाद, परिवारवाद तथा येन-केन-प्रकारेण धनार्जन कर सत्ता की चाह ने राजनीतिक दलों एवं उसके राजनेताओं द्वारा समाज को व्यक्तिविहीन कर दिया जा रहा है और आम जनता सत्तातंत्र की बंदी हुई जा रही है, ऐसी स्थिति में हम अपनी वाणी और विचारों को लोगों तक पहुँचाना चाहते हैं अपने लेखन के माध्यम से।

ठीक इसी प्रकार भारतीय समाज में व्याप्त आधुनिकता और पश्चिमी संस्कृति के अँधानुकरण को मैं छिछले लोगों की छिछली मानसिकता का ज्वार भर मानता हूँ, जो समय के साथ उतर जाएगा, किंतु मुझे चिंता इस बात को लेकर है कि ज्वार अपने साथ-साथ क्या-क्या बहा ले जाएगा, किसे-किसे डूबोएगा और उतरने के पश्चात् तट पर निर्जीव सीप-घोंघे अथवा मोती न जाने क्या-क्या छोड़ेगा? मेरे ख्याल से भारतीय समाज में आधुनिकता किसी वैचारिक क्रांति का प्रतिफलन न होकर एक अँधानुकरण मात्र है जिसकी कोई वैचारिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हमारे पास नहीं है। आधुनिकता के इस खेल में हमारी भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक पहचान

दांव पर लगी हुई है। चिंता इस बात की है कि आधुनिकता की इस अँधी दौड़ में बहकर हम अपनी सांस्कृतिक पहचान और गरिमा को कहीं मटियामेट तो नहीं कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान लेखक डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार ने हमारे जीवनी-साहित्य लिखते वक्त हमारी इस चिंता को अपने लेखन में रेखांकित किया है। वैसे भी इसके लेखक हमारे अग्रज तुल्य रहे हैं और उन्होंने भी मुझे अनुज तुल्य स्नेह दिया है। इस लिहाज से वे हमारी मानसिकता और विचारों से पूर्णतः अवगत हैं। वे हमारी इस बात से हमेशा सहमत रहे हैं कि एक सांस्कृतिक गरिमाविहीन राष्ट्र इस विराट भूमंडल पर जहाँ सैकड़ों अजगर इसे निगल जाने को मुँह फाड़े बैठे हों, कैसे अपनी आजादी और संप्रभुता की रक्षा कर पाएगा? आधुनिकता चाहे लाख अच्छी हो, किंतु आधुनिकता की यह कीमत नहीं दी जा सकती, दी जानी चाहिए भी नहीं।

मेरे अग्रज ने जिस प्रकार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के मेरे हर कार्यकलापों में सहयोग कर अपनी अग्रणी भूमिका निभाई है ठीक उसी प्रकार मेरे इस जीवनी-साहित्य को लिखकर भी मेरा मनोबल बढ़ाया है। अतएव इस कृति की सार्थकता अवश्य सिद्ध होगी, क्योंकि इसके सृजन में डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार जी ने जिस तन्मयता से हमारी जीवनी पर प्रकाश डाला है और मेरे सहकर्मी संपादकद्वय जय प्रकाश मल्ल एवं मनोज कुमार ने इसका संपादन किया है उसके लिए मैं उन सभी के प्रति तहेदिल से आभार व्यक्त करता हूँ। अपने उन सभी अभिमत, शुभाशंसा, छायांकन और शब्द-संयोजन करने वालों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया है और मुझे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहयोग एवं सुझावों से इसका सौष्टव बढ़ाया है।

(सिद्धेश्वर)
संस्थापक-संपादक
'विचार दृष्टि'
'दृष्टि', यू.207, शकरपुर,
विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष-011-22530652

संपर्क:
'संस्कृति', ए-164, पार्क रोड,
ए.जी.कॉलोनी, शेखपुरा,
पत्रा.-आशियाना नगर,
पटना-25, मो.-9431037221
मो.-9472243949

अभिमत

समाज व राष्ट्र की ज्वलंत समस्याओं से रू-ब-रू कराती जीवन गाथा

□ प्रो.(डॉ.) युवराज देव प्रसाद

भौतिक सुख-सुविधाओं की चकाचौंध से भ्रमित पाठकों के समक्ष यह पुस्तक सिद्धेश्वर जी के समग्र व्यक्तित्व को जानने-देखने का सुखद आनंद लेकर आई है ठीक उसी प्रकार जैसे ग्रीष्म की तपती धरती पर जब पानी की बूंदों की बौछार लिए सावन का आगमन होता है, तो हर किसी का मन उल्लास से भर आनंद में झूमने लगता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि अबतक जन-जागृति व सामाजिक उत्थान की जितनी भी कोशिशें हुईं उनमें अच्छा खासा श्रेय भाई सिद्धेश्वर को जाता है। इतिहास बताता है कि मनुष्य की अस्मिता और स्वाधीनता पर जब भी आँच आई, तो वह इसके विरूद्ध उठकर खड़ा हो गया है। इसी कारण रचनाकार मनुष्य अपेक्षाकृत विशिष्ट श्रेणी में गिना जाता है। इस पुस्तक के नायक सिद्धेश्वर एक ऐसे ही रचनाकार हैं, जो अपनी और समाज की स्वतंत्रता के लिए सजग हो जाते हैं और अपनी रचना के माध्यम से उस निरंकुश सत्ता को चुनौती देते हैं जो उसे आघात पहुँचाता है और परतंत्र बनाने की कुचेष्टा करता है। लेखक ने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हुए एक ईमानदार एवं निष्ठावान व्यक्ति के साथ अपने संबंधों की उष्मा को इस पुस्तक में रेखांकित किया है। डॉ. ब्रह्मचारी जी ने यह चित्रित कर कि अच्छे संस्कार का प्रभाव खराब से खराब तथा पथभ्रष्ट लोगों पर पड़ता है, अपनी रचनात्मक सोद्देश्यता उजागर कर दी है।

सिद्धेश्वर जी ने 'नायक के दो शब्द' में अपने जिन विचारों को अभिव्यक्त किया है वे हमें भी अन्दर तक छूते हैं। देखें आप उनकी अभिव्यक्तियों को-'जहाँ तक मेरे लेखन का प्रश्न है मेरे अन्दर तक जो छूता रहा है उसे मैं अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रकट करता हूँ। आज मैं जो कुछ भी हूँ और जो कुछ लिख रहा हूँ उसमें उन साहित्यकारों एवं लेखक मित्रों का हाथ रहा है जिनके सान्निध्य में मैं आता रहा। यह मेरा सौभाग्य है कि साहित्य एवं पत्रकारिता से जुड़ी इस देश की बड़ी-बड़ी हस्तियों से मेरे अच्छे संबंध रहे हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि वैचारिक तौर पर दिखाने

वाले बदलाव ने मुझे यह सोचने और उसी हिसाब से लिखने को मजबूर किया है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि अपनी बात को संप्रेषित करने का सबसे अव्वल माध्यम है साहित्य, जो किसी भी बदलाव में निर्णायक हो सकता है।'

नायक के उपर्युक्त विचारों से यह स्पष्ट होता है कि सिद्धेश्वर में गुरूर जरा भी नहीं है, लोकप्रियता की ऊँचाई पर होने के बावजूद वे शालीन रहे। संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहकर उन्होंने इंसानियत और मुहब्बत की भरसक नुमाइंदगी की और संस्कृत जगत में तहजीबी रिश्तों को नए जोश दिए। एक साक्षात्कार में सिद्धेश्वर ने राजनीति के विचलन, छल-प्रपंच और सत्ता प्रतिष्ठानों के चरित्र को बड़ी बेबाकी से रेखांकित किया है। दरअसल, जन चेतना और रचनाधर्मी विवेक से संपन्न रचनाकार उस व्यवस्था पर अवश्य प्रहार करता है जो व्यवस्था संवेदना और जीवन-मूल्यों को ध्वस्त करती है। सिद्धेश्वर की जनधर्मी चेतना भी चारित्रिक पतन, अन्याय और जुल्म के खिलाफ बेखौफ होकर आवाज उठाती है।

संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा के पूर्व कुलपति, डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार की पुस्तक 'सिद्धेश्वर: अंकों से अक्षर तक' पढ़कर आशा बंधी है कि यदि कुछेक सृजेता सिद्धेश्वर के अबतक बीते हुए जीवन के सच को उद्घाटित करने की दिशा में आगे आए हैं, तो निश्चय ही इसके मार्फत इनके जीवन के वे ऐतिहासिक प्रसंग भाषा में दर्ज होकर हमेशा-हमेशा के लिए ऐसे बिंदुओं के रूप में सुरक्षित रहेंगे जिनसे हम भावी पीढ़ी के विकास का रास्ता बिंबित कर सकते हैं। सिद्धेश्वर के जीवन की यह गाथा समाज व राष्ट्र की ज्वलंत समस्याओं से रू-ब-रू कराती है जिसके निदान के लिए इसे एक प्रेरक बिंदु मानना चाहिए।

डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार की इस पुस्तक को पढ़ना निश्चय ही एक रोचक, प्रवाहपूर्ण और आनंददायक अनुभव से गुजरना है। निश्चय ही भौतिकता और भ्रष्टाचार के इस युग में सिद्धेश्वर की यह जीवनी साहित्य अनीति और अन्याय के विरूद्ध अदम्य नैतिक चेतना के पोषण और प्रसार का संदेश देता है। लेखक को हार्दिक साधुवाद और सिद्धेश्वर को दीर्घायु होने की कामना।

प्रो.(डॉ.) युवराज देव प्रसाद
पूर्व निदेशक
अनुग्रह नारायण सिन्हा समाज अध्ययन संस्थान,
पटना

संपर्क:
लंगरटोली, राजेन्द्र पथ
पटना
मो. 9421011722

अभिमत

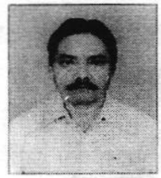

नई आँख की रोशनी में नायक

□ सुरेश कुमार सिन्हा

शिक्षा शास्त्री डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार विरचित तथा संपादकद्वय जयप्रकाश मल्ल एवं मनोज कुमार द्वारा संपादित पुस्तक 'सिद्धेश्वर: अंकों से अक्षर तक' नायक प्रधान एक तरह से जीवनी है। जैसा कि पुस्तक के नाम ही से यह स्पष्ट होता है कि साहित्यकार, पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्ता तथा संप्रति बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के अध्यक्ष सिद्धेश्वर जी इसके नायक हैं और त्याग, धैर्य, सहनशीलता, दृढ़ता, निष्ठा तथा ईमानदारी आदि भारतीय परंपरागत गुणों से उनका चरित्र परिपूर्ण है। साथ ही वह प्रतिभाशाली हैं, कुशल प्रशासक हैं और चारित्रिक गुण उनमें कूट-कूटकर भरे हैं। वह विभिन्न मुश्किलों और अड़चनों से घिरकर भी अपने इन गुणों से विलग नहीं होते तथा हिम्मत और सूझबूझ से हर विषम परिस्थिति का सामना करते हैं जैसा कि संस्कृत शिक्षा बोर्ड के संदर्भ में लेखक ने उन्हें चित्रित किया है। विपरीत परिस्थितियों तथा उच्चाधिकारियों के अपेक्षित सहयोग के बिना भी वह कुंठाओं का शिकार न होकर अपने आपको वृहत्तर जीवन मूल्यों को समर्पित कर देते हैं।

इस जीवनी साहित्य को पढ़ने पर ऐसा लगता है कि लेखक व संपादकद्वय ने सिद्धेश्वर जी के जीवन के सभी आयामों की सहयात्रा की है। इसलिए चित्रण में कल्पना नहीं है, गाढ़ी अनुभूति है। गाढ़ी अनुभूति जब लेखन में उतरती है तब प्रच्छन्न बन जाती है और गद्य का ठोस गाढ़ा अर्थ नायक के रहस्यवादी झीने आवरण में झलमलाने लगता है। मुझे तो लगता है कि सिद्धेश्वर जी को और उनके व्यक्तित्व-कृतित्व को सही समझना हो, तो 'सिद्धेश्वर: अंकों से अक्षर तक' की यात्रा की जानी चाहिए।

प्रस्तुत पुस्तक से गुजरने पर मुझे यह टिप्पणी देने के लिए विवश होना पड़ रहा है कि करुणाशील व्यक्तित्व भी संसार में करुणा का जल लेकर आता है, अपने आँसुओं के द्वारा उसे संतप्त हृदयों पर बरसाता है। उसका अपना कोई निजी सुख-दुख नहीं होता, वह तो दूसरों के ही

सुख-दुख से सुखी-दुखी होता रहता है और अपने को बाँटता है। सिद्धेश्वर जी भी ऐसे ही करुणाशील व्यक्तित्व हैं। इस पुस्तक के विविध स्तंभों में ध्वनित लेखक की अनुभूति की दिशा यही है। इसके सभी अध्यायों में नया दृष्टिकोण, नई विचारधारा परिलक्षित होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सिद्धेश्वर जी में व्यापक सामाजिक अनुभव, गहरी जीवन-दृष्टि और नया शिल्प सौंदर्य है। यह पुस्तक उस प्रकाश-स्तंभ की तरह है जिसका उजाला लंबे समय तक समाज में व्याप्त अँधकार को चीरता रहेगा। पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे संस्कृत एवं हिंदी के एक अच्छे जानकार और अध्यापन के लंबे व्यावहारिक अनुभववाले कुलपति ने लिखा है और इस दृष्टि से इसका साहित्य एवं शिक्षा जगत में स्वागत होना चाहिए।

यह पुस्तक न प्रशंसा है और न मूल्याँकन। हिंदी साहित्य के इतिहास में किसी रचनाकार द्वारा समाज को पहचानने के गुर और सुर सिखाए गए हैं। इसलिए इस किताब को पढ़ना नई आँख की रोशनी में सिद्धेश्वर जी को देखना है। परमार्थ और व्यवहार शास्त्र के रचनाकार और पत्रकार को जानना ही एक बड़ा नया पाठ होगा। लोगों को याद आएगा कि सिद्धेश्वर जी अंकों की दुनिया में अपनी पहचान बनाने के बाद आज अक्षरों से खेल रहे हैं। यह किताब सिद्धेश्वर जी की खुली आँखोंवाली अक्षरों की दौड़ का एक सुंदर पड़ाव है। इस प्रकार सिद्धेश्वर जी पर लिखी हुई यह पुस्तक कई भूले-बिसरे विषयों में बहुत चुनौती भरा, दुर्गम साहित्यिक राजनीति का सुगम साहित्यिक पाठ प्रस्तुत कर रही है। इसमें व्यक्त भावनाएँ सात्विक स्नेह अनुभूतियों से सराबोर हैं जो सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं राजनीतिक संवेदनाओं से ओत-प्रोत हैं और जिसमें अतीत और यथार्थ के अनुभवों का सुंदर चित्रण मिलता है।

यह पुस्तक सीधी, सरल व परंपरागत वर्णनात्मक शैली में लिखी गई है। भाषा में नवीनता न होते हुए भी बोधगम्य है। भाषा में अधिक काल्पनिकता और सहजता समाहित की जा सकती थी, किंतु लेखक ने कृत्रिमता से बचने का प्रयास किया है। इसकी वैचारिक मनोभूमि संवादों के माध्यम से अधिक लक्षित होती है। ऐसा जान पड़ता है कि लेखक ने किसी जीवन चरित्र को यथावत चित्रित कर दिया हैं। नि:संदेह आने वाले समय में यह पुस्तक ऐतिहासिक संदर्भो के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण जीवनी के रूप में पढ़ी जाएगी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'सिद्धेश्वर: अंकों से अक्षर तक' जिंदगी की वास्तविकताओं का दस्तावेज है। यह एक परिपक्व

शिक्षाशास्त्री की परिपूर्ण रचना है, रोचक और रोमांचक, भाषा शैली में ग़ज़ब का निरालापन।

साहित्य-साधना में लीन सिद्धेश्वर जी सचमुच एक निष्ठावान एवं ईमानदार कर्मयोगी हैं, जिन्होंने अबतक के जीवन में न तो आत्मसम्मान से कभी समझौता किया और न ही पद, पैसे और पुरस्कार के लिए याचक की भूमिका में रहे। महालेखाकार कार्यालय में हमारे वरीय सहकर्मी रहे सिद्धेश्वर जी को निस्पृह एवं निर्द्वन्द्व भाव से साहित्य, संगठन एवं पत्रकारिता की सेवा करते इनके सफ़र को मैंने देखा है। उनका प्रभावशाली चिंतन और लेखन, जिसकी चर्चा विद्वान लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में की है, जन सामान्य को एक नई दिशा और उन्नति के मार्ग पर ला खड़ा करने के लिए होता है। मूक जनता पर होने वाले अत्याचार-अन्याय और शोषण की घटनाओं को उजागर करने के इनके दायित्व को इस पुस्तक के माध्यम से दर्शाने और मूक जनता को वाणी देने की बात कहकर लेखक ने श्रेयष्कर काम किया है।

प्रस्तुत पुस्तक का विषय इसके नायक की व्यक्तिगतता और वैयक्तितता के रूप में हुआ है। विषय चाहे जो हो, प्रधानता नायक के व्यक्तित्व और कृतित्व की ही है। यह रचनात्मकता लेखक डॉ. ब्रह्मचारी जी तथा संपादकद्वय जयप्रकाश मल्ल एवं मनोज कुमार के सहज आत्मीयतापूर्ण व्यक्तित्व का ही प्रतिबिंब है। अपनी इसी विशेषता की वजह से यह पुस्तक अत्यंत पठनीय, रसात्मक और तृप्तिदायक बन गई है। लेखक को साधुवाद।

संपर्क: — सुरेश कुमार सिन्हा

'घरौंदा', ए-364, ए.जी.कॉलोनी, — वित्तीय सलाहकार

पत्रा.-आशियाना नगर, पटना-25 — बिहार सरकार

मो.-9835642504 — पटना

अभिमत

ऐतिहासिक दस्तावेज और चिरकाल के लिए संग्रहणीय

□ **उमेश्वर प्रसाद सिंह**

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान लेखक डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार जी ने जहाँ सिद्धेश्वर जी के अंकों से अक्षर तक के क्रियाकलापों की व्याख्या विस्तार से की है, वहीं समाज व राष्ट्र के बरअक्स नागरिकों के समस्त अधिकारों, उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों की ओर इंगित किया है। लेखक ने श्रमपूर्वक पुस्तक के नायक सिद्धेश्वर जी द्वारा अबतक विभिन्न विषयों पर एवं विभिन्न विधाओं में विरचित पुस्तकों में इनके दृष्टिकोण को शामिल कर इसे अद्यतन और पाठकों के लिए बहुपयोगी बनाया है। किसी भी लेखक के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है कि पाठकगण उनकी पुस्तक का अच्छा स्वागत करें। यह उनकी लोकप्रियता और जनोपयोगिता की भी द्योतक है, क्योंकि इस पुस्तक को लेखक ने सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व व कृतित्व के आयामों को कई अध्यायों में विभक्त कर बहुत सारगर्भित एवं महत्वपूर्ण जानकारियाँ पाठकों को उपलब्ध कराई हैं।

मौजूदा दौर की सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और राजनीतिक के साथ-साथ राष्ट्रीय परिदृश्य पर जब हम नजर डालते हैं, तो स्थिति चिंताजनक और दुखदाई दिखाई पड़ती है। आज की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि हम किसी मूल्य-प्रणाली के लिए प्रतिबद्ध नहीं हैं। अपने स्वार्थ के अलावा और अन्य किसी राष्ट्रीय, सामाजिक और मानवीय मूल्य के लिए हमारे अन्दर कोई सम्मान नहीं है जिसे लेखक ने बड़ी खूबसूरती के साथ प्रस्तुत किया है सिद्धेश्वर जी के सृजन के माध्यम से। लेखक ने यह दर्शाया है कि सिद्धेश्वर जी की नजर में धन और सत्ता हमारे सबसे ऊँचे मूल्य हैं और हमारी प्राथमिकता सूची में अपने देश के नागरिकों की खुशहाली और राष्ट्र की भलाई का स्थान सबसे नीचे है जबकि किसी लोकतांत्रिक राज-व्यवस्था की सफलता की आवश्यक शर्त यह है कि राजनीतिक दृष्टि से जागरूक, ईमानदार और बुद्धिमान नागरिकों की राज्य के मामलों में स्वैच्छिक रुचि, सहयोग और भागीदारी हो, नागरिकता के मूल्यों का पूरा

सम्मान हो और अपने दायित्वों एंवं कर्त्तव्यों का पूरी तरह से पालन किया जाए। प्रस्तुत पुस्तक अपने इस उद्येश्य में सार्थक साबित होती है, क्योंकि पाठकों के हृदय में यह इन मानवोचित मूल्यों की स्थापना की गंभीर कोशिश करती है। इस ख्याल से देखा जाए तो यह पुस्तक विचारोत्तेजक तो है ही, मूल्य-आधारित शिक्षा की विषय-वस्तु को समृद्ध भी बनाती है।

सिद्धेश्वर जी के नम्र व्यवहार की वजह से इन्हें मान-सम्मान मिलता है। दूसरी बात यह है कि ये दूसरे को मदद करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं और मदद के लिए सदैव तैयार रहने वाले को ही समाज में प्रतिष्ठा मिलती है। इसलिए प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान लेखक डॉ. ब्रह्मचारी ने ठीक ही कहा है कि जीवन में ऊँचाइयाँ हासिल करने के लिए व्यवहार में नम्रता का होना बेहद जरूरी है।

साहित्य के क्षेत्र में हो या पत्रकारिता तथा संगठन के क्षेत्र में सिद्धेश्वर जी मेहनत करने से पीछे नहीं हटते हैं और इनका यह कहना कि मेहनत करने से कोई छोटा नहीं हो जाता शत प्रतिशत सही है। आखिर तभी तो चाहे महालेखाकार कार्यालय में वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर रहे हों या बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष के दायित्व का निर्वहण किया हो, सिद्धेश्वर जी के निवास पर कोई नौकर-दाई किसी ने नहीं देखा, बल्कि सच तो यह है कि आज भी अपनी उम्र के सात दशक से ऊपर के पड़ाव से गुजरते हुए भी न तो इन्होंने और न इनकी अर्द्धांगिनी श्रीमति बच्ची प्रसाद जी ने किसी नौकर या दाई की आवश्यकता महसूस की है। पुस्तक के लेखक ने भी इन्हें और इनके कार्यकलापों को बड़े नजदीक से देखा है जिसकी चर्चा कर इन्होंने दूसरे को प्रेरित और प्रोत्साहित किया है।

सिद्धेश्वर जी पर इतनी व्यापक गहरी तथात्मक व विश्लेषणात्मक सामग्री प्रस्तुत कर विद्वान लेखक डॉ. ब्रह्मचारी जी ने इस कृति को ऐतिहासिक दस्तावेज और चिरकाल के लिए संग्रहणीय बना दिया। प्राय: सभी स्तंभों में विविधता है जो पुस्तक को उबाऊ होने से बचाता है। लेखक की यह कृति पसंद आई। उन्हें साधुवाद तथा इस पुस्तक के नायक सिद्धेश्वर जी को दीर्घायु होने की मंगलकामना।

संपर्क: पत्थर रोड, सगुन हॉल के निकट
सरिस्तााबाद, पटना-800001
मो.9835202663,9334449156

उमेश्वर प्रसाद सिंह
पूर्व वित्त पदाधिकारी
महावीर कैंसर संस्थान

अभिमत

एक चिंतनशील व्यक्तित्व का दर्पण है यह जीवनी साहित्य

□ के. बी. प्रसाद

'सिद्धेश्वर: अंकों से अक्षर तक' स्मृति के गलियारों से बटोरे एक स्नेह-भरे शुभेच्छु के अपने अनुभवों का संकलन है जिसके केंद्र बिंदु हैं हिंदी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर और हिंदी पत्रकारिता के लिए संपादकीय समझ रखने वाले सिद्धेश्वर, जो बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के वर्तमान अध्यक्ष भी हैं और लेखक के शब्दों में संस्कृत बोर्ड के इतिहास में एक नई एवं लंबी लकीर खींचने वाले करिश्माई व्यक्तित्व। इसके लेखक हैं एक प्रमुख संस्कृताचार्य तथा कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार के पूर्व कुलपति डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार। डॉ. ब्रह्मचारी जी स्वयं अपनी विद्वता, बहुआयामी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं बौद्धिक गतिविधियों के कारण अत्यंत लोकप्रिय हैं। आपने लंदन विश्वविद्यालय में पठन-पाठन भी किया है तथा रचनात्मकता उनका नैसर्गिक गुण है और वे रचनात्मक सृजनशीलता में गहन विश्वास रखते हैं। भावुक एवं सहृदयी होने के कारण वह स्थूल वस्तुओं को भी भावनाओं से प्रतिबिंबित करते हैं और स्वीकार करते हैं कि इस पुस्तक में उन्होंने अपनी भावनाओं को ही मूर्तरूप दिया है। पुस्तक के प्राक्कथन में उन्होंने लिखा है-'वस्तुतः सिद्धेश्वर जी ने अबतक के अपने जीवन में जो प्रयोग किए हैं उसके सागर से कुछ मोती चुन लाने का प्रयास है। मेरी समझ से सिद्धेश्वर जी का जीवन और इनके कर्म ही संदेश हैं और वे ही हमारे अंतःकरण के लिए चुनौतियाँ हैं, क्योंकि उन्होंने हमेशा विचार-विमर्श की प्रक्रियाओं को प्रभावित किया है।' इस प्रकार डॉ. ब्रह्मचारी जी का यह जीवनी साहित्य एक चिंतनशील व्यक्तित्व का दर्पण है जिनमें झाँककर कोई भी उनके विचारों से परिचित हो सकता है और उनके व्यक्तित्व की एक झलक पा सकता है।

पुस्तक एक मात्र सिद्धेश्वर जी का ही वर्णन नहीं करती है, वरन् लेखक इससे परे जाकर इनकी धर्मपत्नी श्रीमति बी. प्रसाद, जिन्होंने घर के सभी झमेलों से इन्हें मुक्त कर रखा है और लिखने-पढ़ने के लिए प्रेरित

करने के साथ-साथ सामाजिक एवं साहित्यिक गतिविधियों के लिए प्रोत्साहित भी किया, के बारे में बहुत कुछ लिखा है। इसके साथ ही इनके एकलौते सुपुत्र सुधीर रंजन और पुत्रवधू सुनीता रंजन एवं पौत्र समीर रंजन के सहयोग की चर्चा भी लेखक ने बखूबी की है, जो रोचक और प्रेरक है। पुस्तक सरल और सहज भाषा में लिखी गई है और हर एक के लिए समझने में आसान है। इसकी कथाशैली पाठक को अपनी पकड़ से मुक्त होने नहीं देती और उसकी रुचि बराबर बनी रहती है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि विगत कई दशकों से कवि, पत्रकार एवं सामाजिक चिंतक के रूप में अपनी एक अलग पहचान बनाने वाले सिद्धेश्वर जी के अंकों से अक्षर तक बिताए क्षण तथा उनके लोगों के साथ संबंधों के ऐसे आयाम दिखाई देते हैं जो पाठक को मात्र पढ़ने का ही सुख नहीं देते हैं, बल्कि बहुत कुछ सोचने-समझने के लिए भी मजबूर करते हैं। बरगद का वृक्ष देखने का हम कितने ही अभ्यस्त क्यों न हों, उसका बोन्साई रूप हमें प्रभावित किए बिना नहीं रह सकता।

सिद्धेश्वर जी के जीवन पर आधारित इस जीवनी-साहित्य से गुजरने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वह जीवन के उद्येश्य के प्रति सजग दृष्टि रखते हैं और उनके बारे में कहा जा सकता है कि वह प्रारंभ से लेकर अंबतक 'आजाद राह के राही' रहे हैं। वह बड़ी-बड़ी किताबी बातें करने की बजाय, अपने अनुभवों पर ज्यादा भरोसा करते हैं। सच तो यह है कि आज के निरंतर पनीले पड़ते संबंधों के दौर में जबकि असली जीवन रस बहुत कम पड़ गया है, सिद्धेश्वर जी की रचनाओं को पढ़ना एक गहरी भावना या सघन अनुभूतियों से जुड़ जाने जैसा है। इस पुस्तक के नायक की जीवनी को पढ़ते हुए, उनके संघर्षो से परिचित होते हुए हम खुद उनके संघर्षो के हमसफ़र हो जाते हैं यह रचना की विशेषता है। दरअसल यह जीवनी बड़ी सहजता और शिद्दत से लिखी गई है और यह गहराई से अपने में समेटे हुए मर्म को उद्घाटित कराती है। लेखक को साधुवाद और इसके नायक को दीर्घायु होने की मंगलकामना।

संपर्क:

ए-242, ए. जी. कॉलोनी,
पत्रा.-आशियाना नगर
पटना-25
मो.-9835430800

के. बी. प्रसाद
पूर्व लेखा परीक्षा अधिकारी
कार्यालय, महालेखाकार (ले.प.)
बिहार, पटना

शुभाशंसा

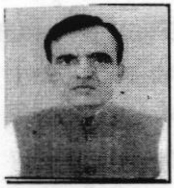

'सिद्धेश्वरः अंकों से अक्षर तक' विश्वसनीय और श्रेष्ठ जीवनी

□ प्रो.(डॉ.) उमेश शर्मा

जीवनी लिखना जोखिम का काम है, श्रम का नहीं। जीवनी के लिए तथ्यों की जानकारी अपेक्षित ही नहीं, अनिवार्य है। कुछ इसी ख्याल से प्रस्तुत पुस्तक के नायक सिद्धेश्वर के अंकों से अक्षर तक की यात्रा के तथ्यों को जुटाने की जिम्मेवारी सिद्धेश्वर जी से अंतरंगता से जुड़े दो सहकर्मी वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी-जय प्रकाश मल्ल एवं मनोज कुमार के कंधों पर दी गई। जीवनी का ढाँचा केवल सच्चाई पर खड़ा किया जा सकता है अन्य रचनात्मक विधाओं के समान उनमें कल्पना की उड़ान का अवकाश नहीं रहता। इतना होने पर भी कृति का रोचक और पठनीय होना भी, एक सीमा तक, आवश्यक है किसी भी अन्य रचना की तरह जीवनी विश्वसनीय होनी चाहिए।

डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार जी सिद्धेश्वर जी के अत्यंत निकट रहे हैं। खासकर जब सिद्धेश्वर जी के कंधों पर बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व बिहार सरकार के द्वारा दिया गया, तो इन्होंने डॉ. ब्रह्मचारी जी के सहयोग और मार्गदर्शन की अपेक्षा इसलिए की, क्योंकि डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार संस्कृत भाषा और उसके साहित्य के न केवल उद्भट्ट विद्वान हैं, बल्कि वे कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा को कुलपति की हैसियत से एक नई धार दी। डॉ. ब्रह्मचारी जी की प्रशासनिक क्षमता, अध्ययन-अध्यापन और संस्कृत भाषा पर उनकी पकड़ के सिद्धेश्वर जी कायल थे इसलिए ब्रह्मचारी जी का संस्कृत बोर्ड के अकादमिक संचालन, बोर्ड की ओर से प्रकाशित पत्रिका-'वाग्वन्दना' को पठनीय बनाने में योगदान के अतिरिक्त बोर्ड द्वारा तीन वर्षो तक लगातार संस्कृत भाषा के उन्नयन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित संस्कृत सम्मेलन की सफलता में योगदान बेहद महत्वपूर्ण रहा है। इसलिए डॉ. ब्रह्मचारी जी ने भी सिद्धेश्वर जी पर जीवनी लिखने की स्वीकृति प्रदान कर जीवनी के नायक को कृतज्ञ किया।

जीवनी को पढ़कर सिद्धेश्वर जी का एक स्पष्ट, तेजस्वी और लगभग मुकम्मिल व्यक्तित्व उभरता है और अंकों से अक्षर तक की उनकी

यात्रा का पूर्ण परिदृश्य भी। उनकी सौम्यता, सहजता, अध्ययनशील प्रवृत्ति, प्रशासनिक क्षमता, सूझबूझ, साहस, स्वयं से अधिक दूसरों की सुख-सुविधा का ध्यान रखने की आतुरता मंत्र-मुग्ध कर देने वाली वक्तृता, विरोधी की भी आलोचना से विरत रहना, सादी वेषभूषा, सच को सच कहने की आदत तथा चाटुकारिता से कोसों दूर रहने आदि विशेषताएँ लेखक ने जैसे साकार कर दी है। इस जीवनी को पढ़कर पाठक सिद्धेश्वर जी को साक्षात् देख-सुन सकता है। रचनाशीलता के दौरान सिद्धेश्वर जी की सोच प्रक्रिया को भी ब्रह्मचारी जी ने रेखांकित किया है कि वह क्या है और कैसे गतिशील रहती है। सच मानिए सिद्धेश्वर जी के कुल अंत:बाह्य का एक सटीक स्वरूप ब्रह्मचारी जी ने खड़ा कर दिया है। वास्तव में लेखक उनकी संपूर्ण जीवन यात्रा का सहचर बनकर प्रस्तुत हुआ है। सिद्धेश्वर जी के अंकों से अक्षर तक की यात्रा के माध्यम से उनकी जीवनी के स्तर पर वस्तुत: ब्रह्मचारी जी की लेखनी ने कमाल किया है। उनके स्थान पर कोई और जीवनी लेखक संभवत: ऐसा न कर पाता। यह करामात सिर्फ वही कर सकते थे।

लेखक डॉ. ब्रह्मचारी जी ने पुस्तक के नायक सिद्धेश्वर जी की मानवीयता, सहजता और सादगी एवं ईमानदारी को अपनी सहज, लेकिन विचारपूर्ण आत्मीयता भरे लेखन से चित्रित किया है। निश्चित रूप से आज के दौर में यथार्थ और मूल्योंवाली ऐसी रचना आश्वस्त करती है और विचार भी देती है। नि:संदेह यह कृति श्रेष्ठ तो है ही, परिवेश तथा साहित्य में लोक-दृष्टि से देखने पर साहित्य की आत्मा की छुवन का अहसास होता है। लेखा एवं लेखा परीक्षा के दौरान सिद्धेश्वर जी के कार्यकलापों से संबंधित तथ्यों के संकलन में दोनों वरीय लेखा परीक्षा अधिकारियों ने जिन बारीकियों को छुआ है वे अत्यंत मार्मिक और काबिलेतारीफ हैं जिसके लिए वे दोनों बधाई के पात्र हैं।

लेखक डॉ. ब्रह्मचारी जी ने नायक को बड़ी बेबाकी से प्रस्तुत किया है। हमारी पीढ़ी ने शायद सिद्धेश्वर जी को इतनी गहराई से पढ़ा नहीं है जितनी उनके प्रति हमारी आस्था पुख्ता है। लेखक ने इस जीवनी में जैसा रस बरसाया है और संप्रेषण को कायम रखते हुए रचना को मनोरम और पठनीय बनाया है उसमें वह पूरी तरह सफल रहे हैं। बेशक कथ्य और शिल्प के नएपन से यह जीवनी पाठकों को बाँधे रखने में समर्थ है।

संपर्क: प्राचार्य, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय
काजीपुर, पटना, न्यू पटना कॉलोनी,
बेउर, पटना

प्रो.(डॉ.) उमेश शर्मा
पूर्व कुलपति
संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

शुभाशंसा

एक अक्षरपुरुष के जीवन संघर्षों का दस्तावेज

□ प्रो.(डॉ.) मधु धवन

साहित्य की दुनिया में कितने ही रंग आए और चले गए, पर सिद्धेश्वर जी की सक्रियता और रचना-कर्म में इनकी कलम अभी भी अबाध गति से चल रही है तथा उनकी मुस्कुराहट का रंग लोगों के दिलों पर पूर्ववत् बना हुआ है, जबकि वे अपनी उम्र के पचहतरवें पड़ाव को पारकर 76वें से गुजर रहे हैं। सरकारी सेवा, संगठन, पत्रकारिता, हिंदी साहित्य और सामाजिक मूल्यों के प्रति इनका गहरा समर्थन, इनकी सहृदयता जैसे जस की तस लग रही है। असल जिंदगी में एक पुत्र, दो पुत्रियों के पिता और एक पति के रूप में इनके द्वारा निभाया जा रहा किरदार-ऐसे कितने ही अनछुए पहलुओं सहित अंकों से अक्षर तक की इनकी कहानी कह रही है दरभंगा कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा के पूर्व कुलपति डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार द्वारा विरचित यह किताब-'सिद्धेश्वर: अंकों से अक्षर तक'। यह एक ऐसा जीवनी-साहित्य है जो मामूलीपन में भी विलक्षणता का बोध कराता है।

आखिर तभी तो लेखक डॉ. ब्रह्मचारी सिद्धेश्वर जी के बारे में कहते हैं- 'सिद्धेश्वर जी को इस बात के लिए गर्व हुआ कि वे अत्यंत महत्वपूर्ण और संवेदनशील माध्यम लेखा परीक्षा से जुड़े जहाँ उनके सामने अपनी सामाजिक भूमिका निभाने का सुनहरा और व्यापक अवसर आया और उन्होंने अपने दायित्व का निर्वहण पूरी निष्ठा और ईमानदारी से किया कारण कि भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए लेखा परीक्षा के रचनात्मक सहयोग की बहुत बड़ी आवश्यकता है-खासकर इसके आर्थिक संकट की पृष्ठभूमि में। देश में सामाजिक-आर्थिक स्तर पर हो रहे परिवर्तन के साथ डेग-डेग मिलाकर चलने में ही लेखा परीक्षा की सार्थकता को सिद्धेश्वर जी ने अपने कार्यकाल में साबित किया।'

सिद्धेश्वर जी से मैं एक लंबे अरसे से परिचित रही हूँ। मुझे अच्छी तरह याद है कि वे, चाहे रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य की हैसियत से चेन्नई स्थित भारतीय रेलवे के विभिन्न कार्यालयों में राजभाषा

हिंदी के कार्यान्वयन का निरक्षण करने के लिए आए हों या राष्ट्रीय विचार मंच के राष्ट्रीय महासचिव होने तथा उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के संपादक होने के नाते उन्होंने दक्षिण भारत के तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल या आँध्रप्रदेश का दौरा किया हो, हिंदी को लेकर चेन्नई में आयोजित संगोष्ठियों को उन्होंने अपनी उपस्थिति से न केवल गौरवान्वित किया है, बल्कि अपने उद्‌गार से यहाँ के लोगों को हिंदी में काम करने के लिए उन्होंने प्रेरित और प्रोत्साहित किया है। कुछ इसी वजह से सिद्धेश्वर चेन्नई के प्रायः सभी हिंदी एवं तमिल भाषाविदों एवं प्रबुद्धजनों से परिचित रहे हैं।

सिद्धेश्वर जी का सान्निध्य प्राप्त होने के कारण चेन्नई के खासतौर पर प्रबुद्धजनों के प्रति इनका अपनत्व का भाव देखने में आता रहा है, क्योंकि वे एक स्वच्छंद प्रकृति के सरल और सहज व्यक्ति है और हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति समर्पित हैं। यही नहीं, मानसिक शांति की वजह से इनमें साहस, शौर्य, सहनशीलता, आत्मीयता, आत्मविश्वास आदि सद्‌वृत्तियाँ सदैव विद्यमान रहती हैं और जीवन पथ पर निरंतर चलते रहने में ही इन्हें जीवन में सुख का अनुभव होता है। दरअसल, सिद्धेश्वर जी ने जीवन जीने की कला सीख ली है। कुछ इसी वजह से समाज व राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए जीना ही इन्होंने श्रेष्ठ माना है।

जीवन और मूल्य की महत्ता को बखूबी समझते हुए अपनी आयु के सत्तर पड़ाव से गुजरने के बाद भी अपने कर्त्तव्यों एवं आदर्शों के पालन में सिद्धेश्वर अपने कदम कभी पीछे नहीं हटाते और अपनी सक्रियता कायम रखे हुए हैं जिससे हमें संतुष्टि तो मिलती ही है साथ ही प्रसन्नता भी होती है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने सिद्धेश्वर जी की हाइकु कविताओं की चर्चा करते हुए इनके द्वारा रचित गद्य में आत्मकथा- 'जीवन-रागिनी' के साथ-साथ जापान से आयातित कविता की हाइकु विधा में भी इनके द्वारा 'मेरी जीवन-यात्रा' नाम्नी आत्मकथा की चर्चा की है जिसके प्राक्कथन में सिद्धेश्वर जी ने कहा है कि अबतक किसी भाषा में हाइकु काव्य में आत्मकथा शायद ही लिखी गयी हो। इस दृष्टि से देखा जाए तो इनकी हाइकु काव्य में आत्मथा अपने ढंग की अकेली और अनूठी है जिसमें उनके जीवन से जुड़ी अनेक अविस्मरणीय घटनाक्रमों को संजोया गया है। निश्चित रूप से उक्त आत्मकथा को पढ़ने में पाठकों को आसानी होगी। उक्त आत्मकथा के प्रारंभिक जीवन नाम्नी अध्याय एक के हाइकु छंद की निम्न पंक्तियाँ

द्रष्टव्य हैं–

पिता की इच्छा　　　　　　　　चाहते थे वे
भारतीय हवा में　　　　　　　　पढ़–लिख करूँ मैं
सांस भी लूँ–मैं　　　　　　　　समाज सेवा

बाप–दादा से
संस्कार जो लिया है
बच्चों को दिया

बच्चों का खुशी　　　　　　　　हम, सदैव
माँ–बाप की खुशी भी　　　　　　माता–पिता के प्रति
होती है सदा　　　　　　　　　कृतज्ञ रहें

सिद्धेश्वर जी के जीवन से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्यों को प्रस्तुत पुस्तक में संकलित किया गया है। सेवावधि के अंकों में बिताए छत्तीस वर्षो की महत्वपूर्ण घटनाएँ तो हैं ही, अक्षरों की दुनिया का भी विस्तार से वर्णन है। फिर उनके सार्वजनिक जीवन की घटनाएँ बताती हैं कि उनके मन में पिछड़ों, स्त्रियों तथा समाज के हाशिए पर पड़े लोगों के प्रति हुए भेदभाव पर रोष था।

प्रखर बुद्धि के सिद्धेश्वर जी अपने को विद्वत्‌जनों के बीच प्रभावित करते रहे हैं और कभी हीनभावना से ग्रस्त नहीं हुए। उनके मन में आज भी यह पीड़ा सलती है कि स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में समाजवादी नेताओं तथा आजादी के लिए बलिदान देने वाले नेताओं ने समाजवाद का जो खूबसूरत सपना देखा था आज तक पूरा नहीं हो सका है। यह सपना आज भी बना हुआ है और शायद इसे मूर्त रूप देने का समय आ गया है।

इस पुस्तक में सिद्धेश्वर जी के जीवन संघर्ष का परिवेश के साथ बेहद सहज एवं यथार्थपरक रूप में उभारा गया है। सिद्धेश्वर जी के इस जीवनी–साहित्य से यह परिलक्षित होता है कि वह साधारणजनों के संसार में प्रवेश करके ऐसी चीजों, स्थितियों और अनुभवों को देखने का प्रयास करते हैं जो अपने मामूलीपन में भी विलक्षणता का बोध कराती है। साधारण अनुभव अपने भीतर कैसी असाधारणता छिपाए रहता है सिद्धेश्वर जी का साहित्य इसका प्रमाण है। वह चीजों को अत्यंत सहज ढंग से व्यक्त करते हैं, पर पूरी कलात्मकता के साथ। लेखक ने यथार्थ का पूरी समग्रता और गतिशीलता के साथ चित्रण किया है। इसके माध्यम से सामाजिक रिश्तों, राजनीतिक हलचलों और सांस्कृतिक विकास के बिंदुओं को रेखांकित किया

जा सकता है।

नि:संदेह अपनी रचनात्मक सक्रियताओं एवं संगठन तथा पत्रिका से सक्रिय रूप से जुड़े रहने के कारण सिद्धेश्वर जी एक लंबे अरसे से हिंदी पाठकों के बीच अपनी पहचान बनाए हुए हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि व्यक्ति के आत्मकेंद्रित होते जाने और जीवन के हर क्षेत्र में बाजार का चौतरफा हमला होने की वजह से विभिन्न रूपों में उसके खतरों से अगाह करने का काम रचनाकारों ने किया है जिसमें सिद्धेश्वर जी ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुख पत्र 'विचार दृष्टि' के माध्यम से इनके द्वारा चलाए जा रहे जन चेतना अभियान इसका प्रमाण है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक की इस बात से हम सहमत हैं कि सिद्धेश्वर जी अपनी आँख बंद करके लोक को सहराने वाले लेखक नहीं हैं, बल्कि वे वहाँ की खामियों व खूबियों को विवेकसंगत आधार पर स्वीकार करते हैं।

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत जीवनी-साहित्य के तहत समेटने में विद्वान लेखक डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार ने एक कुशल संग्रहकर्ता का परिचय दिया है। साथ ही नायक की संघर्षशील चेतना को उनके साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। 'सिद्धेश्वर: अंकों से अक्षर तक' पुस्तक पढ़कर मन प्रसन्नह हो गया। हमें तो पता ही न था कि किसी साहित्यकार एवं पत्रकार के जीवन के पर्त-अर्थ इस तरह से भी खोले जा सकते हैं। जीवन के ऐसे पर्त-अर्थ खोलने वाले लेखक एवं संपादकद्वय को हमारी हार्दिक बधाई और इस पुस्तक के नायक सिद्धेश्वर जी को दीर्घायु होने की कामना। विश्वास है इस जीवनी-साहित्य का साहित्य-जगत में स्वागत होगा।

प्रो.(डॉ.) मधु धवन
पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष
सेंट स्ट्रैला मारिश कॉलेज
चेन्नई, तमिलनाडु

संपर्क:
के-3, अन्नानगर
चेन्नई, तमिलनाडु
दूरभाष-

प्रकाशकीय

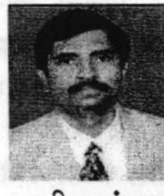

सुधीर रंजन

मेरे पिताजी को किसी के भी समक्ष सिर न झुकाने की शिक्षा मेरे दादा जी से मिली और उन्होंने ही पिताजी में आत्मसम्मान की भावना भरी। इसलिए जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह साहित्य के क्षेत्र में भी किसी प्रकाशक के साथ व्यक्तिगत स्तर पर पिताजी ने संपर्क स्थापित नहीं किया। जब से वे दिल्ली में रहकर साहित्य, संगठन और पत्रकारिता के क्षेत्र में काम करने लगे, तो इन्होंने अपनी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन प्रारंभ किया जिसका दायित्व उन्होंने मेरे कंधों पर सौंपा, जबकि हार्डवेयर कम्प्यूटर के क्षेत्र में मेरी भी व्यस्तता कम नहीं थी। वैसे इनकी रचनाएँ देश के विभिन्न राज्यों से प्रकाशित प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छपती रही हैं और उसी से उनकी साहित्यिक पहचान बनी, किंतु रांष्ट्रीय विचार मंच के मुख-पत्र के रूप में जब 'विचार दृष्टि' पत्रिका का प्रकाशन दिल्ली से होने लगा, तो पिताजी की अधिकतर रचनाएँ इसमें प्रकाशित होती रही हैं।

स्पष्टवादिता, निर्भीकता, निशपक्षता, निष्ठा, कर्मठता और ईमानदारी मेरे पिताजी के व्यक्तित्व और लेखन की विशेषताएँ हैं। भरी सभा-संगोष्ठियों में राज की बात खुलकर कहने का वे साहस रखते हैं और किसी गलतबयानी को दुरूस्त करने का हौसला भी दिखाते हैं। जो लोग अनुचित कार्य करते हैं उसे नजरअंदाज करके संबंधों को निभाते जाने की व्यावहारिकता वे नहीं दिखाते हैं। कभी-कभी तो वे अनुचित व गलत को किसी भी तरह बर्दाशत नहीं कर पाते हैं। यही कारण है वे एक सिद्धहस्त साहित्यकार, सशक्त संपादक, सुयोग्य और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अपना जीवन व्यतीत कर अपने को प्रतिष्ठित किए हुए हैं। 75 वर्ष की उम्र में भी आज जिस सक्रियता से साहित्य, पत्रकारिता और संगठन में लगे हुए हैं वह उनकी जीवंतता, ज्ञान-पिपासा और निर्भीकता का द्योतक है। इस उम्र में अधिकतर लोग आँख मूँदकर अपने अतीत और व्यक्तिगत जीवन में सीमित-संकुचित हो जाते हैं, किंतु मेरे पिताजी अपने आसपास के घटनाक्रम को देखते-परखते रहते हैं और जितना संभव हो पाता है, उसके पक्ष-विपक्ष में अपने विचार देते रहते हैं।

पिताजी अपने को साहित्य, समाज और पत्रकारिता में समाहित होकर रहना ही पर्याप्त समझते हैं। राजनीति इनके लिए चौथे पायदान पर है। आखिर तभी तो इनके मुख से अथवा कलम से सत्ता-विरोध की आवाज अक्सरहाँ निकलती है। हालांकि इनके लिए कभी-कभी वह महंगा पड़ता है, क्योंकि खुद वह शीशे के घर में बैठे हैं। 'जो खुद शीशे के घर में बैठा हो, उसे दूर से पत्थर फेंकना तो महंगा पड़ता ही है।' यही कारण है कि 'सत्ता और साहित्य' में जिस प्रकार घपलेबाजी और चालाकी चल रही है उससे पिताजी को सख्त नफरत है और लेखन के लिए किसी तरह पूर्वाग्रह नहीं पालते हैं तथा गलत बात के लिए दोस्त और दुश्मन का फर्क पैदा करके बात नहीं करते हैं। वे तथ्य और सत्य के लिए अपने ज्ञान और विवेक को ही आधार मानते हैं। इनका लेखन सीधा भारतीय दृष्टि और परिप्रेक्ष्य से अनुप्राणित होता है।

मनुष्य को प्रकृति ने किसी महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बनाया है। जब वह उस महान लक्ष्य की प्राप्ति में अपने को नहीं लगाता है तब उसका जीवन ही व्यर्थ है। ऐसे मनुष्य के जीवन को प्रकृति मरणतुल्य कर देती है। मुझे लगता है कि कुछ इसी भाव से प्रेरित होकर इस पुस्तक के नायक मेरे पिताश्री उस महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समर्पित हैं और इसी से उन्हें आत्मसंतोष व शांति मिलती है।

हमारे पिताश्री भी एक ऐसे ही दृढ़ संकल्पित लेखक हैं जिन्होंने लेखक और प्रकाशक के संबंधों में उठापटक के माहौल में अपनी पुस्तकों के प्रकाशन हेतु प्रकाशक का दायित्व मेरे कंधों पर सौंपा। दरअसल, जिनका प्रकाशन करने का उत्साह हुआ, सच कहा जाए तो साहित्य में से कुछ अक्षर भरने का जज्बा भी जागता है। कंप्यूटर इंजीनियर होने की वजह से व्यावसायिक कुशलता में मैं उतना पारंगत नहीं जितना कि एक शुद्ध प्रकाशक होता है। मैंने तो केवल पिताश्री की किताबों को बढ़ावा देने के ख्याल से ही प्रकाशक की जवाबदेही ली है, क्योंकि एक दूसरे के सहयोगी होकर ही साहित्य जगत में अच्छे परिणाम आ सकते हैं।

इस पुस्तक में लेखक ने मेरे पिताश्री की जीवन गाथा प्रस्तुत की है। मेरी माँ ने सदैव उन्हें इस रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित किया है घर-गृहस्थी के सारे कार्यों को अपने कंधों पर लेकर। समाज के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और साहित्य, संगठन एवं पत्रकारिता के प्रति उनके लगाव को देखकर मुझे भी गर्व का अनुभव होता है। कम्प्यूटर के क्षेत्र में व्यस्तता की वज़ह से अपने पिताश्री के कार्यों में अपेक्षित सहयोग मैं नहीं कर पाता हूँ

जिसका मुझे अफसोस है, पर प्रसन्नता यह देख-सुन कर होती है कि उनका पौत्र समीर रंजन उनके हर आदेश का पालन ही नहीं करता, बल्कि कमरे में बिखरी किताबों व कागजातों को करीने से सजाकर रखने तथा उनके खान-पान में आवश्यक सहयोग करने में तत्पर रहता है। आधुनिक समाज में निरंतर परिवर्तित हो रहे पारिवारिक रिश्ते एवं परंपरागत पारिवारिक ढाँचे के ध्वस्त होते जाने वक्त परिवार से दूर रहकर सामाजिक एवं साहित्यिक कार्यों में व्यस्त रहना सब के लिए संभव नहीं। पुरानी और नई पीढ़ी के दो छोरों को समेटते हुए और जीवन को एक राग मानते हुए इसकी सरगम में ही जीवन की सार्थकता समझना पिताश्री की फितरत है। काम करने की उनकी शैली माधुर्य गुण से ओतप्रोत होने के कारण उनमें भावना का आवेग अजस्र रूप से प्रवाहित होता रहता है। सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार जी ने पिताश्री की इसी शैली और कला का मूल्याँकन इस पुस्तक में किया है जिसकी भाषा में एक विलक्षण ताजगी, घनत्व, जीवंतता एवं सम्प्रेषण की कुशलता विद्यमान है।

पिताश्री लेखन-कार्य में इसलिए लगे रहते हैं कि इनमें समाज के कुछ दर्द हैं, पीड़ा है, अनुराग है, लगन है, और विचार है। इसके ठीक विपरीत इन्होंने धन और भोग-विलास को कभी जीवन का लक्ष्य नहीं बनाया। इन्होंने सदैव जीवन की जटिल समस्याओं से जूझते व्यक्ति की मनोवृत्ति को मूर्तिमान करने का प्रयास किया है। राजनैतिक स्तर पर फैल रही अराजकता और असमंजसता का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ते प्रभाव को पिताजी ने अपने लेखन का विषय-वस्तु बनाया। भारतीय मनीषियों ने जिन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और नैतिक मान्यताओं की परिकल्पना की थी आज उसकी प्रासंगिकता को समझते हुए उसे मूर्तरूप प्रदान करने की कोशिश इनके द्वारा की जा रही है। सदैव विचारों को अपने जीवन में अपनाने की इनकी चेष्टा के कायल हैं हम। संभवत: इन्हीं सब विशेषताओं की वजह से विद्वान लेखक ब्रह्मचारी जी पिताश्री पर जीवनी-साहित्य लिखने के लिए प्रेरित हुए। हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन संपादकों तथा शुभेच्छुओं ने इस पुस्तक को पूरा करने के लिए पिताश्री के अंकों से अक्षर तक की दुनिया के सारे तथ्यों का संकलन कर उसे लेखक को उपलब्ध कराया उसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

संपर्क:
'दृष्टि', यू-207, शकरपुर,
विकास मार्ग, दिल्ली-92

सुधीर रंजन
प्रकाशक, सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन
डी.55, गली नं.-5, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-92

प्रथम अध्याय
अंकों की दुनिया

(१) लेखा एवं लेखा परीक्षा :

सिद्धेश्वर जी ने सन् 1962 में पटना विश्वविद्यालय से श्रम एवं समाज कल्याण विषय में स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त करने के बाद यों तो 1963 में कुछ महीनों तक भारतीय रेलवे में अपनी सेवा प्रदान की, किंतु अप्रैल, 1964 में उन्होंने भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग की प्रतियोगिता परीक्षा में सफल होने के बाद उसके राँची स्थित कार्यालय, महालेखाकार, बिहार में नियुक्त होकर लेखा परीक्षक (ऑडिटर) के पद पर योगदान किया और वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी के पद से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने तक 36 वर्षो तक लगातार लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग में अंकों से खेलते रहे। लेखा एवं लेखा परीक्षा के कार्य कुछ ऐसी तकनीकी प्रकृति का है कि वे अंकों से खेलने के आदी हो गए। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वे अक्षरों से अनभिज्ञ रहे और संवेदनाओं से शून्य। सच तो यह है कि अंक अक्षर द्वारा ही परिभाषित होता है, दोनों का संयोग मणिकांचन का संयोग है। अक्षर से भाव उत्पन्न होते हैं और भाव से संवेदना। अंक ज्ञान को अक्षर के माध्यम से व्यक्त करते हुए अपने संवेदनापूरित भावों को विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' द्वारा उन्होंने पाठकों तक पहुँचाया जिसकी विस्तार से चर्चा आगे करेंगे। बहरहाल, सिद्धेश्वर जी द्वारा लेखा की दुनिया में बिताए गए दिनों को याद करेंगे।

सिद्धेश्वर जी भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के बारे में बताते हैं कि आजादी के बाद भारत में अपनाई गई संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 149 से 151 के अंतर्गत सरकार के सार्वजनिक राजकोष पर निगाह रखने तथा वित्तीय कार्यो की समीक्षा और समीक्षा के माध्यम से नियंत्रण रखने का भार भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक को दिया गया है। वे अपना कार्य प्रभावित रूप से कर सके इसके लिए उन्हें स्वतंत्र तथा सरकारी नियंत्रण से मुक्त रखा गया है। ए. के. चन्दा के अनुसार सीएजी भारतीय लोकतंत्र के प्रहरी हैं। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा था-''मैं समझता हूँ कि संविधान में सीएजी सबसे प्रमुख अधिकारी है।'' सीएजी का यह पद भारतीय लोक प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। उसे

निष्पक्ष रहकर निर्भीकतापूर्वक वस्तुपरक आकलन करना होता है। वह न तो किसी व्यक्ति के प्रति उत्तरदायी है और न किसी दल के प्रति। वह राजकोष के प्रहरी के रूप में सरकार की आर्थिक नीति तथा वित्त व्यवस्था पर सरकार को सलाह देता है। राजकोष से संबद्ध वित्तीय अनियमितताओं के बारे में वह लोक लेखा समिति तथा जनप्रतिनिधियों के माध्यम से जनता को सचेत करता है। उनके सुधार के उपाय बताता है। इस व्यवस्था के अभाव में संसदीय प्रणाली का सफल होना कतई संभव नहीं है। आज के युग में जहाँ साधना से अधिक साधन का महत्व है, यह प्रक्रिया विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो गई है।

भारत की ऐसी महत्वपूर्ण संवैधानिक संस्था अथवा विभाग–भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग (Indian Audit & Accounts Department) में अपनी सेवा प्रदान करने का अवसर प्राप्त कर सिद्धेश्वर जी को बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि उनकी मानसिकता के अनुरूप ही उन्हें सेवा करने का मौका मिला।

जैसा कि मैंने पूर्व में कहा था कि लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग में नियुक्ति प्राप्त करने के पहले 1963 में कुछ महीनों तक भारतीय रेलवे में सिद्धेश्वर जी अपनी सेवा दे चुके थे, मगर उसे सिद्धेश्वर जी ने इसलिए छोड़ा कि वह पद उन्हें अपनी मानसिकता के अनुरूप रास नहीं आ रहा था। दरअसल, इसके पीछे भी एक घटना हुई जिसे आपके समक्ष प्रस्तुत करना मैं लाजिमी समझता हूँ, क्योंकि उससे आपको सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व एवं विचार को जानने का मौका मिलेगा। हुआ यों कि भारतीय रेलवे प्रशासन ने इनका पदस्थापन बतौर रेलवे प्रतिनिधि के रूप में राउरकेला स्टील प्लांट के रेलवे स्टेशन पर इसलिए किया था, ताकि राउरकेला स्टील प्लांट में उपयोग के लिए रेलवे के द्वारा लाए गए सामानों में कमी अथवा क्षति होने की स्थिति में रेलवे प्रतिनिधि उस आशय का एक प्रमाण-पत्र निर्गत कर सके जिसके आधार पर राउरकेला स्टील प्लांट को हुई क्षतिपूर्ति के लिए रेलवे से रकम प्राप्त करने में सुविधा होगी।

एक माह तक सिद्धेश्वर जी ने बड़ी कुशलतापूर्वक अपने दायित्व का निर्वाह किया, तो दूसरे माह के प्रथम सप्ताह में रेलवे प्रशासन की वेतन शाखा के कर्मी ने जब इन्हें एक माह का वेतन दिया, तो फिर उसे वेतन से कई गुणा अधिक की राशि वेतन शाखा के कर्मी जब सिद्धेश्वर जी की ओर बढ़ाने लगे, तो सिद्धेश्वर जी ने बड़ी उत्सुकता से पूछा–'यह राशि किसलिए आप मुझे देना चाहते हैं?' कर्मी ने बताया कि–'राउरकेला में रेलवे

के कर्मी माहभर में कुछ अवैध कमाई बतौर रिश्वत के रूप में कमाते हैं जिसे बराबर-बराबर रेलवे के स्टाफ के बीच बाँट दिया जाता है। वही राशि मैं आपको दे रहा हूँ।' सिद्धेश्वर जी कर्मी का उत्तर सुनकर आश्चर्यचकित हुए और पुन: उनसे पूछा-'इस अवैध राशि में मेरा क्या योगदान है?' कर्मी ने उत्तर दिया-'कुछ नहीं'। सिद्धेश्वर जी ने पुन: कहा-'जिस राशि में मेरा योगदान नहीं उसका मैं हिस्सेदार कैसे हो सकता? आप तबतक इंतजार कीजिए जबतक कि उस राशि में मेरा योगदान न हो जाए।' सिद्धेश्वर जी की बात सुनकर वेतन शाखा के कर्मी हैरान हुए और इधर सिद्धेश्वर जी को यह सोचकर हैरानी होने लगी कि आखिर किस गंदी नाली में उन्हें नौकरी मिली और इस नौकरी से शीघ्रातिशीघ्र पींड छुड़ाने की चिंता उन्हें सताने लगी। इसी बीच महालेखाकार कार्यालय, राँची से ऑडिटर के पद की नियुक्ति के लिए जब अखबार में प्रतियोगिता परीक्षा की खबर छपी, तो वे इसमें शामिल हुए और उसमें उन्हें सफलता मिली। बस क्या था उन्हें महालेखाकार कार्यालय से ऑडिटर के पद पर योगदान करने का जब नियुक्ति पत्र मिला तो इन्होंने भारतीय रेलवे की नौकरी से त्याग-पत्र देने में एक मिनट की भी देरी नहीं की और अप्रैल, 1964 में राँची जाकर महालेखाकार कार्यालय की प्रशासन शाखा में इन्होंने अपना योगदान दिया जहाँ से कहा गया कि किसी अनुभाग में पदस्थापन के लिए दो-तीन दिन इंतजार करें। इस प्रकार दो-तीन दिनों के बाद लेखा शाखा में इनका पदस्थापन हुआ और उस पद पर नियमित रूप से सिद्धेश्वर जी काम करने लगे। उन्हें याद है कि जिस ए.सी.-2 अनुभाग में इनका पदस्थापन हुआ उसके एक सहकर्मी श्री कवीन्द्र प्र. पाण्डेय आज भी सिद्धेश्वर जी के ए.जी. कॉलोनी स्थित 'संस्कृति' निवास के ठीक सामने किराए के मकान में अपने एकलौते सुपुत्र और पुत्रवधू के साथ सपत्निक सानंद रह रहे हैं। श्री पाण्डेय जी ने बताया कि ए.सी.-2 अनुभाग में रेलवे वारंट से संबंधित भाउचर का लेखा-जोखा होता था। इस प्रकार वर्षो तक लेखा शाखा में रहने के बाद सिद्धेश्वर जी के सबल कंधों पर लेखा -संग्रहण(Consolidation of Accounts) का दायित्व सौंपा गया जिसका निर्वहण इन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक किया।

इस अवधि के दौरान सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में एक निखार और आया जब वे बिहार सिविल ऑडिट एंड एकाउन्ट्स एसोशियेशन की गतिविधियों से जुड़े। इससे संदर्भित घटना की चर्चा करना भी सर्वथा उचित जान पड़ता है, क्योंकि यह भी एक अनोखी घटना है जिसे पढ़कर आपको

भी हैरानी होगी। हुआ यों कि महालेखाकार कार्यालय, राँची के प्रशासन अनुभाग में योगदान देने के बाद जब इनसे दो तीन दिन तक पदस्थापन के लिए इंतजार करने को कहा गया, तो कार्यालय के मुख्य भवन के अतिरिक्त कई पुराने भवन में भी स्थित विभिन्न अनुभागों का जब सिद्धेश्वर जी चक्कर लगाने लगे, तो इनकी नजर कार्यालय के आगे टंगे बिहार सिविल ऑडिट एंड एकाउन्ट्स एसोशियेशन के बोर्ड पर पड़ी और जब वे वहाँ पहुँचे, तो उसके सूचनापट से चिपकी एक अधिसूचना को वे देखने लगे। अधिसूचना के मुताबिक महालेखाकार कार्यालय के सभी कर्मियों के इस संघ के पदाधिकारियों का चुनाव होने वाला था और उसके लिए संघ कार्यालय से आवेदन पत्र लेकर चुनाव के लिए उसे जमा करना था। बस क्या था, सिद्धेश्वर जी को एक मिनट भी देर न लगी और कार्यालय में जाकर उन्होंने मनोनयन पत्र (Nomination Paper) की माँग वहाँ बैठे संघ के पदाधिकारियों से की। यह घटना है ठीक उसी दिन की जब सिद्धेश्वर जी महालेखाकार कार्यालय राँची, में योगदान किया था। इसलिए वहाँ के कोई भी अधिकारी कर्मचारी इन्हें जानते-पहचानते नहीं थे। संघ के पदाधिकारियों से जब सिद्धेश्वर जी ने मनोनयन-पत्र की माँग की तो वे इन्हें यह कहकर मनोनयन-पत्र नहीं दे रहे थे कि यह संघ के चुनाव में लड़ने वालों के लिए है, बाहरी लोगों के लिए नहीं।

सिद्धेश्वर जी ने उन पदाधिकारियों को यह कहा कि वह इस कार्यालय के ही एक कर्मी हैं और आज ही ऑडिटर के पद पर उन्होंने योगदान किया है। इतना ही नहीं जब उन्होंने यह भी कहा कि संघ के होने वाले चुनाव में वह भी एक उम्मीदवार के रूप में हिस्सा लेना चाहते हैं, तो पदाधिकारियों को आश्चर्य का ठिकाना न रहा, क्योंकि संघ के इतिहास में शायद यह पहली घटना होगी जब कोई कार्यालय का कर्मी योगदान के दिन ही संघ का चुनाव लड़कर उसकी कार्यकारिणी का सदस्य होना चाहता है। यही है सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व की एक विशेषता जो अपने से कुछ बेहतर पाने का सपना छात्र जीवन से ही पालते आए हैं। छात्र जीवन से ही खादी का कुर्त्ता-पायजामा इनका लिवास रहा है। संघ के पदाधिकारियों द्वारा दिए गए मनोनयन-पत्र को भरकर सिद्धेश्वर जी ने चुनाव पदाधिकारी के समक्ष जमा किया और चुनाव के समर में कूद पड़े। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस चुनाव के नतीजे आने पर वे संघ की कार्यकारिणी के लिए निर्वाचित घोषित किए गए और तब से लेकर फिर 31 मई, 2000 को

पटना स्थित महालेखाकार कार्यालय से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने तक वे संघ के कोषाध्यक्ष, सचिव, महासचिव तथा अध्यक्ष पद को सुशोभित करते रहे। यहाँ तक कि वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर रहते हुए भी अंत तक वे आल इंडिया ऑडिट एंड एकाउन्ट्स ऑफिसर्स एसोसियेशन के संयुक्त महासचिव(Joint Secretary General) के पद पर आसीन रहे।

ऑडिटर के पद पर तीन साल रहने के बाद सिद्धेश्वर जी की प्रोन्नति सिनियर ऑडिटर के पद पर हुई और 1973 दिसंबर में जब महालेखाकार, बिहार के एक हिस्से का पटना में स्थानांतरण हुआ, तो सिद्धेश्वर जी ने पटना जाना पसंद किया। उन्हीं दिनों भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक, नई दिल्ली द्वारा आयोजित अनुभाग अधिकारी की परीक्षा में वे शामिल हो चुके थे और पटना के महालेखाकार कार्यालय में तबादला होने के बाद दिसंबर, 1973 में ही सिद्धेश्वर जी ने अनुभाग अधिकारी का पदभार ग्रहण किया। महालेखाकार, बिहार, पटना कार्यालय के बिहार सिविल ऑडिट एंड एकाउन्ट्स एसोसियेशन का चुनाव हुआ, तो सिद्धेश्वर जी उसके अध्यक्ष पद के लिए निर्वाचित हुए। जून, 1974 में रेलवे कर्मचारियों की हुए अखिल भारतीय स्तर के हड़ताल में सहानुभूति जताने के लिए जब ऑल इंडिया सिविल ऑडिट एंड एकाउन्ट्स एसोसियेशन के आह्वान पर एक दिन का सांकेतिक हड़ताल के वक्त सिद्धेश्वर जी के नेतृत्व में जब हड़ताल शत-प्रतिशत सफल हुआ, तो महालेखाकार से लेकर सभी वरिष्ठ अधिकारी इसलिए अचंभित हुए कि उन दिनों पटना का महालेखाकार कार्यालय गाँधी मैदान के समीप बिस्कोमान, बोरिंग केनाल रोड स्थित आजाद भवन सहित पाँच-सात भवनों में स्थित था, बावजूद इसके उस हड़ताल में कार्यालय के शत-प्रतिशत लोगों ने हिस्सा लेकर उसे सफल बनाया जिसका श्रेय लोगों ने सिद्धेश्वर जी को इसलिए दिया, क्योंकि अनुभाग अधिकारी रहते हुए भी उन्होंने सांकेतिक हड़ताल को सफल बनाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ा। संघ के 16 पदाधिकारियों के साथ सिद्धेश्वर जी को भी निलंबित किया गया। उन दिनों महालेखाकार कार्यालय में इलाहाबाद के श्री गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, उपमहालेखाकार, प्रशासन के पद पर आसीन थे जो बाद में प्रोन्नति पाते हुए नई दिल्ली स्थित मुख्यालय में अपर उपनियंत्रक-महालेखा परीक्षक के पद पर विराजमान हुए।

कार्यालय के मनोरंजन क्लब के पदाधिकारियों के चुनाव के दिन जब उक्त महालेखाकार, प्रशासन के पद पर आसीन श्री गिरीश चंद्र

श्रीवास्तव से सिद्धेश्वर जी की अकस्मात् मुलाकात हो गई, तो उन्होंने सिद्धेश्वर जी से पूछा-'क्या आपको निलंबन से मुक्त नहीं होना है?' सिद्धेश्वर जी का उत्तर था-जब तक उनके सभी सहयोगी निलंबन से मुक्त नहीं हो जाते हैं, तब तक मैं निलंबन से मुक्त नहीं होना चाहता।' इस उत्तर से संघ और अपने सहयोगी के प्रति उनके समर्पण का भाव स्पष्ट झलकता है। कहा जाता है कि सिद्धेश्वर जी ने प्रशासन के उपमहालेखाकार को यह भी कहा था कि वह एक किसान के बेटे हैं और किसान स्वाभिमानी होता है, इसलिए हड़ताल के बाद अपने पुत्र के निलंबन पर उनके पिता को गर्व हुआ था और उन्होंने अपनी प्रसन्नता जाहिर की थी, क्योंकि उनका पुत्र एक जायज काम के लिए निलंबित हुआ था, नाजायज के लिए नहीं। तकरीबन एक साल बाद जब संघ के सभी पदाधिकारियों का निलंबन वापस हुआ, तब सिद्धेश्वर जी भी निलंबन से मुक्त हुए, मगर निलंबन से मुक्त होने के पत्र में 5 प्रतिशत काटकर निलंबन अवधि का वेतन निर्गत करने की बात कही गई। इसकी प्रतिक्रिया में सिद्धेश्वर जी ने महालेखाकार, बिहार को एक पत्र लिखकर कहा कि 5 प्रतिशत कटौती कर वेतन निर्गत करने की जो बात कही गई है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि उनपर आरोप हैं जिससे उन्हें पत्र के माध्यम से अवगत कराया जाए अन्यथा वे न्याय के लिए अदालत जाने को बाध्य होंगे। सिद्धेश्वर जी के इस धमकी भरे पत्र के एक माह के बाद महालेखाकार कार्यालय से जो उन्हें पत्र निर्गत किया गया उसमें बिना कटौती के ही उन्हें वेतन देने की बात कही गई। सिद्धेश्वर जी के इस कदम से उनकी निर्भीकता स्पष्ट झलकती है। नौकरी में रहकर भी किसी प्रकार का समझौता न करने का साहस काबिलेतारीफ था। दरअसल, ये सदैव सफलता के साथ-साथ सार्थकता पर बल देते रहे और ईमानदारी एवं निष्ठा को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा, क्योंकि यही दोनों उनके संबल थे। उन्होंने कभी अपनी सकारात्मकता को धीमा करने या उसके आड़े आने की इजाजत नहीं दी और इनमें हमेशा से अपने से बाहर जो बहुत बड़ी सच्चाई है, उसमें शिरकत का उत्साह रहा है।

सिद्धेश्वर जी को यह बराबर लगता है कि इस दुनिया में जो इतनी विपुलता, इतनी समृद्धि है, बावजूद बहुत सारी विकृतियों के, उन्हें सक्रिय रखने के लिए काफी है। वे बराबर यह कहते सुने गए हैं कि अगर उनके किए से दूसरों को कोई सकारात्मक फर्क पड़ता है, तो ऐसा प्रयत्न कभी छोड़ना नहीं चाहिए।

(२) लेखा परीक्षा (ऑडिट):

सन् 1984 में भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के राज्य स्थित महालेखाकार कार्यालयों का विभाजन जब लेखा एवं हकदारी और लेखा परीक्षा के रूप में हुआ, तो अपनी मानसिकता के अनुरूप सिद्धेश्वर जी ने कार्यालय, महालेखाकार (लेखा परीक्षा), बिहार में रहना पसंद किया। बताते चलें, यद्यपि 'नियंत्रक महालेखापरीक्षक' में नियंत्रक (Comptroller) शब्द आज भी जुटा हुआ है, फिर भी भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक का प्रमुख कार्य है लेखा परीक्षा (ऑडिट) करना और लेखा परीक्षा से प्राप्त तथ्यों के आधार पर तैयार किए गए प्रतिवेदनों को प्रस्तुत करना। भारत के नियंत्रक--महालेखा परीक्षक सरकार के लेखे की लेखा परीक्षा करके प्रतिवेदन देते हैं। उन प्रतिवेदनों पर लोक लेखा समिति द्वारा अनुवर्त्ती कार्रवाई की अपेक्षा की जाती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 148 के द्वारा स्थापित सीएजी एक ऐसी संस्था है जो केंद्र एवं राज्य सरकारों के खर्च का लेखा-जोखा रखती है। सन् 1960 में, अस्तित्व में आई यह संस्था सरकारी नीति-निर्माण का हिस्सा तो नहीं, पर सरकार द्वारा खर्च की गई पाई-पाई का हिसाब रखकर यह बताती है कि कहाँ जरूरत से ज्यादा खर्च हुआ और कहाँ-कहाँ भ्रष्टाचार एवं घपले-घोटाले हुए। इस संस्था की स्थापना पारदर्शिता और सार्वजनिक जीवन में ईमानदारी के बारे में जवाबदेही लाने के लिए की गई जिसका निर्वहण लेखा परीक्षा द्वारा किया जाता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के तेज विस्तार के साथ सरकार के बजट के आकार में जहाँ निरंतर वृद्धि हो रही है, वहीं हाल के वर्षों में सरकारी धन के दुरुपयोग की शिकायतों में भी तेजी से इजाफा हुआ है। इस लिहाज से लेखा परीक्षा के सामाजिक दायित्व बढ़ने के साथ-साथ यह अत्यंत महत्वपूर्ण भी हो गया है। इस संदर्भ में सिद्धेश्वर जी का स्पष्ट मत है कि सरकारी धन के दुरुपयोग एवं लूट-खसोट को लेखा परीक्षा इंगित करे और संबंधित सरकार का दायित्व है कि वह उनपर ध्यान दे, दोषी को सजा दे, सबक ले तथा भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति पर रोक लगाए। लोकतंत्र में राजकोष जनता की गाढ़ी कमाई से ही बनता है और यह सही है कि लोकतंत्र में जनता का कद बड़ा होता है तथा उसके प्रतिनिधियों का बोलबाला होता है, पर इसका मतलब यह नहीं कि जनता की गाढ़ी कमाई के कर के रूप में उगाही गई रकम को ही हजम कर जाने की जनप्रतिनिधियों को खुली छूट दे दी जाए

और जब लेखा परीक्षा के दौरान उनके गलत कारनामों को उजागर कर जनता के समक्ष प्रस्तुत करे, तो उनपर छींटाकशी की जाए। इधर हाल के वर्षो में यही देखने को मिल रहा है। आए दिन सरकारी कामकाज में हो रहे घोटालों का आँकड़ा आज आम आदमी के जेहन में भ्रष्टाचार के प्रतीक के तौर पर चस्पा हो गया है। सीएजी का प्रतिवेदन वह आईना है जिसमें देखा जा सकता है कि देश में भ्रष्टाचार किस हद तक व्यवस्था में अपनी जड़ें जमाता हुआ हर पल इसे खोखला कर रहा है। देश में भ्रष्टाचार के मामलों का पर्दाफाश कर घोटालों की जड़ तक पहुँचने के सूत्र थमाने का श्रेय लेखा परीक्षा को जाता है।

सिद्धेश्वर जी बताते हैं कि प्रत्येक वर्ष 100 से 125 प्रतिवेदन सदन में प्रस्तुत करने और 64 हजार छोटे-बड़े सरकारी विभागों-संस्थाओं के लेखा-जोखा पर नजर रखने वाली संस्था सीएजी ने ही बोफोर्स की दलाली सामने लाई थी।

सिद्धेश्वर जी ने अपने एक आलेख में लिखा है कि अपनी कमजोरी को स्वीकार न करना आज सबसे बड़ी कमी है, एक प्रकार की कमजोरी भी। यह कमजोरी आज भारतीय राजनीति का मुख्य चरित्र हो गयी है। खेदजनक स्थिति यह है कि हमारे देश की राजनीति सम्पूर्ण चिंतन पर हावी है। व्यक्ति और समाज का कोई पहलू नहीं जो इसके प्रभाव से ग्रसित न हो। एक भ्रष्ट राजनीति भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था को जन्म देती है और सम्पूर्ण रूप से भ्रष्ट राजनीति प्रतिफल में सम्पूर्ण भ्रष्ट समाज देती है। चारो तरफ कालिख ही कालिख-घोटाला। आखिर तभी तो बी.बी.सी. ने अपने प्रसारण में एक बार कहा था-'चलो अब घोटालों का देश भारत।' हवाला तथा बिहार का पशुपालन चारा घोटाला प्रकरण से यह स्पष्ट है कि घर को जला दिया है घर के चिराग ने। इस काम में लगे लोग अपने काले कारनामों पर पर्दा डालने के लिए कुछ भी करने को तत्पर हैं और अदा यह है कि इल्जाम किसी और के सिर जाए तो अच्छा।

इसके मद्देनजर सिद्धेश्वर जी यह मानते हैं कि इन परिस्थितियों में लेखा परीक्षा से जुड़े अधिकारियों एवं कर्मचारियों का उत्तरदायित्व और बढ़ गया है। उन्हें अब उत्तरदायित्व को चुनौती के रूप में स्वीकार कर स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए आगे बढ़ना होगा।

सिद्धेश्वर जी को इस बात के लिए गर्व हुआ कि वे अत्यंत महत्वपूर्ण और संवेदनशील माध्यम लेखा परीक्षा से जुड़े जहाँ उनके सामने

अपनीं सामाजिक भूमिका निभाने का सुनहरा और व्यापक अंवसर आया और उन्होंने अपने दायित्व का निर्वह्ण पूरी निष्ठा और ईमानदारी से किया कारण कि भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए लेखा परीक्षा के रचनात्मक सहयोग की बहुत बड़ी आवश्यकता है–खासकर इसके आर्थिक संकट की पृष्ठभूमि में। देश में सामाजिक–आर्थिक स्तर पर हो रहे परिवर्तन के साथ डेग–डेग मिलाकर चलने में ही लेखा परीक्षा की सार्थकता को सिद्धेश्वर जी ने अपने कार्यकाल में साबित किया।

इस बीच सिद्धेश्वर जी की प्रोन्नति सहायक लेखा परीक्षा अधिकारी में हो गई और उसके बाद लेखा परीक्षा अधिकारी तथा फिर तीन साल बाद ठीक समय पर वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर भी हुई।

(३)विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' का प्रकाशनः

लेखा परीक्षा में रचनात्मक सहयोग के साथ-साथ सिद्धेश्वर जी के प्रयास से महालेखाकार(लेखा परीक्षा), बिहार, पटना के कार्यालय की ओर से इनके ही संपादकत्व में विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' का प्रकाशन आरंभ हुआ जिसके प्रवेशांक का लोकार्पण 14 सितंबर, 1990 को राजभाषा अनुभाग के द्वारा कार्यालय परिसर में आयोजित एक भव्य समारोह में संपन्न हुआ। विशुद्ध रूप से विभागीय इस पत्रिका का उद्येश्य सरकारी कामकाज में राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देना था। इसके संपादक सिद्धेश्वर जी ने ही इस पत्रिका का नाम लेखा परीक्षा विभाग के कार्यो के अनुरूप 'प्रहरी' रखा, क्योंकि भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक को राजकोष का प्रहरी कहा जाता है। सिद्धेश्वर जी ने प्रवेशांक के अपने संपादकीय में लिखा भी है-" 'प्रहरी' अपने नाम और लोगों को भले ही चौंकाए, किंतु हमें तो यह अपने कर्त्तव्य और जिम्मेदारी का बोध कराता है। स्वाभाविक है कि आज जब राष्ट्र के रग-रग में विसंगति समा गयी दिखती है और जब राजकोष की रखवाली की जिम्मेदारी संविधान ने हमपर सौंप रखी है, तब हमारा भी यह दायित्व बनता है कि हम सजग रहें और सजग बनने में 'प्रहरी' पत्रिका थोड़ी भी सहायता करती है, तो यह प्रयास कारगर होगा।"

संसद सदस्य तथा हिंदी के यशस्वी प्राध्यापक प्रो. शैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव जी ने सिद्धेश्वर जी के संपादकत्व में विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' के प्रकाशन पर अपनी हार्दिक बधाई देते हुए सिद्धेश्वर जी को लिखे पत्र में अपने भावों को व्यक्त किया-'आपने पत्रिका का नाम 'प्रहरी' चुना यह बहुत अच्छा लगा। हिंदी पर निरंतर अनेक कोनों से अकारण प्रहार हो रहे हैं। इस प्रहारों से रक्षा तो कोई प्रहरी ही कर सकता है। प्रहरी का कार्य केवल इतना ही नहीं है कि बाहर के प्रहार से हमें बचाए, बल्कि यह भी है कि अन्दर से भी किसी को अकारण प्रहार न करने दे। आपके सहकर्मी दोनों की भूमिकाएँ योग्यतापूर्वक निभाएँगे इसका पूरा विश्वास है। संसार में ऐसा कोई अलग देश नहीं है जो अपनी भाषा के प्रयोग में लज्जा और आशंका का अनुभव करता हो। सड़ी-गली, टूटी-फूटी और लुंज-पुंज अँग्रेजी को लेकर हम कभी भी विश्व में गर्व के साथ अपनी बात नहीं कह सकते।'

संसद सदस्य शंकर दयाल सिंह ने भी अपनी शुभकामना देते हुए कहा कि वे किसी भी पत्रिका का शुभारम्भ किसी बच्चे के आगमन के समान लेते हैं। जैसे बच्चे में अनेक संभावनाएँ सदा छिपी होती हैं उसी तरह

पत्र में भी। मेरी शुभकामनाएँ 'प्रहरी' के साथ जुड़ी रहेंगी।

'प्रहरी' पत्रिका के माध्यम से सिद्धेश्वर जी राजभाषा हिंदी के प्रति अपनी अटूट निष्ठा का परिचय देते हुए राष्ट्रीय अस्मिता, एकता और अखण्डता को उद्‌भासित करने का एक सशक्त माध्यम भी मानते हैं। अंकों की दुनिया में रहते हुए भी यदि वे अपने ज्ञान को अक्षर के माध्यम से व्यक्त करते हुए संवेदनापूरित भावों को 'प्रहरी' द्वारा लोगों तक पहुँचा कर और उनसे अपनापन का रिश्ता जोड़कर वे अपने को धन्य मानते हैं। इस प्रकार 'प्रहरी' के प्रवेशांक से लेकर अंक 15 तक यानी सितंबर, 1990 से लेकर मार्च, 2000 तक लगातार 'प्रहरी' का प्रकाशन सिद्धेश्वर के संपादकत्व में होता रहा। हाँ, बीच में एक-दो वर्षो के लिए जब वे लेखा परीक्षा निरीक्षण के लिए कार्यालय के बाहर रहे, 'प्रहरी' के संपादन का दायित्व इनके सहकर्मी एस.एल.बी. श्रीवास्तव व उदय चन्द्र झा, आनंद मोहन झा आदि ने संभाला और पत्रिका में निखार लाया।

'प्रहरी' पत्रिका की अद्यतन स्थिति यह है कि यह अपने 60वें अंक के साथ प्रगति के पथ पर लेखा परीक्षा अधिकारी मनोज कुमार के संपादकत्व में प्रकाशित हो रही है।

सिद्धेश्वर जी ने 'प्रहरी' के 50वें अंक में 'प्रहरी पचासवें पड़ाव पर' शीर्षक से एक संस्मरण लिखा है जिसके संपादकीय टिप्पणी में संपादक मनोज कुमार ने अपने भावोद्‌गार में कहा है कि '' 'प्रहरी' पत्रिका आज जिस मोड़ पर खड़ी है वहाँ तक लाने में 'प्रहरी' के संस्थापक-संपादक श्री सिद्धेश्वर प्रसाद पूर्व वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी एवं वर्तमान में बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का अमूल्य योगदान है। प्राय: सभी अंकों में उन्होंने अपनी रचनाएँ देकर न सिर्फ मेरा मनोबल बढ़ाया है, बल्कि स्वर्ण अंक में अपना खट्टा-मीठा स्मरण भेजकर 'प्रहरी' के प्रति अपनी निष्ठा और आस्था का परिचय भी दिया है।''

सिद्धेश्वर जी ने भी अपने इस संस्मरण में लिखा है कि 'किसी विभागीय पत्रिका और उसमें भी वैसा विभाग जो अंकों और आँकड़ों से खेल रहा हो, से लगातार किसी पत्रिका के 50वें अंक प्रकाशित कर अपनी उपस्थिति दर्ज करवाए रखना किसी अजूबे से कम नहीं है। जी हाँ, भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के कार्यालय, प्रधान महालेखाकार(लेखा परीक्षा) बिहार, पटना से प्रकाशित 'प्रहरी' पत्रिका ऐसी ही है जो लगभग 20 वर्षो से निरंतर प्रगतिशील, सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विचारों को

प्रवाहित करती आ रही है। 'प्रहरी' ऐसे ही सृजन की संवाहक पत्रिका है जिसके संस्थापक-संपादक होने पर मुझे गर्व महसूस हो रहा है। वर्ष 2000 तक इस विभाग के अनुभवी रचनाकारों से लेकर नए उभरते रचनाकारों को 'प्रहरी' के पन्नों पर हम लाते रहे हैं और फिर उसके व्यापक और राष्ट्रहित में स्वेच्छा से सेवानिवृत्त होने पर।

कहा जाता है कि किसी पत्रिका के संपादक अथवा पत्रकार को निर्भीक और निडर होना चाहिए। इस दृष्टि से देखा जाए, तो 'प्रहरी' के संपादक के रूप में सिद्धेश्वर जी ने साहित्य एवं साहित्यकारों के अतिरिक्त राजनेताओं के साथ-साथ संवैधानिक संस्थाओं के बदरंग पहलुओं को उजागर करने में अपनी निर्भीकता का परिचय दिया है। उदाहरण के रूप में जनवरी-जून, 1998 में प्रकाशित 'प्रहरी' के 10वें अंक में लिखा सिद्धेश्वर जी का संपादकीय उल्लेखनीय है जिसे यहाँ आप पाठकों के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है। सिद्धेश्वर जी लिखते हैं-

'बिहार विधानसभा तथा बिहार विधान परिषद् के सत्र में भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के 31 मार्च, 1997 को समाप्त हुए वर्ष का सिविल प्रतिवेदन पेश हुआ। इस प्रतिवेदन में बिहार सरकार के विभिन्न विभागों में हुई करोड़ों रुपए की घोर अनियमितताओं एवं घोटालों को उजागर किया गया है। पर आश्चर्य यह है कि उस पर सदन में हंगामा न होकर मात्र एक अँग्रेजी शब्द के हिंदी अनुवाद में हुई त्रुटि पर काफी हंगामा हुआ। हुआ यह कि उक्त प्रतिवेदन की पृष्ठ संख्या 351 की कंडिका के पैरा-6.9 में अँग्रेजी शब्द एनोमेलस (Anomalous) का हिंदी रूपांतर मुद्रण की भूल की वजह से 'असंगत' न होकर 'समरूप' छप गया है जो अर्थ के स्तर पर विपरीत हैं। इस विसंगति को लेकर परिषद् में काफी हंगामा और शोरगुल हुआ। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि सभापति ने हस्तक्षेप करते हुए इस मुद्दे पर अपने नियमन के दौरान उक्त रूपांतर को भ्रष्टतम अनुवाद की संज्ञा दी तथा उन्होंने यह भी टिप्पणी दी कि हिंदुस्तान की संसदीय व्यवस्था के लिए यह खतरे की घंटी है। उन्होंने यह भी कहा कि सदन में रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पूर्व हिंदी रूपांतर की त्रुटियों से राज्यपाल को यदि अवगत कराया गया होता तो वे किसी भी हालत में इस रिपोर्ट को पेश करने की अनुमति नहीं देते। माननीय सभापति जी ने पुन: चेतावनी देते हुए कहा कि दोषपूर्ण दस्तावेज, त्रुटिपूर्ण अनुवाद पर आधारित दस्तावेज के निराकरण के लिए संस्थाएँ सतर्क एवं चौकस हों। प्रसन्नता इस बात की है कि विधायिका

के सदस्य एवं सभापति अँग्रेजी के शब्द के हिंदी अनुवाद में हुई भूल पर भी इतने सतर्क दिख रहे हैं, पर इससे भी अधिक प्रसन्नता तब हुई होती जब सदन से लोक लेखा समिति का शीघ्र प्रतिवेदन प्रस्तुत करने को कहा जाता तथा रिपोर्ट में प्रकाशित घोर घोटालों पर चर्चा हुई होती।'

सिद्धेश्वर जी अपने संपादकीय में पुनः लिखते हैं कि 'बिहार विधानसभा के पिछले सत्र में प्रस्तुत सीएजी का प्रतिवेदन स्पष्ट तौर पर इस तथ्य को उजागर करता है कि सत्ता पर बैठे राजनेता, मंत्री, नौकरशाह सब मिलकर सरकारी तंत्र और धन का खुला दुरुपयोग कर रहे हैं। पर आश्चर्य यह है कि सदन में सरकारी धन के दुरुपयोग तथा लूट पर चर्चा न होकर या तो छोटी-छोटी बातों में ही सत्र की समाप्ति हो जाती है या फिर मामूली सी कार्रवाई करके खानापुरी कर कर्त्तव्यों की इतिश्री मान ली जाती है। कुछ दिनों तक मीडिया में चर्चित रहने के पश्चात् ऐसे प्रकरण बिना समुचित कदम उठाए संचिकाओं में दफन हो जाते हैं।'

फिर संपादक सिद्धेश्वर जी नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के दायित्व का खुलासा करते हुए कहते हैं कि 'एक संवैधानिक संस्था के प्रमुख भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक का यह दायित्व है कि वह सरकारी धन के दुरुपयोग एवं लूट को इंगित करे और संबंधित सरकार का दायित्व है कि वह उन पर ध्यान दे, दोषी को सजा दे, सबक ले तथा भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति पर रोक लगाए। इसमें राजनीति से प्रेरित होने का सवाल कहाँ उठता है? लोकतंत्र में राजकोष जनता की गाढ़ी कमाई से ही बनता है और यह सही है कि लोकतंत्र में जनता का कद बड़ा होता है तथा उसके प्रतिनिधियों का बोलबाला होता है, पर इसका यह मतलब कतई नहीं कि जनता की ओर से उनकी गाढ़ी कमाई से कर के रूप में उगाही गई रकम को ही हजम कर जाने की जन-प्रतिनिधियों को खुली छूट दे दी जाए। जब सीएजी सरीखे एवं संवैधानिक संस्था के प्रमुख उनके गलत कारनामे को उजागर कर जनता के समक्ष प्रस्तुत करे, तो उनपर छीटाकशी की जाए।'

सिद्धेश्वर जी ने यह स्पष्ट किया है कि लेखा परीक्षा की प्रवृत्ति तथा रचनात्मक दृष्टि बिल्कुल गैर-राजनीतिक होती है। इसलिए उसके प्रतिवेदन का राजनीति से प्रेरित होने का प्रश्न ही नहीं है। जहाँ तक जनहित का सवाल है लेखा परीक्षा सामाजिक अनिवार्यता तथा प्रतिबद्धता में भी असंज्ञेय नहीं है। अतएव लेखा-परीक्षा के बारे में यह गलत अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि यह सरकार का सिर्फ अनभिज्ञ आलोचक या छिद्रान्वेषक है, बल्कि प्रशासन

के प्रजातांत्रिक दायित्व के निर्वहण में वह एक सहयोगी जैसी है।'

संपादक ने जापान का हवाला देते हुए कहा है कि 'एशिया का एक देश जापान भी है जहाँ किसी भी प्रकार के भारी घोटाले के प्रकाश में आने के बाद सत्तारूढ़ प्रधानमंत्री जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर इस्तीफा दे देते हैं और एक भारत देश है जहाँ के प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री तथा अन्य मंत्रियों पर अरबों रुपये के घोटाले का आरोप लगने के बाद भी वे संवैधानिक संस्था पर राजनीति से प्रेरित होने की बात कहकर लोकतंत्र का माखौल बनाने का प्रयास करते हैं। जिधर यह देश चला जा रहा है, उधर से देश को चौराहे पर लाने के लिए और ठीक रास्ते पर चलने के लिए सीएजी तथा न्यायालयों के संकेत का महत्व तभी होगा जब सरकार चेतेगी, जनता सजग होगी। जब सीएजी जैसी संवैधानिक संस्था पर इस तरह खुले तौर पर विधायिका में छिछालेदर की जाए, तो संविधान का भी उल्लंघन माना जाएगा।'

संपादक ने अपने संपादकीय के माध्यम से लोकतंत्र की रक्षा, राजनीति के गिरते मूल्यों, मर्यादाओं पर चिंता व्यक्त करते हुए उसे रोकने तथा सिद्धांत से पुनः जोड़ने एवं नैतिकता को पुनः स्थापित करने के उपाय बताते हुए कहते हैं कि 'अब वह समय आ गया है जब देश में कालेधन और प्रशासनिक भ्रष्टाचार के असर को कम करने के लिए कुछ सशक्त और अप्रिय कदम सरकार को उठाने ही होंगे अन्यथा जनता के सब्र का बाँध टूटने के बाद इस बढ़ते सैलाब को रोकने से कोई बचा नहीं सकता। इसे रोकने के लिए जनता को एकजुट होना ही पड़ेगा, क्योंकि देश को अब सरकारी नेताओं और नौकरशाहों के हाथ में नहीं छोड़ा जा सकता। 'विचार दृष्टि' नामक पत्रिका के जरिए वैचारिक क्रांति की दिशा में प्रयत्नशील हूँ।'

निःसंदेह अपने 36 वर्षो के कार्यकाल में सिद्धेश्वर जी महालेखाकार, बिहार के राँची एवं पटना कार्यालय में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र बने रहे। क्या मजाल कि इनकी अनुपस्थिति में वहाँ राजभाषा कार्यान्वयन समिति अथवा कोई भी सभा-संगोष्ठी का आयोजन सफल हो जाए। दरअसल, उस कार्यालय में रहकर अपने छोटे-बड़े सभी सहकर्मियों तथा अधिकारियों तक इन्होंने ऐसे रिश्ते और अपनापन कायम कर रखे थे कि सभी इन्हें अपना शुभचिंतक समझते थे। दूसरी बात यह कि इनके मन में किसी कर्मी के प्रति न तो दुराग्रह-पूर्वाग्रह का भेदभाव था और न वे जाति, सम्प्रदाय, धर्म, भाषा तथा क्षेत्रीयता के भाव से ग्रसित। इसलिए कार्यालय के सभी कर्मचारी एवं अधिकारी इनके प्रति आदर एवं सम्मान का

भाव रखते थे। यही कारण है कि कार्यालय छोड़ने के 15 साल बाद आज भी जब कभी ए.जी. ऑफिस अथवा उसके परिसर स्थित यूको बैंक में अपने पेंशन राशि की निकासी के लिए सिद्धेश्वर जी पहुँचते हैं, तो कुछ ही देर के बाद अपने सहकर्मियों से वे घिर जाते हैं और सभी इनका अभिवादन करने से बाज नहीं आते हैं। एक बार का वाक्या है कि कार्यालय के प्रथम मंजिल स्थित महालेखाकार कक्ष के सामने वाले बरामदे में पचास-साठ लोग सिद्धेश्वर जी के इर्द-गिर्द खड़े होकर इनका अभिवादन कर ही रहे थे कि महालेखाकार महोदय श्री नन्दलाल जी शोर-गुल सुनकर किसी घटना की आशंका से उन्होंने अपने सचिव को घटना की जानकारी लेने वास्ते बाहर भेजा। सचिव जी ने सिद्धेश्वर जी के चारो ओर 50-60 लोगों को देखकर ए.जी. महोदय को इस बात की सूचना दी। नन्दलाल जी ने स्वयं उस भीड़ में आकर सिद्धेश्वर जी से कहा-'सिद्धेश्वर जी, केवल आप अपने सहकर्मियों से मिलेंगे। क्या आप मेरी एक प्याली चाय नहीं स्वीकार करेंगे?' सिद्धेश्वर जी ने लोगों से बातचीत करने के बाद महालेखाकार नन्दलाल जी के कक्ष में बैठकर चाय की चुस्की के साथ अतीत और वर्तमान की ढेर सारी बातें कीं। यह थी सिद्धेश्वर जी की ए.जी. ऑफिस में पैठ और एक चपरासी से लेकर महालेखाकार तक के लोगों की इनके प्रति सदाशयता और सम्मान का भाव, जो आज बहुत कम लोगों को मिल पाता है।

आज न तो वैसा माहौल रहा और न अपनापन। सभी लोग अपने-आप में केंद्रित और आधुनिकता की अँधी दौड़ में भागते जिंदगी जी रहे हैं। आज जो स्थिति है उसमें भाई-चारे, सहानुभूति और सहृदयता तथा सामाजिक प्रतिबद्धता की कमी स्पष्ट झलकती है। सामाजिक प्रतिबद्धता की कमी ने जहाँ व्यक्ति को आत्मकेंद्रित और आलसी बनाया है, वहीं समाज को निर्जीव और स्थिर भी बना दिया है। इस संदर्भ में पूछने पर सिद्धेश्वर जी बताते हैं कि कोई समाज नए प्रयोग, नए अविष्कार और नए सुधार तब करता है जब वहाँ के नागरिक समाज की हर अच्छाई-बुराई के लिए स्वयं को जिम्मेदार माने और सुधार के लिए प्रयास करे। आज आवश्यकता इस बात की है कि सामाजिक जीवन में तेजी से विलुप्त होती जा रही साहित्य कलाओं और संस्कृतियों का नैतिक परिस्कार कर उनमें वैचारिक चेतना का संचार करें।

महालेखाकार कार्यालय में सेवारत रहते हुए ही तत्कालीन रेल मंत्री नीतीश कुमार ने सिद्धेश्वर जी को रेलवे हिंदी सलाहकार समिति का सदस्य

नियुक्त कर दिया, जबकि केंद्र अथवा राज्य सरकार की सेवा में रहकर उक्त समिति का सदस्य नहीं रह सकता। लेकिन इस नियम को शिथिल करने हेतु गृहमंत्री लालकृष्ण आडवाणी जिनके मातहत राजभाषा विभाग भी था, से नीतीश कुमार मिले और उनसे अनुरोध किया कि सिद्धेश्वर जी को हर हाल में रेलवे हिंदी सलाहकार समिति में नियुक्त करना है, भले ही उन्हें महालेखाकार कार्यालय के वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी के पद से त्यागपत्र ही क्यों न देना पड़े। माननीय आडवाणी जी ने मंत्री के आग्रह पर उस नियम को शिथिल कर विशेष परिस्थिति में सिद्धेश्वर जी को रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य के रूप में अनुमति प्रदान की गई, लेकिन लगभग एक साल के बाद ही सिद्धेश्वर जी ने समाज व देश के व्यापक एवं वृहतर हित में स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली। इसके पीछे भी एक घटना है जिसे जानकर आप पाठकों को सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व के बारे में जानकर हैरानी होगी और प्रसन्नता भी।

जब सिद्धेश्वर जी द्वारा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने का आवेदन महालेखाकार, बिहार श्री नंदलाल जी को मिला, तो उन्हें स्वयं आश्चर्य हुआ, क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि सिद्धेश्वर जी इस कार्यालय को छोड़ें। इसलिए उन्होंने सभी उपमहालेखाकार एवं वरीय उपमहालेखाकार की बैठक अपने कक्ष में बुलाई और उसमें सिद्धेश्वर जी को भी आमंत्रित किया गया। जब बैठक शुरू हुई, तो सभी उपमहालेखाकार एवं वरीय उपमहालेखाकार से महालेखाकार ने कहा-'मैंने तो सिद्धेश्वर जी को कुछ नहीं कहा है। क्या आपलोगों ने कभी इनके मन को ठेस पहुँचाया है?' इसपर वरीय उपमहालेखाकार श्री जी.सी.एल. श्रीवास्तव जिनके मातहत सिद्धेश्वर जी वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी के रूप में अपनी सेवा प्रदान कर रहे थे और जिन्हें श्री श्रीवास्तव जी अपने छोटे भाई सरीखे प्यार देते थे और जिनके द्वारा 'तुम' शब्द का प्रयोग करने पर सिद्धेश्वर जी अपनापन महसूस करते थे, ने कहा-'सिद्धेश्वर को मैं क्या ठेस पहुँचाऊँगा, बल्कि सच तो यह है कि कभी-कभी 'प्रहरी' के संपादक होने के नाते उसकी रचना समय पर न देने के कारण मुझे ही उसका खामियाजा भुगतना पड़ता है।' बात चल ही रही थी कि उसी वक्त एक कर्मचारी ने सिद्धेश्वर जी का एक और आवेदन पत्र महालेखाकार के समक्ष प्रस्तुत किया जिसमें उनसे अनुरोध किया गया था कि यदि तीन माह के भीतर उनकी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति पर विचार नहीं किया जाता है, तो उन्हें उनके जीपी फंड से तीन माह के वेतन के बराबर यानी साठ हजार

रुपए स्वीकृत किये जाएँ जिसे कार्यालय में जमाकर वे स्वयं सेवानिवृत्त हो जाएँगे। इसपर श्री जी.सी.एल श्रीवास्तव ने महालेखाकार को सलाह दी कि सिद्धेश्वर की स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्वीकार कर ली जाए,. क्योंकि जैसा कि उन्होंने अपने आवेदन में लिखा है, मेरा विश्वास है कि वे समाज व देश के व्यापक एवं वृहत्तर हित में अपेक्षित सेवा प्रदान कर पाएँगे और ऐसी क्षमता भी है उनमें। इसके बाद सिद्धेश्वर जी को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए श्री नन्दलाल, महालेखाकार (लेखा परीक्षा), बिहार, पटना ने 1 जून, 2000 से अनुमति प्रदान कर दी।

(४) अंकों से सिद्धेश्वर जी की विदाई

सिद्धेश्वर जी 31 मई 2000 को वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी के पद से प्रधान महालेखाकार (लेखा परीक्षा) बिहार, पटना के कार्यालय से विदा हुए, बल्कि यों कहा जाए कि समय रहते उन्होंने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ली, कारण कि वे समाज व राष्ट्रहित के मद्देनजर व्यापक और बृहतर हित में अपनी सेवा देना चाहते थे। सिद्धेश्वर जी ने अप्रैल, 1964 में लेखा परीक्षक(Auditor) के पद पर महालेखाकार कार्यालय, राँची में योगदान किया था। तकरीबन नौ साल तक लेखा परीक्षक और वरिष्ठ लेखा परीक्षक के पद पर निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्य का निर्वहण करने के उपरांत इनका तबादला कार्यालय, महालेखाकार, बिहार, पटना में तब हुआ जब पहली बार महालेखाकार का कार्यालय उसी वर्ष 1973 में वे भारत के नियंत्रक महालेखांपरीक्षक, नई दिल्ली द्वारा आयोजित एस.ए.एस.(Subordinate Accounts Service) की विभागीय प्रतियोगिता परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

सिद्धेश्वर जी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पूर्व वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी के साथ-साथ पिछले कई साल से विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' के प्रधान संपादक के रूप में भी कार्यरत थे। प्रधान महालेखाकार (ले.प.) के कार्यालय से उनकी विदाई एक अध्याय का अंत इसलिए माना जाएगा, क्योंकि 31 मई, 2000 को महालेखाकार भवन के सभागार में कार्यालय, प्रधान महालेखाकार (ले.प.) तथा कार्यालय, महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी), बिहार, पटना दोनों के लगभग दो हजार अधिकारियों, कर्मचारियों के अतिरिक्त दोनों महालेखाकार एवं वरिष्ठ उपमहालेखाकार तथा उप महालेखाकार विदाई समारोह में मौजूद थे। यह विदाई समारोह ऐतिहासिक था, कारण कि इसके पूर्व लेखा एवं लेखा परीक्षा के दोनों कार्यालयों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा पहली बार किसी साहित्यकार, संपादक, कवि एवं वरिष्ठ लेखापरीक्षा अधिकारी की विदाई सम्मिलित रूप से दी गई थी। हालांकि इन दोनों कार्यालयों में कई ऐसे कर्त्तव्यनिष्ठ अधिकारी एवं कर्मचारी भी सेवानिवृत्त हुए, जिनकी छाप आज भी लेखा एवं लेखापरीक्षा जगत में है, किंतु सिद्धेश्वर जी इस सिलसिले के एक महत्वपूर्ण कड़ी थे जिन्हें इतनी इज्जत और सहानुभूति प्राप्त थी। आखिर तभी तो विदाई समारोह के चहल-पहल के बाद जब इनकी विदाई की घड़ी आई तो सभी की आँखें नम थीं।

आमतौर पर कार्यालयों से सेवानिवृत्त होने वाले अधिकारी और

कर्मचारी भुला दिए जाते हैं, पर सिद्धेश्वर जी आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं और सभी का सम्मान प्राप्त कर रहे हैं। कार्यालय के मुख्य दरवाजे पर बैठे कर्मचारी से लेकर महालेखाकार तक के शीर्ष अधिकारी की आज भी यही चाह रहती है कि जब कभी उस कार्यालय में सिद्धेश्वर जी का आगमन हो, उनकी एक प्याली चाय वे अवश्य स्वीकार करें। ऐसा सौभाग्य कितने लोगों को प्राप्त हो पाता है? बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष पद पर विराजमान रहने के पूर्व और बाद में भी दोनों कार्यालयों के सभी लोग इनकी कदर किया करते हैं। कार्यालय पहुँचने पर अधिकांश इनके सहकर्मी की यही इच्छा होती है कि इनसे दो-चार मिनट बात हो जाए या कम-से-कम दुआ-सलाम तो अवश्य ही हो जाए। सिद्धेश्वर जी की भी यही कोशिश रहती है कि सभी सहकर्मियों से कुछ ही क्षण के लिए सही रूबरू जरूर हो लें। इससे यह स्पष्ट है कि सिद्धेश्वर जी उस कार्यालय के लंबे समय तक प्रासंगिक बने रहेंगे।

सिद्धेश्वर जी महालेखाकार कार्यालय के एक ऐसे अधिकारी रहे, जो हिंदी की संस्कृति से उपजे अंकों से खेल रहे थे। इन्होंने अंकों को अक्षरों से जोड़ा। बतौर लेखा परीक्षा अधिकारी इनकी सबसे बड़ी पहचान हिंदी के प्रति समर्पित एक अधिकारी तथा लेखक की थी। इनके महत्व को समझने के लिए यह याद करना पड़ेगा कि सिद्धेश्वर जी के बाद हिंदी के प्रति समर्पित तथा लेखा परीक्षा में भी समान रूप से दक्ष वैसे अधिकारी नहीं के बराबर हुए जिन्हें कार्यालय के सभी लोगों का सम्मान प्राप्त हो। जो इक्का-दुक्का अधिकारी आए भी वे एक-आध काम कर कहीं खो गए। इसी वजह से न सिर्फ लेखा में, लेखापरीक्षा में भी जिस ठहराव की आशंका जताई जा रही है, वह तिरोहित हुई, बल्कि सिद्धेश्वर जी की विराट ईमानदार छवि लोगों के सामने दिखी। इनकी जब कभी निष्ठा और ईमानदारी अबतक सूनी और पढ़ी जाती थी, लेकिन अब तो देखी भी जा रही है। इसलिए भी इनकी लोकप्रियता बढ़ी है। अब तो स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि निष्ठा और ईमानदारी के अतिरिक्त हिंदी के प्रति समर्पण, पत्रकारिता के प्रति रूझान की चर्चा चलती है, तो पहली छवि सिद्धेश्वर जी की ही उभरती है।

सिद्धेश्वर जी का दूसरा बड़ा काम 'प्रहरी' अथवा 'लेखापरीक्षा प्रकाश' के लिए लेखन के क्षेत्र में रहा। लेखा एवं लेखापरीक्षा कार्यालयों में व्याख्यात्मक और समीक्षात्मक लेखन की कमी भी एक अरसे से महसूस की जा रही थी। सिद्धेश्वर जी ने इस कमी को बहुत हद तक पूरा करने में

सहयोग किया। इन्होंने लेखापरीक्षा अधिकारी के अलावा एक रचनाकार और संपादक के दायित्व को भी स्वीकार किया और पत्रिका के सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक पहलुओं पर अपनी कलम चलाई। अमूमन राजनेताओं व राजनीति की सच्चाई को प्रस्तुत करने से लोग बचते हैं। इसके लिए अलग तरह के अध्ययन और चिंतन की जरूरत होती है। अकादमिक लोग ही इस तरह के काम को अंजाम दे सकते हैं। सिद्धेश्वर जी लेखापरीक्षा कार्यालय या यों कहा जाए कि अंकों से विदा जरूर हो गए हैं, लेकिन उनके भीतर अभी भी अंकों की दुनिया के लिए बहुत कुछ रचनात्मक एवं सृजनात्मक ऊर्जा बाकी है। आखिर तभी तो 'प्रहरी' तथा नई दिल्ली के प्रधान कार्यालय से प्रकाशित 'लेखा परीक्षा प्रकाश' को आज भी अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

सिद्धेश्वर जी ने सदैव कार्यालय की राजनीति से अपने को दूर रखा बावजूद इसके कि वे कार्यालय में लेखा परीक्षक के पदभार ग्रहण करने के बाद वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर प्रोन्नति पाने तक अराजपत्रित अधिकारी तथा राजपत्रित अधिकारी के संघटन में सक्रिय ही नहीं रहे, बल्कि उसके महासचिव तथा अध्यक्ष पद पर भी आसीन रहे। कार्यालयाध्यक्ष से नियमित रूप से मिलने से लेकर कार्यालय के काम में चल रही प्रगति के बारे में उन्हें अवगत कराने तक उनसे संवाद करते रहे। इन्होंने कभी भी अपने सहकर्मी तथा उच्चाधिकारियों से खुद को अलग साबित करने की कोशिश नहीं की। जिन सहकर्मियों तथा उच्चाधिकारियों ने इन्हें लक्ष्य प्राप्त करने में मदद की, उन सबों के साथ इन्होंने अच्छे संबंध बनाए रखे। उनमें से महालेखाकार नन्दलाल, अरुण कुमार सिंह, गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, मनीष कुमार, जी.सी.एल. श्रीवास्तव, के.एन.पी. सिन्हा, बी.पी. कर्ण, राधेश्याम प्रसाद, सुरेश प्रसाद सिन्हा जिनसे आज तक सिद्धेश्वर जी का संबंध बना हुआ है का नाम उल्लेखनीय है।

सिद्धेश्वर जी ने अपने जीने के अंदाज को दुनिया के सामने बढ़ा-चढ़ा कर नहीं दिखाया और न ही किसी की बुराई की, बल्कि सच तो यह है कि हर व्यक्ति की मदद के लिए सदैव तैयार दिखे तथा अपने साथियों के लिए उपयोगी बने रहे। इससे लोगों के बीच अच्छा संदेश गया जिसके लिए आज भी इनकी सराहना की जाती है।

♦♦♦

द्वितीय अध्याय
अक्षरों की दुनिया

(१) सिद्धेश्वर जी का सच

सिद्धेश्वर के व्यक्तित्व में एक विशेषता यह देखने को मिलती है कि ये त्यागमय और कम से कम वस्तुओं से चल सकने वाला जीवन अपनाते हैं और इससे उन्हें कष्ट तो दूर उलटे वे सुविधा का अनुभव करते हैं। आपको यह जानकार आश्चर्य होगा कि भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग (Indian Audit & Accounts Department) में नौकरी के दौरान भी इन्होंने अपने घर पर किसी नौकर या दाई को नहीं रखा। और तो और बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के राज्यमंत्री के दर्जा प्राप्त अध्यक्ष का दायित्व संभालने के बाद भी इन्होंने न तो बोर्ड के किसी चपरासी की सेवा अपने घर के लिए ली और न ही इनकी धर्मपत्नी श्रीमति बी. प्रसाद ने किसी दाई आदि की सेवा स्वीकार की। इनकी श्रीमति जी भी अपना और अपने घर का कार्य खुद करना पसंद करती हैं। शायद यही कारण है कि अपनी उम्र के सात दशक पार कर जाने के बाद भी पति-पत्नी किसी भी तरह की बीमारी से मुक्त हैं। न तो इन्हें उच्च रक्तचाप है और न ही ये मधुमेह के शिकार हैं। यह अपने आप में एक बड़ी बात है।

दरअसल, इनके विचारों में 'सादा जीवन उच्च विचार' की प्रेरणा रहती है। कारण कि अंत:करण के विकास व मन: क्षेत्र के परिष्कार का इस सादगी से घनिष्ठ संबंध है। अपमान, असफलता, राग, द्वेष, भय, ईर्ष्या, निराशा, चिंता आदि मानसिक आघातों से यह ग्रस्त नहीं रहते। जो लोग इससे त्रस्त हैं उनके मानसिक कष्टों का प्रभाव उनके सूक्ष्म चेतना पर पड़ता है जिसके कारण उनके उच्च कोटि के सद्‌गुण नष्ट होते हैं। मानसिक शांति के कारण ही सिद्धेश्वर जी में साहस, शौर्य, धैर्य सहनशीलता, उत्साह, पुरुषार्थ, उदारता, आशावादिता, क्षमा, संतोष, सद्‌भाव, आत्मीयता, दया, करुणा, आत्पविश्वास आदि सद्प्रवृत्तियाँ सदैव विद्यमान रहती हैं।

सिद्धेश्वर जी उन साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने एक तरह से वक्तृत्व कला की 'सिद्धहस्तता' हासिल कर ली है। इसलिए तमाम लोग शब्दों की 'किस्म की बाजीगरी' जो नहीं कर पाते, उस वे कभी-कभी तो बोलचाल्ल की बड़ी लौकिक सी भाषा और बेहद मामूली शब्दों में कह डालते हैं। इनके व्यक्तित्व में एक और विशेषता यह दिखती है कि साहित्य और

पाठक के वर्ग के बीच अपनी स्वीकृति के लिए वे किन्हीं दिग्गज आलोचकों और बड़े नामी-गिरामी साहित्यकारों के प्रमाण-पत्र के कभी मोहताज नहीं रहे। पाठकों व आमजनों का जितना प्यार उन्हें मिला है, वह बिरले को नसीब होता है।

बातचीत में सिद्धेश्वर जी 'दीर्घ-सूत्री हैं और उनसे बातचीत करते वक्त न समय का अंदाज आपको रहता है, न उन्हें। सिद्धेश्वर जी उन लेखकों व पत्रकारों में से हैं, जिन्हें समय ने सिद्ध किया है और बिहार संस्कृत बोर्ड, पटना के अध्यक्ष का जब दायित्व इन्हें मिला, तो इन्होंने अपनी निष्ठा और ईमानदारी का तो परिचय दिया ही अपनी प्रशासनिक क्षमता का भी इन्होंने साबित किया है। इन्होंने संस्कृत शिक्षकों के दर्द को जाना और उसे अपनी तरह से अभिव्यक्त किया है। इनकी आँख जब यथार्थ व सच और लेखन में हमारा और हमारे समाज का चेहरा ही नहीं, आम आदमी के दु:ख दर्दों का लंबा और निश्छल इतिहास भी दिखता है। सिद्धेश्वर जी सत्ता, राजनीति और समाज इन सब पर काफी लिख रहे हैं और इसके अतिरिक्त आधुनिक पत्रकारिता के मूल्य पर भी चिंतन कर रहे हैं। कई बार तो ऐसा हुआ कि बिहार सरकार के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहते हुए भी कई कार्यक्रमों के अवसर पर एक व्यक्ति एक सजग नागरिक की हैसियत से इन्होंने हस्तक्षेप कर झील के ठहरे हुए पानी में तरंगें पैदा कीं। बोर्ड में अपने तीन साल के कार्यकाल के अंत होते-होते बिहार के मुख्यमंत्री, मानव संसाधन विकास विभाग के मंत्री तथा विभाग के प्रधानसचिव को जो इन्होंने पत्र लिखे, वे पठनीय तो हैं ही, दातों तले ऊँगली दबाने को विवश करते हैं इन्होंने अपन लिए राष्ट्रभाषा हिंदी की सेवा और पत्रकारिता के क्षेत्रों का चयन किया, फिर संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व संभाला और उसे बड़ा बनाया। अपने पत्र 'विचार दृष्टि' में सत्ता पर विराजमान और राजनीति में रहने वाले लोगों को क्षुब्ध करने वाले लेख भी लिखे और आज भी उनकी प्रवृत्तियों पर चोट करने से वे बाज नहीं आ रहे हैं।

सिद्धेश्वर जी पत्रकारिता के माध्यम से हो या किसी भी कार्यक्रमों के माध्यम से सच और सच कहने में इन्होंने कभी कोताही नहीं की। सच कहा जाए, तो पत्रकारिता का उद्यम भी वस्तुत: आजादी और लोकतंत्र को हासिल करने का ही एक माध्यम है। इसके लिए वे और भी माध्यम का चयन कर सकते थे। चाहते तो राजनीति में सीधे उतर सकते थे और उतरे

भी तो वे मूल्यों की राजनीति कर रहे हैं और अपना अधिकतर संमय पत्रकारिता, संगठन व समाज के लिए दे रहे हैं और इसी से उन्होंने अपनी एक अलग पहचान बनाई है। उन्होंने कभी भी अपने को अपने से इतर नहीं दिखाया है और कई बार इसकी कीमत भी चुकाई है। कई बार इन्होंने वह कुछ कहा, जो वह कहने से बच सकते थे, लेकिन उन्होंने 'इमेज' की कीमत पर अपनी बात कही। सामाजिक सरोकारों से उन्होंने आज भी अपने को जोड़े रखा है।

राष्ट्रीय विचार मंच, जो राष्ट्रीय चेतना की एक वैचारिक संस्था है के राष्ट्रीय महासचिव पद के दायित्व का निर्वह्ण करते हुए उसके मुख पत्र 'विचार दृष्टि' के संस्थापक संपादक के रूप में इन्होंने हिंदी पत्रकारिता का एक नया रास्ता निर्मित किया है जिसमें गंभीर विचार और विमर्श के लिए हिंदी पाठकों को एक अच्छी खासी मानसिक खुराक मिलती है। इसकी भाषा को इन्होंने एक प्रांजलता और भावप्रवीनता प्रदान कर इसे पठनीय बनाया है। इस पत्रिका के माध्यम से इसके संपादक सिद्धेश्वर जी ने दलित, पीडित, शोषित और समाज के हाशिए पर वर्षो से खड़े लोगों की दासता, उससे मुक्ति पाने की छटपटाहट के साथ-साथ समाज के मुख्यधारा से जुड़ने की ललक और आगे न बढ़ पाने की कसक को भावनात्मक रूप से उभारा है। इसके लेख समाज के तथाकथित सुधारवादियों के चेहरे पर लगे नकाब को उघारने की कोशिश की है।

कहा जाता है कि निरंतरता जीवन का धर्म है। जीवन पथ पर निरंतर चलते रहने में ही जीवन का सुख है। सिद्धेश्वर जी कुछ इसी भाव से प्रेरित होकर अपने जीवन पथ पर निरंतर अग्रसर हैं। रहन-सहन में, कर्म करने में और प्रत्येक दिनचर्या में हमने इनमें सहजता पाई है। दरअसल, जीवन जीने की कला इन्होंने सीख ली है और जिसने भी इसको सही ढंग से जिया वही सुखी रहा है। 'जीओ और जीने दो', इसी जीवन दर्शन को इन्होंने अपनाया है। यही कारण है कि वे यह मानते हैं कि जिस समाज में, जिस देश में हम पैदा हुए हैं, उसके प्रति भी हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं। उन कर्त्तव्यों का पालन करते हुए तथा प्रत्येक के साथ सद्व्यवहार करते हुए जीना ही श्रेष्ठ जीना है।

सिद्धेश्वर जी सदैव सक्रिय रहना पसंद करते हैं, क्योंकि इनका मानना है कि सक्रिय नहीं रहने से बुढ़ापा शीघ्र ही आ जाता है। आखिर तभी तो पचहत्तर के पड़ाव पर रहते हुए भी इनकी सक्रियता बरकरार है। दूसरों पर आश्रित रहने की प्रवृत्ति को वह घातक मानते हैं, क्योंकि पराश्रित व्यक्ति

के व्यवहार में ऐसां परिवर्तन आज जाता है कि उसमें चिड़चिड़ापन और क्रोध जैसी प्रवृत्ति पैदा हो जाती है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इसलिए दिनचर्या के बाद जो इन्हें खाली समय मिलता है उसमें वह स्वाध्याय करते हैं अथवा अपनी पत्नी के गृह-कार्यो में सहयोग करते हैं जैसे सब्जी काट देना, उसे तल देना या सलाद बना देना आदि। इससे भी यदि समय बचता है, तो पत्नी के साथ जीवन की कहानी कह-सुनकर मन को बहला लेते हैं। किसी के कुछ कहने तथा अपेक्षा करने की आवश्यकता वह नहीं महसूस करते हैं। स्वस्थ चिंतन, मनन और उसके अनुरूप जीवन को गतिशील एवं शरीर को क्रियाशील रखना ही सर्वांगीण स्वस्थ जीवन के लिए वे अनिवार्य समझते हैं। उनकी समझ है कि केवल तन से ही स्वस्थ रहना पर्याप्त नहीं है, बल्कि मन और विचारों का भी स्वस्थ होना जरूरी है। इसलिए सिद्धेश्वर जी सदैव स्वस्थ और सार्थक विचारों की पहल करते हैं और उसी रास्ते पर चलते हैं। वस्तुतः सफलता भी उन्हीं को मिलती हैं, जो निष्ठा, ईमानदारी और प्रतिबद्धता के रास्ते पर चलते हैं। मानव जीवन में अशांति का प्रमुख कारण लोभ की प्रवृत्ति है, जो असंतोष को जन्म देती है। मनुष्य दूसरे की उपलब्धियों-धन, संपत्ति को देखकर स्वयं को तुलनात्मक दृष्टि से हीन समझकर दुखी हो जाता है। मगर सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व की विशेषता है कि इन्हें अपनी उपलब्धियों से सुख और शांति मिलती है और दूसरे के धन और संपत्ति की उपलब्धियों को देखकर स्वयं को तुलनात्मक दृष्टि से हीन समझ कर दुःखी नहीं होते हैं, बल्कि सच तो यह है कि दूसरे की उपलब्धियों को देखकर इन्हें खुशी होती है। इनका कहना है कि अशांति के दुष्चक्र से बचने के लिए ही तो कहा गया है-

गोधन, गज धन, बाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान।।

कुछ लोगों का कहना है कि यदि जीवन में संतोष आ गया, तो मनुष्य अकर्मण्य हो जाएगा, उसकी प्रगति रूक जाएगी। संतोष के प्रति इस धारणा को भ्रममूलक मानते हुए सिद्धेश्वर जी का कहना है कि अकर्मण्यता मन और चित्त को अशांत करती है और जहाँ अशांति हो वहाँ संतोष हो ही नहीं सकता। इसलिए संतोष न तो जीवन में लक्ष्य निर्धारित करने से रोकता है और न निर्धारित किए गए लक्ष्य को उत्साहपूर्वक, पूर्ण निष्ठा और लगन से प्राप्त करने से रोकता है। यही वह वजह है जिससे प्रेरित होकर, वह जीवन में ईमानदारी के साथ आगे बढ़ने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते है

सिद्धेश्वर जी अपने जीवन के प्रारंभ से ही भारतीयता और राष्ट्रीयता को प्रमुख मानते हैं। उनके चाल-चलन, उनकी सोंच, सबमें भारतीयता झलकती है और इसी को वह अपनी सबसे बड़ी ताकत भी मानते हैं। उनसे जब पूछा गया कि उनकी जिंदगी का सबसे बड़ा सबक क्या है तो उन्होंने कहा-उदारता और सदाशयता। उदारता और सदाशयता की वजह से ही उन्हें बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष जैसी इतनी बड़ी जिम्मेदारी मिली। बार-बार कहने के बावजूद वह याचक की भूमिका में नहीं आए। उनका कहना था कि किसी से माँग कर मैं कुछ लेना नहीं चाहता और न हाथ फैलाने की मेरी कभी प्रवृत्ति रही है। हाँ, मेरी क्षमता समझ कर यदि कोई कुछ मुझे दे देता है, तो समाज व राष्ट्रहित में मैं उसे स्वीकार करता हूँ। संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व भी मैंने इसी के तहत संभाला। इनकी इसी सोच को लोग आज दाद देते हैं और कहते हैं कि सचमुच भारतीय राजनीति में इन्होंने एक नई और लंबी लकीर खींची है।

आज जिंदगी के 75वें पड़ाव पर, जब सिद्धेश्वर जी काफी लंबा सफर तय कर चुके हैं, वह बेहद खुश हैं और इनका दाम्पत्य जीवन भी काफी खुशगवार है, क्योंकि दोनों की जीवन शैली अपने ढंग की है और दोनों जिंदादिल दिखाई देते हैं, दोनों एक दूसरे के साथ खुश हैं। दोनों साथ रहकर सबकुछ झेल लेते हैं यानि बिना कोई नौकर, दाई के भी आज तक घर बाहर का काम दोनों खुद कर लेते हैं। इन दोनों की जिंदगी में सारी खुशियाँ सिमटी हुई हैं। इन दोनों के आपसी विश्वास और समझ इनके रिश्ते को मजबूत बनाए हुए हैं।

सिद्धेश्वर जी के जीवन में एक और सच दृष्टिगोचर होता है कि इन्होंने आदर्शवादिता को पराकाष्ठा के स्तर तक पालन किया है। आदर्शवादिता की बातें करना और व्यवहार में आदर्शों के विपरीत आचरण करना कितना निंदनीय है। आदर्शो की यह दोहरी दृष्टि न तो हमारी भारतीय संस्कृति का अंग रही है और न इस संस्कृति के प्रणेताओं में कहीं इस तरह का छद्म देखने में आया है। दरअसल, सिद्धेश्वर जी जीवन और मूल्य की महत्ता को बखूबी समझते हैं। यही कारण है कि इनकी कथनी और करनी में सामंजस्य दिखता है। आदर्शो के पालन में वे अपने पैर कभी पीछे नहीं हटाते। जीवन का यही मूल्य है।

बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड में इसके स्थापना काल से ही इसके पदाधिकारी एवं कर्मचारी वर्ग का एक समूह शिक्षा माफियाओं के एक बड़े

समूह से मिलकर भ्रष्ट एवं निजी स्वार्थ के आकंठ में डुबा हुआ है। जो गुलामी की मानसिकता शिक्षकों एवं अभिभावकों के जन सामान्य वर्ग पर जबरन थोपने के लिए भ्रष्टाचार के पोषक रही सामंती प्रवृत्ति के ज़रिए समाज में भय और आतंक पैदा कर दी थी। यही नहीं यहाँ स्थापना काल से लेकर अबतक आरक्षण लागू नहीं है। संवैधानिक कार्य की इतनी उपेक्षा आश्चर्यजनक है। इस तरह का अन्याय आरंभ से ही चल रहा है। यदि समाज के हाशिए पर पड़े कमजोर वर्ग को आरक्षण नहीं मिलता है, तो उनके बीच से अमीर ही आगे बढ़ते रहेंगे। इसी दृष्टिकोण से सिद्धेश्वर जी ने अध्यक्ष पद पर रहकर बोर्ड के पैनल अधिवक्ताओं से विचार-विमर्श कर आरक्षण लागू करने की प्रक्रिया पर निर्णय लिया।

सिद्धेश्वर जी एक ऐसे प्रक्रिया, आत्मविश्वासी और उत्साहपूर्ण अध्यक्ष रहे जिन्होंने सिर्फ आदर्श पारित नहीं किया, बल्कि आदर्श स्थापित किया। वह पहले स्वयं कृत्य करते हैं जिससे दूसरे उसका अनुसरण कर सके। आखिर तभी तो संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष का पद इन्हें उनके गुणों और व्यवहार के कारण मिला, पद के कारण नहीं जो सम्मान एक व्यक्ति को अपने गुणों से मिलता है वह उसके पद के कारण मिले हुए सम्मान से काफी भिन्न होता है। इसके अध्यक्ष पद पर आने से पद की गरिमा बढ़ी। आखिर तभी तो बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड की गरिमा भी बढ़ी है, क्योंकि इनके पूर्व बोर्ड को लोग हेय दृष्टि से देखते थे और नाक-भौं सिकुड़ाते थे। यही कारण है कि सिद्धेश्वर जी को सभी का सच्चा सम्मान मिला है।

सिद्धेश्वर जी ने अपने व्यक्तित्व को वहुआयामी बनाया है। शिक्षकों से बातचीत का अच्छा तरीका अपनाया, सीधा संपर्क किया और उनके दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया।

सरकारी या गैर सरकारी महकमों में ईमानदार व्यक्तियों को लुप्त प्रजाती की श्रेणी में रखा जाता है। संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष, सिद्धेश्वर जी इसी श्रेणी में आते हैं। अपनी ईमानदारी के चलते अपने विभाग में वे 'ऑड मैन' यानी अनूठे आदमी समझे जाते रहे हैं। अपने बोर्ड कार्यालय में भी एक-डेढ़ साल तक एक वरिष्ठ पदाधिकारी का खामियाजा अपनी ईमानदारी के चलते वे भुगतते रहे तथा उस पदाधिकारी के कुछ चाटूकार गिरोह का फंदा इनपर चलता रहा, क्योंकि नियम विरूद्ध काम करना इनके लिए असंभव। इन्होंने बड़ी कुशलता से बोर्ड की यह तस्वीर बिहार की जनता के सामने पेश की है। आपको याद होगा कि शुरुआती दिनों में

सिद्धेश्वर जी के शुभेच्छु और स्वयं भी अपनी छवि ऐसे अध्यक्ष के रूप में पेश करते थे जो बेमन से अध्यक्ष का पद दायित्व संभालने के लिए तैयार हुए और बात भी सही थी कि ,काफी मान-मनौव्वल के बाद मुख्यमंत्री को उन्होंने इस पद के लिए अपनी स्वीकृति दी थी, लेकिन जब उन्होंने दायित्व संभाला, तो बड़ी जवाबदेही के साथ इसे निभाया। सत्ता के तीसरे वर्ष में भी सिद्धेश्वर जी उतने ही सहज और सरल दिखे और सच पूछिए तो वे असहज अध्यक्ष भी कहीं से नहीं दिखे। बोर्ड को घुन की तरह खाए जा रहे भ्रष्टाचार पर चोट करने की दवा भी इन्होंने निकाल रखी, क्योंकि भ्रष्टाचार पर अंकुश के बिना इसका फल आम आदमी तक शायद ही पहुँच सके।

अध्यक्ष की सबसे बड़ी चुनौती थी। राज्य के वंचित तबके तक उसका हक पहुँचाना। बोर्ड को प्रगति पटरी पर लायी जा रही है यह सुनने में तो अच्छा लगता है, मगर वंचित तबके तक उन्नति के फल अगर नहीं पहुँचेंगे, तो ऐसी प्रगति किस काम की। इसीलिए बोर्ड स्तर पर तथा इसके द्वारा संचालित संस्कृत विद्यालयों की प्रबंध समितियों के गठन तथा उसके द्वारा नियुक्त शिक्षकों एवं शिक्षकेत्तर कर्मचारियों के मामले में आरक्षण लागू करने का इनके द्वारा प्रयास किया गया।

सतत् अभ्यास में मनोयोगपूर्वक लगे सिद्धेश्वर जी अपने अंदर असामान्य क्षमताएँ विकसित कर लेते हैं। निश्चित समय एवं निर्धारित क्रम में इनके द्वारा किए गए प्रयास से ही लोग इनकी प्रतिभा का लोहा मानने लगे हैं। वैसे भी अभ्यास के अभाव में प्रतिभाएँ कुंठित हो जाती हैं, उनसे व्यक्ति अथवा समाज को कोई लाभ नहीं मिल पाता। दरअसल अभ्यास करने के वे आदि हो गए हैं जिसके परिणामस्वरूप इनकी शारीरिक क्षमताओं का विकास होता है और निर्धारित लक्ष्य की ओर वे सदैव बढ़ते जाते हैं।

संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष सिद्धेश्वर जी उन अध्यक्षों में से एक ऐसे अध्यक्ष के रूप में उभरे जिन्होंने बेहद कम समय में वह मुकाम पा लिया, जो अच्छे अच्छों को नहीं मिल पाता। इसके लिए उन्होंने जी तोड़ मेहनत की। दरअसल एक ओर जहाँ पहुँच के प्रभावशाली कुछ शिक्षक पैसे जमा करने में अच्छे कर्मो में लगे रहे, वहीं दूसरी ओर जातीयता को उभारकर समाज को बाँट तो रहे, मगर उन्होंने यह नहीं सोचा था कि सभी दिन एक-सा नहीं रहेगा। अध्यक्ष ने समता और सामाजिक न्याय को दृष्टिगत रखते हुए कदम उठाए और लोगों को दूषित मार्ग अपनाने से बचाया। समता, एकता और प्रेम का इनका नारा सफल सिद्ध हुआ।

यह बात सही है कि सिद्धेश्वर जी एक भले इंसान हैं, पर ज्यादा भले बनने का खामियाजा भी उन्हें भुगतना पड़ा है। नेक दिल खूबसूरत शख्सियत की पहचान है, दरियादिली भी किस काम की, जो आपका सुकून चुरा लें। संकोच की चादर ओढ़े रहने या किसी की फिराक में लगे रहते हैं। ऐसी स्थितियों को इन्हें कई बार सामना करना पड़ा है। ऐसी भलाई जिससे उन्हें खुद का नुकसान होने लगे उससे क्या फायदा। कई बार ऐसी भलाई इन्हें इतनी मंहगी पड़ी है कि मत पूछिए। यही सब सोच-समझकर जहाँ लोग इनकी भलमनसाहत का फायदा उठाने लगते हैं या बेवकूफ समझकर अपना उल्लू सीधा करने में लग जाते हैं, तो ऐसी जगह पर वे चुप रहना ही अकलमंदी नहीं समझते, बल्कि ऐसी जगह, वे उनकी दिल की नहीं दिमाग की भी सुनते हैं। यही नहीं ऐसे वक्त स्पष्टवादी बनने में ही वे अपनी समझदारी महसूस करते हैं।

दरअसल, जीवन जीने के रास्ते दो हैं-श्रेय और प्रेय। जो भौतिक भोगों में फंसा है वह प्रेय मार्ग है, और अच्छे कर्म करता है वह श्रेय मार्ग है। सिद्धेश्वर जी ने इस दूसरे श्रेय मार्ग को चूना है। ज्ञानार्जन में सदैव लगे रहने वाले सिद्धेश्वर जी कर्म को ही पूजा मानते हैं, धर्म मानते हैं और दूसरों के कल्याण के लिए अच्छे गुणों को अपनाते हैं। वैसे भी कहा गया है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है उसके अनुसार ही फल भोगता है। सदैव अच्छे कर्म करने के चलते ही वे अच्छा फल भोगते हैं और अपने कार्यो में सफल होते हैं। कम समय में अच्छे साधनों के द्वारा वैचारिक क्रांति के लिए वे अग्रसर हैं, जिसकी अभी समाज में आवश्यकता है, क्योंकि चिंतन की आज काफी कमी दिखाई देती है। पश्चिमी उपभोक्तावादी संस्कृति का अँधानुकरण और टी.वी. चैनलों से प्रसारित फैशनपरस्त धारावाहिकों में कुविचार हैं जिसकी भारतीय सभ्यता की प्रशंसा करने पर अहंकार का नाग फुफकारने लगता है और उस व्यक्ति में भावात्मक रोग पैदा हो जाता है जिससे उसमें क्रोध आने की संभावना बढ़ जाती है।

सिद्धेश्वर जी के राग-विराग गहरे और स्थायी हैं। अवसरवादी ढंग के विचारों को अपनाना-छोड़ना इनका काम नहीं है। इनके लिए निजता और सामाजिकता में अलगाव और विरोध नहीं है, बल्कि दोनों एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं।

चिंतन में ही नहीं, सृजन में भी इतिहास का जितना गहरा बोध होता है, रचनाकार उतना ही विशिष्ट और महत्वपूर्ण होता है। साथ ही, अपने

समय को ज्यादा गहराई से समझने में सक्षम भी होता है। सिद्धेश्वर जी एक ऐसे ही चिंतनशील रचनाकार हैं जो अपने समय को अधिक गहराई से समझने में सक्षम हैं। न तो सूर्योदय से डरने वालों में हैं ओर ना ही सूर्यास्त से कतराने वालों में। ये तो भारतीय परंपरा और संस्कृति से ओत-प्रोत हैं। आप सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में सांप्रदायिकता को निरस्त करने का प्रयास तो करते ही हैं रूढ़िवाद-जातिवाद का उपहास भी करते हैं। नम्रता और दृढ़ता, फकामस्ती और आत्मविश्वास से भरे सिद्धेश्वर जी का व्यक्तित्व अपनी पूरी गरिमा के साथ हमारे साथ मौजूद है। मैं तो इनके जीवन से सतत् प्रेरणा प्राप्त करता हूँ ठीक उसी तरह जिस तरह शमशेर बहादुर सिंह अपने प्रिय कवि 'निराला' को याद करते हुए प्रेरणा लेते थे।

''भूल कर जब राह जब-जब सह... भटका मैं।

तुम्हीं झलके हे महाकवि, सघनतम की आँख बन मेरे लिए।''

सिद्धेश्वर जी के भीतर प्यार का ऐसा पारावार है कि वे उसे बाँटते चलते हैं। परिवार के सदस्यों के अलावा उनके समर्थकों, शुभेच्छुओं, मित्रों, संबंधियों, सहकर्मियों, रचनाकारों, पत्रकारों और अनुरागियों की एक बड़ी जमात है। उनका सबसे प्रिय शगल यही है कि पटना के पुरन्दरपुर स्थित 'बसेरा' या ए.जी. कॉलोनी का संस्कृति निवास अथवा दिल्ली के शकरपुर स्थित 'दृष्टि' आवास में वे अपने दिवान-ए-खास पर विराजमान रहकर हिंदी साहित्य का दरबार लगाते हैं। एक बार जब किसी विषय पर चर्चा छिड़ जाए, तो लगातार घंटों चलती रहती है। दरअसल, सिद्धेश्वर जी उन प्रबुद्धजनों में से हैं जो व्यक्ति से अधिक समाज से प्रतिबद्ध हैं और इनकी सामाजिक प्रतिबद्धता के हर सांस कायल हैं। वे सामाजिक यथार्थ व संघर्ष की पहचान को अधिक महत्व देते हैं। यही कारण है कि देश व सामाजिक परिवेश में हो रहे परिवर्तनों की अनुगूँज उनके निबंधों व कविताओं में अधिक सुनाई देती है। उन्हें ग्रामीण परिवेश की बारीक और गहरी समझ है। सच तो यह है कि जिस आत्मीयता से और गहराई में जाकर ग्रामीण परिवेश का वे चित्रण करते हैं वह अन्यत्र दुर्लभ दिखता है। एक ओर जहाँ वे सामाजिक संदर्भो की पहचान को रेखांकित करते हैं, तो वहीं दूसरी ओर कुत्सित सामाजिक चेतना को भी चित्रित करने में वे नहीं हिचकते।

सिद्धेश्वर जी में युवा रचनाकारों को उकसाने, जिलाने और बढ़ाने की अद्भूत सामर्थ्य है। इसी प्रकार व्यवस्था पर चोट करने की भी इनमें कम हिम्मत नहीं है। उनके द्वारा संपादित 'विचार दृष्टि' तथा 'वाग्वन्दना'

पत्रिकाओं में कई बार आक्रामक और तेवरवाले लेख इसके प्रमाण हैं। कहना नहीं होगा कि इनका सपना शोषणमुक्त समतामूलक समाज का सपना है। न्यायप्रद व्यवस्था वहीं संभव है जहाँ समता सर्व़जनीय मूल्य हो।

साहित्य के प्रति सिद्धेश्वर जी की निष्ठा, चिंतन और दृष्टि काबिलेतारीफ है। इनका मानना है कि 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्र, शास्त्र चिंता प्रवर्तते' अर्थात् शास्त्र के द्वारा सुरक्षित राष्ट्र में ही कला, संस्कृति, साहित्य आदि शास्त्रों की चिंता की जा सकती है। वैसे भी साहित्यकारों की दोहरी भूमिका होती है। एक तो अपना लेखन, दूसरे अपने अस्तित्व को, अपनी उपस्थिति को, अपने होने को सिद्ध करना। जैसे स्वतंत्रता पूर्व साहित्यकारों ने अँग्रेजों के विरूद्ध किया था या उससे भी पहले ऋषियों ने राजवंशी क्रूरताओं के समक्ष प्रजा के अधिकारों के दमन का विरोध किया था। इसके लिए साहित्यकारों को लिखकर, बोलकर तथा जनआंदोलनों में सक्रिय रूप से जन के पक्ष में जाने आना चाहिए, क्योंकि हमारे लोकतंत्र का संविधान इसकी अपेक्षा जगाता है, माँग करता है। इसके अतिरिक्त सत्ता द्वारा अपनाई जननीतियों की खामियाँ उन्हें व्यवहार में, लागू करने में आड़े आने वाले स्वार्थी तत्वों का बढ़-चढ़कर विरोध करना और जन का मार्गदर्शन करना, जैसी कुछ ऐसी बातें हैं, जो साहित्यकार कर सकता है। यही नहीं, देश का नुकसान पहुँचाने वाली घटना, दुर्घटनाओं, आपदाओं, रिश्वतखोरों, जमाखोरों का खुलकर विरोध करना भी साहित्यकार का कर्त्तव्य बनता है। सिद्धेश्वर जी की कलम इसी दिशा में चल रहीं है। इनका साहित्य सृजन ही अभीष्ट नहीं, समयानुसार शिष्ट समाज के निर्माण में भी इनका योगदान अनवरत रूप से जारी है।

सिद्धेश्वर जी लगातार परिश्रम कर रहे हैं इसलिए शोहरत भी इन्हें हासिल है और जीवन में उतार-चढ़ाव नहीं। मेहनत से शोहरत हासिल करने वालों को समय के उतार-चढ़ाव की परवाह नहीं होती है और लोकप्रियता के वे मोहताज नहीं होते हैं। अक्षरों की दुनिया के एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर सिद्धेश्वर जी भी कभी लोकप्रियता के मोहताज नहीं हुए। आखिर तभी तो देश के सुलझे हुए राजनेता नीतीश कुमार ने पहली बार तो इन्हें रेलवे हिंदी सलाहकार समिति का सदस्य बनाया, दूसरी बार 2007 में अमेरिका के न्यूयार्क में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में उन्हीं के सौजन्य से इन्होंने बिहार सरकार का प्रतिनिधित्व किया और तीसरी बार राज्यमंत्री का दर्जा प्रदान कर इनके सबल कंधों पर बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व सौंपा। इन तीनों मामलों में सिद्धेश्वर जी ने अपनी ओर से कभी

भी प्रयास नहीं किया, बल्कि सच तो यह है कि मुख्यमंत्री नीतीश कुमार को इन पदों के लिए इनपर दबाव बनाना पड़ा। इस प्रकार सिद्धेश्वर जी ने भारतीय राजनीति में एक बड़ी और नई लकीर खींची।

सिद्धेश्वर जी का जीवन एक संदेश है। कारण कि हर क्षण कुछ न कुछ नया गढ़ने-पढ़ने, गुनने-समझने की तड़प इनके भीतर से नहीं गई है। खासकर इनके ज्ञान से चमकती आँखों की सुंदरता ऐसी कि मांनों इनके शुभेच्छु खींचे चले जाते हैं। उस चेहरे के सच में एक 'व्यक्तित्ववान' चेहरा है। साथ ही उनमें संवेदना और समझदारी ऐसी जो खुद के साथ-साथ औरों को भी मुक्त करती है या कहिए कि किसी अच्छे काम के लिए प्रेरित करती है। कभी-कभी तो समझ में नहीं आता कि सच क्या है-यह दुनिया या वह दुनिया, जहाँ सिद्धेश्वर जी अपने शब्दों और संवेदनाओं के झूले पर बैठाकर हिलोरें देते हुए, हमें ले जाते हैं। आज जब मैं सिद्धेश्वर जी के सच के बारे में लिखने बैठा हूँ, तो लगता है वह शरीर से ज्यादा मन और बुद्धिमता की सुंदरता है, जिसका जादू हम सभी उनके शुभेच्छुओं के सिर चढ़कर बोल रहा है। यह एक समझदार और सुरुचिपूर्ण रचनाकार की सुंदरता है जिसे महसूस तो किया जा सकता है, पर ठीक-ठाक कागज के पन्नों पर उतारा नहीं जा सकता है। आँखों में बुद्धिमता की चमक लिए सिद्धेश्वर जी तब भी मेरे लिए सर्वोच्च प्रतिमान थे, आज भी हैं।

आज जब अखबार और टी.वी. के विभिन्न चैनल मनुष्य और मनुष्य के बीच नफरत को जरूरत से ज्यादा उछालने में लगे हैं और हिंसा और अपराध ही आज की दुनिया और समाचार-जगत के केन्द्र में छाते जा रहे हैं, तब मैं बड़ी कृतज्ञता के साथ अपने प्रिय अनुज साहित्यकार व पत्रकार सिद्धेश्वर जी के भीतर एक ऐसी संवेदना पाता हूँ जिसकी लौ में तमाम नफरत की आँधियाँ बुझ जाती हैं। इसलिए यह दुनिया बची हुई है और शायद इतनी खुबसूरत भी है।

सिद्धेश्वर जीं ने हिंदी में शिविरों, व्याख्यानमालाओं, संगोष्ठियों तथा सांस्कृतिक यात्राओं से एक ऐसा सांस्कृतिक-साहित्यिक रचनात्मक परिवेश निर्मित किया है जिसमें उनका गौरव स्पष्ट झलकता है। गद्य-पद्य के सभी क्षेत्रों में वे पिछले तीन चार दशकों से 'राहों का अन्वेषी' बनकर हमलोगों का मार्गदर्शन कर रहे हैं और नई पीढ़ी को प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं। हिंदी साहित्य के प्रति इनका गहरा लगाव है। लेखक समाज का एक सदस्य है और साहित्य एक सामाजिक कर्म। सिद्धेश्वर जी अपने इसी सामाजिक कर्म

का निर्वहण करते हैं। लेखन के लिए वे लगातार साधना करते हैं। भागते फिरते गंभीर लेखन नहीं होता। सिद्धेश्वर जी के लगातार साधना करते रहने की वजह से ही इनके लेखन में गंभीरता और गहनता होती है।

आज कल क्या गरीब क्या अमीर हर कोई किसी न किसी समस्या से घिरा ही रहता है। इन सभी समस्याओं का एक हल है-धर्म। जब हम धर्म की बात करते हैं, तो यह हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाईवाला धर्म नहीं है। कर्त्तव्यवाला धर्म है। गीता के अनुसार कर्म ही धर्म है। सिद्धेश्वर जी इसलिए कर्म में विश्वास करते हैं और इसी कर्म को पूजा समझते हैं। इनका कहना है कि आजकल लोग अपने कर्त्तव्य से विमुख हो रहे हैं और अन्य काम करते हैं जिससे स्वार्थ उत्पन्न होता है और स्वार्थ ही सारी समस्याओं की जड़ है।

भारत में बढ़ती हिंसा की समस्या पर अपनी प्रतिक्रिया में सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि इस बात से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता कि देश में बढ़ी हिंसक प्रवृत्ति भारतीय लोकतंत्र की लगातार विफलता के चलते ही समाज के हर कोने-अंतर में व्याप्त रही है। जब लोकतंत्र अपने नागरिकों को आधारभूत सुरक्षा न्यायपूर्ण तरीके से उपलब्ध नहीं करा पाता और राज्य की मशीनरी सामान्य लोगों के दोहन पर उतर आती है, तो उनके असंतोष का एक मात्र हल हिंसा में ही वे देखने लगते हैं। उनके दिमागों में हिंसा पैठ जाती है। हालांकि हिंसा से भी उनकी समस्याओं का निदान नहीं निकल पाता। लेकिन समाज में निरंतर बढ़ती हिंसा क्रूरता में कहीं अधिक जघन्य, अँधी हर धर्म-मजहब, हर क्षेत्र में शामिल है। सिद्धेश्वर जी का इस संदर्भ में स्पष्ट मत है कि जबतक हिंसा के राज्य 'तंत्रीय' विफलता कारकों का विश्लेषण नहीं होगा, इनसे उबरने का कोई रास्ता नहीं मिलेगा। सरकार अपनी संकीर्ण राजनीति की वजह से हिंसात्मक आंदोलनों का रूप ले रही भाषावादी, क्षेत्रवादी, जातिवादी और संप्रदायवादी हरकतों को न रोकने का प्रयत्न करती है और न किसी के विरूद्ध कोई कार्रवाई करती है। इसके परिणामस्वरूप असामाजिक तत्व और उत्साहित हो रहे हैं। पिछले दो दशकों में देश की राजधानी नई दिल्ली और प्रदेश की राजधानियों में विकास के नाम पर जिस तरह के निर्णय लिए गए उनसे इन इलाकों का बहुसंख्य वर्ग असंतुष्ट था। संविधान द्वारा उसे प्रदत्त विशेषाधिकारों की लगातार अवहेलना की गई। जब भी इसका विरोध हुआ उसे दबा दिया गया। धीरे-धीरे पहचान का वही संकट असंतोष में बदलता गया और आगे जाकर वही 'प्रतिशोध'

तक पहुँच गया। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि नीति निर्माता अपनी सोच में मूलभूत परिवर्तन लाएँ और यह समझें कि अपने मनमाफिक विकास को पूरे देश पर थोप देने के परिणाम सुखद नहीं होंगे।

निःसंदेह सिद्धेश्वर जी अपने जीवन के प्रत्येक आयाम को भरपूर जी रहे हैं और वह भी पूरी सार्थकता के साथ। सार्थकता के साथ इसलिए कि सत्संग, अच्छे लोगों का सान्निध्य से इन्होंने अपनी जीवन की दिशा बदल दी है। इनका जीवन बुनियादी रूप से सिद्धांतों और मूल्यों की पटरी पर चलता है, तभी तो इनका काम बनता है और दूसरों का सहयोग मिलता है, क्योंकि ऐसा जीवन सबको प्रिय लगता है, जो दूसरों के काम आ सके। सहयोग और सहकार का निर्वहण करने के पीछे इनकी सहनशीलता, मृदुभाषी और सेवाभावी होना बताया जाता है।

सिद्धेश्वर जी के पिता इन्द्रदेव प्रसाद स्वाभिमानी देशभक्त थे। सिद्धेश्वर जी ने अपने पिता से स्वाभिमानी और अनुशासन में रहना भी सीखा तथा निर्भयता का मंत्र भी पाया। उनके मानसिक निर्माण में पिता और माता की बहुत दूर तक भूमिका रही है। बचपन से ही वे सामाजिक मनोवृत्ति के रहे। इन्होंने सतही पैमानों से साहित्यिक-सांस्कृतिक परंपराओं को समझने की कभी भूल नहीं की। उसे पूरे बोध से जाग्रत नीति सामाजिक चेतना का वाहक माना। इस दृष्टि से वे प्रेमचंद की शुरु से ही बहुत कद्र करते हैं।

सिद्धेश्वर जी के लिए निरंतर संस्कारवान होने की प्रक्रिया ही आधुनिकता है। इस तरह आधुनिकता एक संस्कार है, जो संवेदना का अंग बनती है। इन्होंने बहुत श्रम-साधना से नए सृजन-चिंतन, संस्कृति, भारतीयता, भाषा, राजनीति, समाज के तमाम क्षेत्रों को समेटते हुए गंभीर ढंग से निबंध लिखे हैं। इनमें अनुभूति और चिंतन का खमीर एक खास लय से उठा है और सिद्धेश्वर जी की प्रतिभा सामने आई है।

हिंदी पत्रकारिता सिद्धेश्वर जी के प्रति कृतज्ञ है। पत्रकारिता में वे सर्वप्रथम विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' तथा बाद में दिल्ली से प्रकाशित 'विचार दृष्टि' के संपादक के रूप में सामने आए। फिर बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड में आने के बाद 2010 में 'वाग्वन्दना' नाम्नी पत्रिका निकाली जिसके वे संस्थापक-संपादक हुए जहाँ पत्रकारिता का अनुभव काम आया। नए-नए लेखकों से लिखवाना, उन्हें प्रोत्साहित करना इन्हें अच्छा लगता है। पत्रकारिता को इन्होंने नई भाषा दी और नए-नए स्तंभों के जरिए साहित्यक-सांस्कृतिक पत्रकारिता को शिखर पर पहुँचाते हुए उसे अद्वितीय बनाया। वास्तविक सोच

व्यक्त करने वाला और समाज का बदरंग चेहरा उजागर करने वाला संपादकीय लिखकर इन्होंने एक उदाहरण प्रस्तुत किया। सिद्धेश्वर जी की नेतृत्व क्षमता और प्रशासनिक दक्षता बेजोड़ है। वैसे प्रशासनिक कामकाज के ढर्रे को बदलने की प्रक्रिया एक श्रमसाध्य कार्य है, किंतु सिद्धेश्वर जी ने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड कार्यकाल के कामकाज के ढर्रे को बदलने में जो कामयाबी हासिल की है वह उनकी विलक्षण दक्षता का परिचय देता है। यह कार्य केवल घोषणाओं, प्रस्तावों व संकल्पों से होने वाला नहीं है। इसके लिए आवश्यक है दृढ़ इच्छा प्रदर्शित करना। इधर, एक साल में सिद्धेश्वर जी ने जो कुछ किया है उससे यह सिद्ध होता है कि इन्होंने गुटबाजी दूर करने, अनुशासन कायम करने और मिलजुलकर कार्य करने का सिलसिला अवश्य शुरू किया है। इनके पूर्व खास बात यह थी कि इन सारे कारनामों के प्रति बोर्ड तंत्र उदासीन रहता था और उसके नीतिकार इसकी जिम्मेदारी से बचने या इसे जायज ठहराने वाली दलील तैयार रखते थे। हालांकि यह बात भी ठीक है कि बोर्ड तथा उसके द्वारा संचालित संस्कृत विद्यालयों का आसमान पूरी तरह अभी साफ नहीं हो पाया है। जरा सी शह पाते ही हवा के किसी अनजाने कोने से उठे झोंके पर तैरते बादल मौसम बिगाड़ सकते हैं। सुकुन की बात यह है कि तबाही लाने की नीयत और ताकत रखने वाले बादलों की फिलहाल कोई ऐसी हवा नहीं दिखती, जो उन्हें विरोध करने का सार्वजनिक रूप से साहस कर सके। फिजां इतनी बदली हुई है कि विरोधी ताकतों को घर में फंटकार मिल रही है। फिर भी, बोर्ड के तमाम अध्यक्ष को सावधान रहने की जरूरत है। मौसम का क्या ठिकाना?

सिद्धेश्वर जी के जीवन का आधार है अभय। अभय व्यक्तित्व की एक कसौटी है तथा प्रमाणिकता का प्रमाण भी, जो व्यक्ति गलती करता है, उसे भय रहता है कि कहीं उसकी गलती प्रकट न हो जाए, तो अलग बात। अनजानें में भी गलती हो जाने पर जब वह पकड़ में आती है, तो उसे शुद्ध करने से बाज नहीं आते। भगवान महावीर ने कहा था-न 'भइयव्वं-साधक को किसी भी स्थिति में डरना नहीं चाहिए। भीरु व्यक्ति सदा अकेला रहता है। भूत भी उसी को पकड़ते हैं जो भीरु होता है। डरने वाला दूसरों को भी डराता है। भय के कारण व्यक्ति तप और संयम को छोड़ कुपथ में चला जाता है। यही कारण है कि सिद्धेश्वर जी संयम को नहीं छोड़ते। जिस पथ पर वे चलते हैं, उस पर कोई डरपोक व्यक्ति चल ही नहीं सकता। अथर्ववेद में कहा गया है-

अभयं मित्रदमयममित्रा, दभयं ज्ञौतादभयं परोक्षात।
अभयं नक्तं अभयं दिवा, सर्वा आशा मम मित्राणि संतु।

अर्थात् मैं अपने मित्रों से अभय हूँ, दुश्मनों से अभय हूँ। प्रत्यक्ष से अभय हूँ। परोक्ष से अभय हूँ। रात में अभय हूँ, दिन में अभय हूँ। सब दिशाएँ मेरे मित्र हों।

सिद्धेश्वर जी के मन में भय नहीं है इसका एक कारण यह भी है कि वे सबके प्रति मैत्री की भावना प्रवाहित करते हैं और अपने शत्रुओं से भी अभय रहने का संकल्प दोहराते हैं। इसलिए इन्हें भयभीत कौन करेगा? इनके लिए अभय वह सुरक्षा कवच है, जिसे पहनकर वह हर खतरे का सामना कर सकते हैं और अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख सकते हैं।

सिद्धेश्वर जी अपनी मेहनत और संस्कारों के साथ सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन को समृद्ध बना रहे हैं। अपने कठिन परिश्रम, ज्ञान और शिक्षा के प्रति रूझान एवं पारिवारिक मूल्यों में आस्था की वजह से ही वे समाज व देश में प्रतिष्ठित हैं और इन्होंने राजनीति एवं मीडिया दोनों का ध्यान खींचा है। यही नहीं, संस्कृत शिक्षा को प्रतिष्ठा का प्रश्न मान सिद्धेश्वर जी ने इसमें गुणात्मक परिवर्तन करने को सबसे कठिन चुनौती के रूप में स्वीकार किया और इन्हें यह भरोसा हुआ कि अब काम सही पटरी पर है और शैक्षिक जगत में उसे एक नई पहचान मिले। बोर्ड की कार्य प्रणाली का चरमराना, वहाँ के पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों के एक खास समूह के लोगों का विरोध तथा विभाग का असहयोगात्मक रवैया-इन सभी के बीच समन्वय बनाकर काम करना टेढ़ी खीर था। खासतौर से शिक्षा जगत से जुड़े एक बोर्ड के अध्यक्ष को अधिनियम के तहत प्रदत पूर्ण कार्यपालक और शैक्षणिक अधिकार की वजह से इन्होंने राह में आई सभी मुश्किलों व अड़चनों का सामना करते हुए कामयाबी हासिल की। तमाम चुनौतियों के बावजूद वे हर तरह से तैयार रहे।

यह पूछे जाने पर कि उन्हें काम करने के दौरान राजनीति आड़े आई, सिद्धेश्वर जी ने कहा कि राजनीति तो चलती रहती है, लेकिन संस्कृत का विकास स्थायी मुद्दा है। बोर्ड के सचिव तथा कर्मचारियों के साथ समय-समय पर प्रगति की समीक्षा होती रही और समन्वय के साथ काम चलता रहा। यह बात सही है कि चुनौतियाँ आईं, लेकिन मैं कह सकता हूँ कि अंदरूनी गलतफहमियाँ दूर हुईं और लोग मुझे समझने लगे। हाँ, इतना जरूर है कि इन्होंने विभाजन की राजनीति कभी नहीं की। इन्होंने केवल

संस्कृत के विकास की राजनीति की और उसी एजेंडे पर वे बढ़े। विकास के प्रति इनकी प्रतिबद्धता के कारण ही संस्कृत बोर्ड इनके कार्यकाल में विकास के रास्ते पर रहा और संस्कृत की गरिमा बढ़ी।

बुजुर्गो की बदहाली पर सिद्धेश्वर जी का दो टूक जवाब है कि जो बुजुर्ग अपनी संतानों की खुशी के लिए सारी उम्र तमाम दुःख खुशी-खुशी झेल लेते हैं, वे उम्र के आखिरी पड़ाव पर अपने ही खून के हाथों बेइज्जत और प्रताड़ित हो रहे हैं। बदलते सामाजिक परिवेश की वजह से वृद्धों का जीवन दिन-ब-दिन कठिन होता जा रहा है। उनका मानना है कि देश में तकरीबन 5.1 करोड़ ऐसे बुजुर्ग हैं जिनकी सुध लेने वाला कोई नहीं है। ये गरीबी और साधनहीनता में जीवन बिता रहे हैं। एक ओर जहाँ गाँव के बुजुर्ग मरते दम तक मजदूरी करने को अभिशप्त हैं, तो वहीं दूसरी ओर शहरी वृद्धजन पारिवारिक उपेक्षा और एकाकीपन के शिकार हैं। इस एकाकीपन को दूर करने और सामाजिक सुरक्षा दिलाने के मामले में सरकार के द्वारा जो पहल की जा रही है उसका स्वागत किया जाना चाहिए। बहरहाल, देर से ही सही, सरकार के द्वारा बुजुर्गो के लिए अलग से बजट बनाने की जो पहल की जा रही है, उससे बुजुर्गो के दिन बहुरने की उम्मीद जगी है।

प्रगतिशील विचारधारा के आज जितने भी साहित्यकार व कवि हैं उनमें कुछ कारणों से सिद्धेश्वर जी की सबसे अलग पहचान है, जैसे एक प्रतिबद्ध लेखक, कुशल प्रशासक, निष्ठावान एवं ईमानदार छवि के अतिरिक्त सरल एवं स्पष्ट वक्ता। यही नहीं वे अपने परिवेश व जगह जमीन से गहरे जुड़े हैं। साहित्य की दुनिया में सिद्धेश्वर जी ने नैतिकता की नींव रखी और अपने निबंध व लेखन के बहाने दबी हुई जनता की बात बोलते दिखाई पड़ते हैं। उनकी रचनाएँ अपने बिंब, विचार, अनुभूति और शिल्प शौष्ठव से हमें दृष्टि और दिशा प्रदान कर रहे हैं।

सिद्धेश्वर जी का जन्म नालंदा(बिहार) के एक साधारण से गाँव बसनियावाँ में 18मई 1941 को हुआ। बसनियावाँ गाँव बख्तियारपुर राजगीर रेलवे के बीच हरनौत से 10 किलोमीटर पूरब तथा पटना से 70 किलोमीटर की दूरी पर है जो हरनौत प्रखंड के अंतर्गत आता है। इनके पिता का नाम इन्द्रदेव प्रसाद तथा माता का नाम फूलझार प्रसाद था। पत्नी बच्ची प्रसाद से सिद्धेश्वर जी 7जुलाई, 1962 में विवाह-सूत्र में बँधें और तबसे उनके साथ सिद्धेश्वर जी का दांपत्य जीवन बड़ा सुखमय चल रहा है। इनकी तीन संतानों में सुधा तथा अंजली दोनों बेटियों की शादी सुखी संपन्न परिवार में हुई है

और वे दोनों अपने-अपने पति के साथ स्वस्थ-प्रसनन जीवन जी रही हैं। बड़े दामाद अरुण कुमार सिन्हा, सिविल इंजीनियर हैं, जो दिल्ली में हैं और छोटे दामाद प्रवीण कुमार, भारतीय संचार निगम लिमिटेड में लेखापदाधिकारी के पद पर इन दिनों गाजियाबाद में पदस्थापित हैं, वैसे इनका साहिबाबाद में अपना पुस्तैनी मकान है। सुधीर रंजन, सिद्धेश्वर जी का इकलौता सुपुत्र है, जो इन दिनों अपनी कम्पनी सोल्युसंस प्वायंट, दिल्ली का प्रबंध निदेशक है तथा इनकी पत्नी सुनीता रंजन अपने पति की सहयोगी के रूप में प्रबंधक। सिद्धेश्वर जी का पौत्र समीर रंजन नोयडा के अमिती इन्टरनेशनल में छठा वर्ग का छात्र है जो अपने दादाजी के प्रत्येक कार्यो में सहयोग करता है। अभी-अभी कुछ दिनों पूर्व जब वह अपने माता-पिता के साथ पटना आया, तो बंधन में बंधी तथा जहाँ-तहाँ बिखरी दादाजी की किताबों को करीने से आलमीरा में सजाकर रखा। इसी प्रकार दिल्ली में भी इनकी देखरेख में सदैव मुस्तैद रहता है खासकर खाने-पीने के मामले में। सिद्धेश्वर जी समीर जैसे पौत्र को पाकर अपने को धन्य इसलिए मानते हैं कि मौजूदा दौर के भौतिकवादी युग में अपने बेटे की तो अपनी दुनिया है, पौत्र का तो कहना ही क्या। यही कारण है कि सिद्धेश्वर जी संतान के लिए धन अर्जित करना व्यर्थ समझते हैं और इस कहावत को चरितार्थ करते हैं 'पूत-कपूत तो क्यों धन संचय, पूत सपूत तो क्यों धन संचय'।

सिद्धेश्वर जी गज़ब के वक्ता हैं। जब वे किसी संगोष्ठी या कार्यक्रम में बोलते हैं, तो लोग उन्हें बड़ी तन्मयता और एकाग्रता से सुनते हैं। वह लोगों को बाँध लेते हैं। एक घंटे तो वह खुलकर बोल लेते हैं। बोलने के पूर्व वह किसी विषय पर तैयारी करते हैं और नोट्स बनाते हैं, मगर मजेदार बात यह है कि जब वह बोलने लगते हैं तो उनके हाथ में वह नोट्स भी धरा का धरा रह जाता है। उस वक्त किसी किस्म के नोट्स की उन्हें जरूरत नहीं रह जाती कि नोट्स बनाते वक्त उसके सभी बिंदु उनके मानस-पटल पर अंकित हो जाते हैं। किसके साथ उन्होंने खाना खाया और मजा उठाया यह भी उन्हें याद आ जाता है। एक बार की बात है बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन, पटना द्वारा सम्मेलन भवन के सभागार में आयोजित राहुल सांकृत्यायन के जन्म दिवस के अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में उन्हें बोलना था, सुधीजनों तथा मान्य अतिथियों को यह देख-सुनकर आश्चर्य हुआ कि राहुल जी के संबंध में कुछ ऐसे-ऐसे बिंदु पर उन्होंने प्रकाश डाले जिसकी जानकारी लोगों को नहीं के बराबर थी। उन्होंने एक संस्मरण प्रस्तुत

करते हुए कहा कि एक बार पटना में आयोजित एक कार्यक्रम में राहुल जी उपस्थित थे। मंच संचालक ने उद्‌गार व्यक्त करने के लिए जब राहुल जी से अनुरोध किया गया, तो वे गंभीर मुद्रा में थे। कई लोगों ने उनसे आग्रह किया, तो गंभीर मुद्रा में ही राहुल जी ने कहा कि जबतक उनकी समस्या का निदान नहीं निकाला जाएगा, तबतक उनका मूड ठीक नहीं होगा। लोगों ने पूछा कि उनका मुड कैसे ठीक होगा? तो गंभीर मुद्रा में ही राहुल जी ने कहा कि उनके पेट में चूहे कूद रहे हैं और जबतक सामने रखे अल्पाहार में हरे चने की घूघनी और फरही उनके पेट में नहीं जाती, तबतक उनका मूड ठीक नहीं होगा। यह सुनकर लोगों ने ठहाका लगाया और कार्यक्रम के अध्यक्ष ने तुरंत आधे घंटे के लिए कार्यक्रम स्थगित कर अल्पाहार की घोषणा की। जब राहुल जी सहित सभी लोगों ने अल्पाहार के साथ चाय की चुस्की ले ली, तो लोगों ने दांतों तले ऊँगली दबा ली। सिद्धेश्वर जी को यह भी याद रहता है अमूक आदमी की पत्नी उन्हें कितना मानती हैं या कितना तेज हैं।

सिद्धेश्वर जी अपने वसूलों से कभी समझौता नहीं करते। सिद्धेश्वर जी और इनकी धर्मपत्नी बेहतर कामों में अपने को लगाए रखती हैं। उनकी लिखी हुई रचनाओं को पढ़ने में मजा आता है। उसकी वजह है कि जगह-जगह आपको तीखा व्यंग्य मिलता है। राजनीति और राजनेताओं पर तो व्यंग्य करने में वे सिद्धहस्त हो चुके हैं। बहुत चुटीला और बेधक। मगर पता चलता है कि वे कितने सहज और सरल हैं। हवा में नहीं, जमीन पर रहते हैं। एक संस्मरण में उन्होंने लिखा है कि उनकी जिंदगी में उन्हें यह पाठ पढ़ने को मिला है कि दिखावा नहीं करना है। जब आपकी उम्र बढ़ती है और अपने अहम को दबाने की हिम्मत नहीं होती, तो उसका असर बाद की जिंदगी पर पड़ता है। शायद उसके बाद आप कुछ नहीं कर सकते। हम लोग जन्म से विनम्र नहीं होते, दिखावे की आदत तो हममें पड़ जाती है। लेकिन उसे दबाना जरूरी है।

सिद्धेश्वर जी फिलहाल देश और समाज के हालात से परेशान हैं। न तो आज लोगों में सामाजिक प्रतिबद्धता दिखाई देती है और न ही राष्ट्रीयता की भावना। उनकी परेशानी से मैं सहमत हूँ। सिद्धेश्वर जी ने एक वक्त गुजारा है, लेकिन उन्हें सबसे परेशानी इस बात को लेकर है कि अपने यहाँ बर्दाश्त करने की ताकत लगातार घटती जा रही है। सदियों से सभी धर्मो में सबसे ज्यादा बर्दाश्त करने वाले रहे हैं, लेकिन कुछ सालों से सब बदल रहा है। दरअसल, लोगों में आज विकृष्ट विचार एवं उत्कृष्ट चिंतन जो हमारे

नैतिक मूल्यों को पोषित करते हैं का अभाव होता जा रहा है। यही चिंता का विषय है। वैसे देखा जाए, तो मानव में नैतिकता और आत्मबल की असीम शक्ति होती है जिसके आधार पर वह कठिन कार्य आसानी से संपन्न कर सकता है, साथ ही दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु हासिल कर सकता है। मगर मौजूदा दौर में नैतिकता व आत्मबल कमजोर होता जा रहा है जिसे विकसित करने की जरूरत है।

(२)सिद्धेश्वर जी का वक्त की पाबंदी एक सांस्कृतिक संवाद

सिद्धेश्वर जी का वक्त की पाबंदी सबको मुग्ध करती है। लगता है कोई तो है जो वक्त का पाबंद है। कोई तो है जो हमें भी वक्त की कीमत समझा रहा है। उनमें हमें यह सबक मिल रहा है कि समय की कीमत है। जाहिर है वातावरण और उनके बीच बनी यह अवधारणा ही जन-व्यवहार का निर्माण करते हैं।

एक अजानी आपाधापी और एक अनाम निजी अनिवार्यता-सी लूट में बदहवास हर आदमी चिढ़चिढ़ाता-झगड़ता सा दिखता है। अपने से ही अतियाए आकुल-व्याकुल इस वातावरण में सिद्धेश्वर जी ने कुछ देर के लिए राहत का एक कोना दिया है। हर माने में उनकी समय की पाबंदी एक सांस्कृतिक संवाद है। सिद्धेश्वर जी के इर्द-गिर्द ही उनका 'कल्चर' है जो हम सबको कुछ देर के लिए ही सही, शिष्ट और सुशील बनाता है। हमारा मन ऐसी जनतांत्रिक शिष्टता को अपना लेते हैं।

सिद्धेश्वर जी के इर्द-गिर्द जो वातावरण और परिसर है वही हमारे संचार, हमारे संवाद और हमारे जन-व्यवहार के निर्णायक तत्व हैं। उनके बदलने से जनता का मिजाज बदलता है, आदेश-उपदेशों से नहीं। इसलिए सिद्धेश्वर जी को पढ़ना अपने को पढ़ना है। मगर अफसोस है कि लोग अपने-अपने माध्यमों में हैं, लेकिन अपने माध्यम तक नहीं पढ़ते। सिद्धेश्वर जी का व्यक्तित्व इस माने में एक अनुभव है, जिन्हें पढ़ जाना चाहिए। इन्हें इस बात के लिए भी पढ़ा जाना चाहिए कि ये राष्ट्रहित को सबसे ऊपर रखते हैं। ये इस बात की चिंता व्यक्त करते हैं कि आज की हमारी हालत ऐसी है जिससे हमारी आजादी और संविधान को बार-बार खतरा पैदा होता रहता है। इस बात की पड़ताल करने की जरूरत है कि अनेक मूल्कों के लोग अपनी राजनीतिक आजादी को अपने जीवन से बढ़कर मानते हैं, लेकिन बहुत सारे ऐसे मुल्क हैं जो आजादी को कुछ नहीं समझते। हमारा

मूल्क उसी में से एक है।

राष्ट्रीयता के बारे में इनका मत है कि यह राष्ट्रीय चेतना है और वह कोई निश्चेष्ट भावना नहीं है, बल्कि एक अत्यंत गतिमान, उत्प्रेरक तथा स्फूर्तिदायक चेतना है जो मनुष्यों के अपने राष्ट्र के उत्थान एवं समृद्धि हेतु संगठित रूप से प्रयास करने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। अत: राष्ट्रीयता एक विचार है, एक विचार शक्ति है, जो मानव के मस्तिष्क और हृदय को नवीन विचारों तथा मनोभावों से युक्त कर देती है एवं उसे अपनी चेतना को संघटन क्रिया के कार्यो में परिवर्तन करने के लिए प्रेरित करती है।

किसी भी राष्ट्र की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने में वहाँ के नागरिकों की राष्ट्रीय चेतना जरूरी है और उस राष्ट्रीय चेतना को बाँधे रखने के लिए वहाँ के लोगों में सांस्कृतिक और भावनात्मक एकता के सूत्र होने चाहिए। राष्ट्रीयता की भावना, अपने राष्ट्र के गौरवमय अतीत पर गर्व और स्वाभिमान की शक्ति, एकता पर बल इन सबकी चेतना फैलाने में नागरिकों को योगदान होता है। मगर देश की जो स्थिति है उसमें वहाँ के नागरिक अपने दायित्व का निर्वहण करने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं जो चिंता का विषय है।

सिद्धेश्वर जी देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, अभाव, आतंक और विविध प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त वर्तमान भारत को सबल-संपन्न बनाना चाहते हैं और इसके लिए इसे स्वाभिमान संपन्न भी करना चाहते हैं। भारत के पुरातन सांस्कृतिक वैभव-गौरव को पुन: प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा को भारतीयों में जाग्रत करना, समझना इनका उद्येश्य है। विविधताओं से भरे इस देश में धर्म, विश्वासों, रीति-रिवाजों में भी अलग-अलग विभिन्न मानव भूमि है यह फिर भी अखंड संवैधानिक संप्रभुता-संपन्न राष्ट्र है। इस विशाल भूमि में पर्वत, नदी, सागर, वन संपदा पोषित असंख्य अनपढ़ निरक्षर, दीन-दुर्बल किसान मजदूर, व्यवसायी तथा बुद्धिजीवी की असंख्य मानव समूहों की अलग-अलग शक्ति सीमाएँ हैं। इन सबके बीच राष्ट्र स्वाभिमान जाग्रत करने के लिए सिद्धेश्वर जी आतुर हैं।

(३) सामाजिक सरोकार के साहित्यकार

समाजोन्मुखता की लहर हिंदी लेखन में नवजागरण काल से ही उठने लगी थी, समाजवाद ने उसमें केवल एक और आयाम जोड़ा। इसी समाजवादी चिंतन को मानवतावादी दृष्टिकोण से जोड़कर उसे जन–जन तक पहुँचाने वालों में एक नाम सिद्धेश्वर जी एक ऐसे साहित्यकार हैं, जो बात को सिर्फ कह देना ही नहीं, बल्कि बात की सच्चाई और गहराई को नाप लेना भी उतना ही उचित समझते हैं। वे अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक विषमता व संघर्ष के बंधनों को तोड़कर आगे बढ़ने का आह्वान करते हैं। उनके साहित्य में सर्वत्र मानवीय करुणा, मानवीय मूल्य और नैतिकता विद्यमान है। स्वतंत्र व्यक्तित्ववाले सिद्धेश्वर जी गहन मानवीय संवेदना के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं जिन्होंने इस देश की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक यथार्थ का स्पष्ट चित्र अपने साहित्य में प्रस्तुत किया है। उनकी यथार्थवादी दृष्टि उनके प्रगतिशील विचारों का प्रतिफल है। उनके निबंधों में अंतर्विरोधों व जीवन के द्वंद्वों व विसंगतियों की जकड़ें, मध्य व निम्न वर्ग की जिजीविषा और संघर्षविषा और संघर्षशीलता को उद्घाटित किया गया है। वे सामान्यजन की आशा, आकांक्षा, दुख, पीड़ा, अभाव, संघर्ष तथा विडंबनाओं को अपने निबंधों से ओझल नहीं होने देते हैं। उन्होंने राजनीतिक भ्रष्टाचार को उकेरने की कोशिश की है। भारतीय राजनीति में निरंतर बढ़ते भ्रष्टाचार, नेताओं की पाखंडी प्रवृत्ति, चुनावों की भ्रष्ट प्रणाली, राजनीति में धार्मिक भावना, सांप्रदायिक, जातिवाद का दुरुपयोग, भाई–भतीजावाद, नैतिक मूल्यों का ह्रास, व्यापक स्तर पर आचरण, भ्रष्टता, शोषण की षड्यंत्रकारी प्रवृत्तियाँ व राजनीतिक आदर्शों के खोखलेपन आदि का चित्रण वे बड़ी प्रमाणिकता व तटस्थता के साथ करते हैं।

अगस्त का कथन है–प्रजातंत्र का विकृत रूप भीड़तंत्र है और भीड़ जुटाना आज की एक महत्वाकांक्षी प्रक्रिया है। कीर्कगार्ड ने सही कहा है–मनुष्य केवल भीड़ में ही खुश रहता है। हम बड़े हैं हर एक नेता ने आजकल इसे दिखाने के लिए अपनी रैलियाँ आयोजित करके जनमत अपने पक्ष में जतलाने का धंधा बना लिया है। कौन अवसरवादी है, कौन नहीं, यह अवसरवाद की उपज है और अवसर का फायदा उठाना हर व्यक्ति व नेता का चरित्र बन गया है। बीच–बीच में पार्टी बनाना, दल बदलना या पार्टी का तोड़ देना इन नेताओं का शगल होता है। यही कारण है कि इस देश में रोज दल बनते हैं और खण्ड–खण्ड होते हैं। जनता दल हो या काँग्रेस या दक्षिण

भारत का डी.एम.के. सबका हस्र आपने देखां है। इन सब स्थितियों पर सिद्धेश्वर जी की नजर गई है और उन्हें अपने लेखन में पिरोया है। वैसे भी समाज और साहित्य नदी के दो ऐसे किनारे हैं जिनके बीच में से घटनाक्रम रूपी जल की धाराएँ कल-कल बहती हैं। कभी यह बेहद शांत, तो कभी गंभीर उछ्दाग पग से पल-पल परविर्तन से प्रभावित, पर दोनों शाश्वत रूप से तटस्थ भाव से गतिमान रहते हैं। साहित्यकार समाज के इन घटनाक्रमों का न केवल आकलन करता है, अपितु वह आमजन से लेकर विशिष्टजन को आंदोलित करता है। सिद्धेश्वर जी ने अपने लेखन में समाज के व्यापक प्रश्नों को जोड़ा है। इनकी रचनाएँ हमें इन सामाजिक वास्तविकताओं के आमने-सामने खंड़ा करती है, जिनसे आम आदमी का अलग रह पाना लगभग असंभव है। सिद्धेश्वर जी की लेखनी जो एक बार चल पड़ी, कभी थमी-थमी नहीं, आम तौर पर सातवें दशक पार कर जाने के बाद जब कोई भी लेखक आराम को ही अपना मुख्य काम समझते हुए लेखन को प्रायः अलविदा कह देता है, सिद्धेश्वर जी लेखन के मोर्चे पर आज भी निरंतर सक्रिय बने हुए हैं। लेखन और पत्रकारिता में इनकी सक्रियता से नवोदित लेखक बहुत कुछ सबक ले सकते हैं और हतासा भरे युग में आशा का संचार कर सकते हैं।

यह कहने कि आवश्यकता नहीं कि सिद्धेश्वर जी में एक ओर जहाँ सृजनात्मक लेखन की गहरी संवेदनात्मकता है, तो वहीं दूसरी ओर सामाजिक-आर्थिक विषयों के गहन और सूक्ष्म पर्यवेक्षण की विश्लेषणात्मक दृष्टि भी। वह न केवल अपने लेखन में विरोधी प्रवृत्तियों से संघर्ष करते हैं, बल्कि अपने जीवन में भी घर से बाहर तक वह संघर्ष कर रहे हैं और निःसंदेह इस संघर्ष को उन्होंने एक सामाजिक कार्यकर्ता और साहित्यकार के रूप में ज्यादा महसूस किया है।

सिद्धेश्वर जी का साहित्य सोद्येश्य है। इनके साहित्य का लक्ष्य है मानव विवेक को जाग्रत करना, सोचने-समझने की शक्ति प्रदान करना, सच को उद्‌घाटित करना और इस देश के साहित्यिक-सांस्कृतिक गौरव को पुनर्स्थापित करना। सिद्धेश्वर जी समकालीनता को एक आदर्श मानते हुए तटस्थ दृष्टि से समकालीन परिवेश का वर्णन करते हैं। सजग सृजन-चेतना के साहित्यकार सिद्धेश्वर जी राष्ट्रीय चेतना, स्वाभिमान और मानवीय संवेदना के समर्थ रचनाकार हैं। सृजनशीलता को जीवित रखने के लिए जिन वस्तुगत अनुभवों की विविधता अनिवार्य होती है, सिद्धेश्वर जी के गद्य और पद्य दोनों विधाओं की रचनाओं में ऐसे अनुभवों की विविधता का दर्शन होता है।

(४)सिंद्धेश्वर जी ने संस्कृत बोर्ड को दिलाई एक राष्ट्रीय पहचान

सिद्धेश्वर जी बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के एकमात्र ऐसे अध्यक्ष रहे जिन्होंने अध्यक्षों को प्रदर्शन-प्रस्तुत(Show Piece) के तौर पर इस्तेमाल किए जाने की परंपरागत सोच को बदलकर संस्कृत बोर्ड को राष्ट्रीय पहचान दिलाई और साथ ही अध्यक्ष पद की गरिमा में जिस सलीके से चार चाँद लगाए उससे उन्हें भी एक नई पहचान मिली। वैसे यह भी सच है कि भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग (Indian Audit & Accounts Department)की अपनी छत्तीस वर्षो की सेवावधि में जिस निष्ठा एवं ईमानदारी का इन्होंने परिचय दिया तथा वहाँ की सांस्कृतिक गतिविधियों के वे केंद्र रहे और विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' के संस्थापक-संपादक के दायित्व का इन्होंने निर्वहण कर अपनी क्षमता और प्रतिभा का परिचय दिया उससे इनकी अलग पहचान बनी थी, मगर पहली बार संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष के राजनीतिक पद पर जब वे आसीन हुए और संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार, इसके साहित्य में अभिवृद्धि तथा संस्कृत शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन के लिए जिस आवश्यक वातावरण का निर्माण इन्होंने किया उससे निश्चित रूप से बोर्ड की गरिमा बढ़ी। यही नहीं, संस्कृत के उन्नयन के लिए अपनी कर्मठता, लगन और सूझबूझ की बदौलत राष्ट्रीय स्तर पर संगोष्ठी और राष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलन का आयोजन कर संस्कृत के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा कराई तथा पद्मभूषण डॉ. सत्यभूषण शास्त्री एवं डॉ. रामकरण शर्मा जैसे अंतरराष्ट्रीय स्तर के ख्यातिप्राप्त संस्कृताचार्यो को जिस प्रकार प्रभावित किया उसे ऐतिहासिक और बेमिसाल कहा जाएगा। सिद्धेश्वर जी के पांव यहीं नहीं रूके, बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के तीस साल की अवधि में पहली बार 'वाग्वन्दना' जैसी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैचारिक पत्रिका के प्रकाशन की शुरुआत कर इन्होंने संस्कृत जगत में अपना लोहा मनवाया। कहना नहीं होगा कि इस स्तर की पठनीय एवं संग्रहणीय पत्रिका का प्रकाशन संस्कृत बोर्ड के लिए मिल का पत्थर साबित होगा वशर्ते कि यह नियमित रूप से प्रकाशित होती रहे। इसके माध्यम से भारतीय संस्कृति के साथ ही आधुनिक युग के बेहतर सामंजस्य को इन्होंने प्रश्रय दिया है जिससे संस्कृत के प्रति इनका समर्पण-भाव सामने आया और बोर्ड को एक नए भुकाम तक पहुँचाने में इनकी कोशिशें तेज हो गई।

सिद्धेश्वर जी के द्वारा बोर्ड के स्तर पर और संस्कृत की प्रगति के लिए संस्कृत विद्यालयों के स्तर पर जो कुछ किया गया, वह हमें सीख देता

है कि दुनिया में कुछ भी असंभव नहीं है। जरूरत है लक्ष्य को केंद्रित कर इच्छाशक्ति को जगाने की और समर्पित एकाग्रता के साथ पिल पड़ने की। ऐसा करने से सफलता अपने आप मिल जाएगी।

संस्कृत शिक्षा के इतिहास पर अगर नजर डालें, तो हमें यह ज्ञात होगा कि विगत तीस वर्षो की गतिविधियाँ संदेह के घेरे में आ गई थीं और भ्रष्टाचार का बोलबाला था। शिक्षा माफियाओं ने इसे प्रमाण-पत्र का कारखाना बना रखा था। यह तो कहिए कि सिद्धेश्वर जी का पदस्थापन इसके अध्यक्ष पद पर हुआ और इन्होंने संस्कृत जगत के मानचित्र पर पहली बार संस्कृत बोर्ड को गौरव दिलाने का सद्प्रयास किया जिसकी आज भी हर मोड़ पर और हरेक कार्यालय में चर्चा होती है। जिस तरह सिद्धेश्वर जी ने संस्कृत को पुनर्जीवित करने की पहल की उसे अद्‌भूत कहा जाएगा। राष्ट्रीय स्तर पर संगोष्ठी व संस्कृत सम्मेलन और 'वाग्वन्दना' जैसी स्तरीय पत्रिका के प्रकाशन से बोर्ड की गतिविधियों में चार-चाँद तो लगा ही, हम अपने देश की वास्तविक सभ्यता और संस्कृति को लोगों तक पहुँचाने में भी सफल हुए है। वैसे भी संस्कृत संस्कृति के संरक्षण का वह महत्वपूर्ण माध्यम है, जो अपने समय का बहुत ही वास्तविक लेखा-जोखा समाज के सामने रखता है। अपना इतिहास जानने की उत्कंठा हर काल में हर इंसान के मन में रही है। इसलिए हमें अपना वर्तमान इतना परिष्कृत और उन्नत बनाकर रखना चाहिए कि जब वह भूतकाल या इतिहास में दर्ज हो जाए, तो हमारी भावी पीढ़ियाँ उसे जान-सुनकर गर्व का अनुभव कर सके। सिद्धेश्वर जी के नेतृत्व में बोर्ड इसी के लिए प्रयत्नशील रहा। अपनी संस्कृति को सेहजकर रखना सिद्धेश्वर जी अपना महत्वपूर्ण दायित्व समझते हैं, लेकिन दुर्भाग्य से अपने आज को अधिकाधिक आरामदेह और मालामाल बनाने के लिए इनके पूर्व के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने तो दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा, मगर संस्कृत भाषा, उसके साहित्य, संस्कृत शिक्षा के साथ-साथ अपनी संस्कृति के उन्नयन के लिए सार्थक सोच पाने की स्थिति में नहीं रहे। कुछेक अपवादों को छोड़ दिया जाए, तो संस्कृत से जुड़े तमाम सरकारी संगठनों द्वारा भी इस निमित्त किए जाने वाले प्रयास भी वर्तमान को ही संतुष्ट करते नजर आते हैं। हमें खुशी इस बात की है कि सिद्धेश्वर जी बड़ी ईमानदारी और निष्ठा से संस्कृत रूपी धरोहर को संजोने का आज भी प्रयत्न कर रहे हैं ओर इस मामले में लोगों को जागरूक बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

यह बात सही है कि सिद्धेश्वर जी स्वयं संस्कृत के लेखक नहीं है,

पर लेखक तो हैं चाहे वह राष्ट्रभाषा हिंदी के लेखक हों या मगही अथवा अँग्रेजी के। मगर जब से उन्होंने संस्कृत बोर्ड में अध्यक्ष के पद पर योगदान किया उनका ध्यान संस्कृत लेखकों की ओर गया और संस्कृत के कवियों, कथाकारों, निबंधकारों, उपन्यासकारों आदि की कम संख्या पाकर उन्हें निराशा हुई है। वैसे भी इनका कहना है कि तकरीबन 1.25 अरब की आबादीवाले इस देश में संस्कृतभाषी मात्र पचास हजार के आसपास हैं जिसको वे चिंता का विषय मानते हैं। जो कुछ थोड़े-बहुत संस्कृत के लेखक हैं उनके लिखे हुए को पढ़ा जाता है और उस पर चर्चा होती है। पद्मभूषण डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, डॉ. रामकरण शर्मा, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. हरेकृष्ण सत्पति लेखकों को लोग पढ़ते हैं और वे पुरस्कृत भी होते हैं, मगर सिद्धेश्वर जी की यह शिकायत है कि संस्कृत में आजकल लेखक दुर्लभ होते जा रहे हैं। बोर्ड में आने के तीन वर्षो बाद भी इनकी नज़र मात्र चार-पाँच संस्कृत शिक्षकों पर गई जिनके लेखन से रू-ब-रू होने का इन्हें मौका मिला है। संस्कृत महाविद्यालयों, संस्कृत विश्वविद्यालयों, संस्कृत संस्थानों तथा संस्कृत से जुड़े संगठनों के अनेक ऐसे लोगों से इनका संपर्क हुआ है जो संस्कृत लेखन की ओर प्रवृत्त हैं। ऐसे लेखकों में सिद्धेश्वर जी गिनाते हैं श्री अलख नारायण झा, डॉ. उमेश शर्मा, डॉ. सुशीला झा, श्री कमलानंद झा शास्त्री, श्री सुशील झा, आचार्य रामविलास मेहता आदि का नाम। सिद्धेश्वर जी की तकलीफ समझने के लिए आपको कालिदास, वाणभट्ट....आदि को याद करना पड़ेगा। आप चाहे तो डॉ. शिववंश पाण्डेय, डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र, डॉ. अमलेश वर्मा, प्रो. कृष्णानंद पाण्डेय, प्रो. राम गोपाल पाण्डेय, श्री रमाकांत शुक्ल, प्रो. सच्चिदानंद मिश्र, डॉ. राजीव रंजन सिंह, डॉ. रामकरण शर्मा, डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, श्री लक्ष्मीकांत मिश्र, डॉ. परमानंद मिश्र, डॉ. कामेश्वर उपाध्यक्ष के लेखन पर भी नजर डाल सकते हैं जो आज हमारे बीच हैं। ये बड़े नाम हैं, पर नीचे की सीढ़ियों पर भी ऐसे कई संस्कृत के लेखकों को वे जानते हैं जिनसे मिलकर यह एहसास होता है कि आप किसी प्रोपर्टी डिलर, लिपिक या बैंक अधिकारी से मिल रहे हैं। इस कहावत में अभी तक काफी दम रहा है कि प्रत्येक पेशा अपनी तरह का आदमी बनाता है, लेकिन यह दम अब फूल रहा है। ऐसा लगता है कि सभी पेशे एक ही तरह का आदमी बना रहे हैं। किसी व्याख्याता और किसी बीमा एजेंट में फर्क करना कठिन होता जा रहा है। फिर भी यह विश्वास बना हुआ था कि कुछ पेशे तो समय की मार से बचे

रहेंगे। इनमें एक पेशा लेखक का भी था, पर कई अन्य क्षेत्रों की तरह संस्कृत लेखक इस क्षेत्र में बुरी तरह निराश कर रहे हैं। खास तौर से तब, जब वह अपने कोटे को आधी शराब पी चुका हो और वह अकेले न हो। यदि आज का कुछ लेखक इन रूढ़ी छवियों से बचता है, तो अच्छा ही करता है। लेकिन उसे पहनावे में न सही, पर अपने सरोकारों में, अपने मूल्यबोध में, अपनी आकांक्षाओं और उपलब्धियों में, अपने दु:खों और निराशाओं में, अपने दैनिक आचरण में और जहाँ वह काम करता है, वहाँ भी कुछ तो लेखक की तरह पेश आना चाहिए। सिद्धेश्वर जी बताते हैं कि बोर्ड द्वारा संचालित संस्कृत विद्यालयों के संस्कृत शिक्षकों में तो कम, मगर बोर्ड के कार्यालय स्तर पर इक्के-दुक्के ही शराब की आदत से दूर हैं।

सिद्धेश्वर जी की इन सभी चिंताओं से यह साफ जाहिर होता है कि वह इनके आत्मविश्वास और एक सबल संस्कृत बोर्ड के रूप में उसकी पहचान को प्रतिबिंबित करता है। संस्कृत से जुड़े लोगों की आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करता है। यह विकास दिखाता है कि अन्य विकासशील संस्कृत संस्थानों के साथ खड़े होने का आत्मविश्वास रखता है। हो सकता है कि कुछ लोग इसे जल्दबाजी में उठाया गया कदम, कुछ बुनियादी समस्याओं से ध्यान हटाने वाला और कुछ देश में भाषायी तनाव को पुनर्जीवित करने वाला घटनाक्रम मानें, लेकिन वास्तव में यह विश्व के संस्कृत मंच पर बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के आगमन का परिचायक है।

दरअसल, जीवन में प्रिय-अप्रिय दोनों तरह की परिस्थितियाँ आती रहती हैं। सो सिद्धेश्वर जी के जीवन में भी दोनों तरह की परिस्थितियाँ आईं, खासकर संस्कृत बोर्ड में आने के बाद, किंतु इन विषम परिस्थितियों में भी इन्होंने अपने मन को शांत और संतुलित रखा। दुनिया में रहते हुए कोई अप्रिय घटना घटे ही नहीं, प्रतिकूल परिस्थिति आए ही नहीं, ऐसा कभी हो नहीं सकता, परंतु इनसे अप्रभावित रहे, यह संभव है। सच तो यह है कि सिद्धेश्वर जी का अंतर्मन शुद्ध है। इसलिए उनपर इन घटनाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। आपने देखा नहीं बोर्ड के अध्यक्ष पद पर योगदान करने के तुरंत बाद इनके अध्यक्ष पद को लेकर काफी बबेला मचा। यहाँ तक की पटना उच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर कर इन्हें उलझाने का या यों कहा जाए कि इन्हें अध्यक्ष पद से हटाने की पूरजोर कोशिशें हुई, लेकिन अदालत ने उनकी एक न सुनी और इनके अध्यक्ष पद को जायज ठहराते हुए याचिका करने वाले पर हरजाना शुल्क भी लगाया। इसके बावजूद

भी माफियाओं को तसल्ली नहीं हुई औरं पुनः उच्चतम न्यायालय का दरवाजा लोगों ने खटखटाया। इतने पर भी जब लोगों को चैन नहीं आया, तो कुछ शिक्षा माफियाओं ने पुनः पटना उच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर कर बेबुनियाद आरोप इन पर लगाए। दरअसल, जिन शिक्षकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों के हित नहीं सध पा रहे थे या जिन भ्रष्टाचारियों के दाल इनके रहते नहीं गल पा रहे थे वे बेचैन थे और इन्हें स्थिर से रहने देना नहीं चाहते। कहावत भी है-'चोर चोरी से गया, हेराफेरी से नहीं।' वही कहावत चरितार्थ हुई। इतनी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद सिद्धेश्वर जी ने वस्तु-स्थिति का सामना डटकर किया, क्योंकि अंतर्मन को शुद्ध करने का सही उपाय यही है। जितनी देर तक और जितनी शक्ति से काम, क्रोध, मोह, भय, राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि विकारों की प्रतिक्रिया चलती है, अंतर्मन पर उतना ही गहरा प्रभाव पड़ता है। सिद्धेश्वर जी उठे हुए इन विकारों को सचेत होकर तत्क्षण देखने लग जाते हैं तथा आग पर पानी डालते हैं, विकार के कारण चिंतन नहीं करते, क्योंकि उस पर चिंतन करने का अर्थ है आग पर पेट्रोल डालना।

सिद्धेश्वर जी ने 15 सितम्बर, 2008 को बोर्ड के अध्यक्ष का पदभार संभाला था। तकरीबन एक डेढ़ साल तक एक भ्रष्ट अधिकारी ने इनके समक्ष मुश्किलें पैदा कीं और इनके काम में रोड़े अटकाता रहा। जब उससे मुक्ति मिली, तो मुख्यालय की कार्य प्रणाली इन्हें रास नहीं आई और उन्होंने इसे पूरी तरह बदलने के लिए सख्त निर्देश जारी किए। फिर प्रधान महालेखाकार (लेखा परीक्षा), बिहार, पटना के एक लेखा परीक्षा दल (Audit Team)द्वारा वर्ष 2002-2003 की रोकड़पंजी तथा उससे संबंधित कागजात् गायब पाये जाने के बाद जिम्मेवार अधिकारियों व कर्मचारियों पर प्राथमिकी दर्ज कराई और कुछ को निलंबित किया, अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के बल पर बोर्ड में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरूद्ध उन्होंने जन-वेग पैदा किया। कुछ अपवादों को छोड़ दें, तो कहीं किसी स्तर पर बोर्ड के तत्कालीन अध्यक्षों में से किसी ने भी भ्रष्टाचार का विरोध प्रत्यक्ष तौर पर करने का जज्बा पैदा नहीं किया। किंतु सिद्धेश्वर जी ने व्यक्तिगत जीवन में ईमानदारी को स्थान देकर भ्रष्टाचार पर प्रहार किए। प्राणवान व्यक्ति वह होता है, जो अपने वर्तमान को अतीत से बेहतर बना दे और भविष्य को वर्तमान से बेहतर बनाने की प्रक्रिया शुरू कर दे। सिद्धेश्वर जी ने यही किया अपनी यही सोच और दृढ़ संकल्प के बल पर। अध्यक्ष का दायित्व संभालने के

तुरंत बाद ही उन्होंने इस सूत्र को सामने रखकर काम करना प्रारंभ कर दिया। अध्यक्ष के इस कदम का असर बोर्ड के कार्यालय में पड़ा, मगर इसके द्वारा संचालित संस्कृत विद्यालयों की स्थिति में अभी बहुत सुधार की जरूरत है।

अध्यक्ष ने कार्यालय में स्थित प्रशाखाओं में क्रमवार ढंग से कार्यो को समीक्षा की। संचिका रखने के तरीके से लेकर कार्य में तेजी लाने का निर्देश दिया जिसकी वजह से कुछ हद तक कार्य प्रणाली विकसित होते नजर आए।

सिद्धेश्वर जी ने जिस प्रकार चुनौतियों का सामना किया वह उनकी चेतना के नैसर्गिक विवेक की अभिव्यक्ति है। इसे ही नीर-क्षीर विवेक भी कहा गया है। ऐसे ही विवेकसंपन्न व्यक्ति के लिए तत्त्वान्वेषी की संज्ञा दी गई है। विचारपूर्ण गंभीर मर्यादा का जो व्यक्तित्व बिंब मानस प्रत्यक्ष होता है, वहाँ आक्रामकता के लिए कोई स्थान दिखाई नहीं देता। इस दृष्टि से सिद्धेश्वर जी द्वारा की गई पहल प्रशंसनीय है।

सिद्धेश्वर जी संस्कृत शिक्षा बोर्ड के संभवतः पहले अध्यक्ष रहे जिन्होंने बोर्ड और संस्कृत की धड़कनों को अच्छी तरह समझा। यहीं नहीं, उन्होंने बोर्ड के द्वारा संचालित संस्कृत विद्यालयों के माध्यम से संस्कृत के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका अदा की है। दरअसल, इनकी जिंदगी में एक महत्वपूर्ण मोड़ तब आया जब इन्होंने संस्कृत बोर्ड का अध्यक्ष पद संभाला और संस्कृत-उन्नयन का अभियान शुरू किया। इस संदर्भ में इनके समक्ष सबसे बड़ी चुनौती इस अभियान को राष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित करने की थी। इस अभियान के सिलसिले में इन्हें पत्र-पत्रिकाओं से जुड़ें पत्रकारों-संपादकों, संस्कृत महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों से जुड़े संस्कृताचार्यो सहित संस्कृत के विकास में लगे संस्थानों-संगठनों के अधिकारियों से मिलना पड़ा। इन्हें इस बात का गर्व है कि इन सबों से मिलकर इन्होंने अपनी जिम्मेवारी बखूबी निभायी।

संस्कृत बोर्ड के अलग-अलग मिज़ाज के पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों से मिलना और उनसे काम करवाना तथा उनकी जिम्मेवारी को देखना वाकई कठिन कार्य है, लेकिन सिद्धेश्वर जी सोचते हैं कि वे उन लोगों से अलग नहीं हैं। जैसे वे लोग इनसे जुड़े वैसे ही सिद्धेश्वर जी भी उन लोगों से जुड़े रहे। वे प्रत्येक कर्मचारी की समस्याओं से वाकिफ होते हुए उनके निदान निकालते रहे। इन्हें लगा कि वे अपने अधिकारियों व कर्मचारियों की जिंदगी को बेहतर बनाने के लिए कुछ कर सकते हैं, तो अवश्य करें और ऐसा

करने की भरसक कोशिश भी करते रहे। इस संदर्भ में एक कर्मचारी से जुड़ी बड़ी दिलचस्प कहानी को यहाँ प्रस्तुत करने के लोभ का संवरण मैं नहीं कर पा रहा हूँ। इन्हें जैसे ही यह पता चला कि ग्रूप 'घ' के एक कर्मचारी को शराब की लत लग गयी और शराब पीकर दिन भर इधर-उधर घूमता रहता है तथा प्रतिदिन बोर्ड कार्यालय में किसी न किसी काम से आए शिक्षकों एवं शिक्षकेत्तर कर्मचारियों से काम करवाने के एवज में प्रतिदिन तकरीबन पाँच सौ रुपये वसूलकर घर ले जाता है। बस क्या था, सिद्धेश्वर जी ने दूसरे ही दिन उस कर्मचारी का तबादला अपने सचिवालय में करके अध्यक्ष कक्ष के दरवाजे पर उनकी ड्यूटी लगा दी। सिद्धेश्वर जी प्रायः प्रतिदिन कक्ष में प्रवेश करने के पूर्व या छोड़ने के बाद बड़े स्नेह से उस कर्मचारी के कंधे पर हाथ रखते हुए उनसे हाल-समाचार पूछ लिया करते थे। इनके व्यवहार से उस कर्मचारी में इतना बदलाव आया कि आज की तिथि में न केवल उसने शराब पीना छोड़ दिया है, बल्कि दलाली के पेशे से भी वह उबर गया है। सिद्धेश्वर जी बताते हैं कि एक बार उस कर्मचारी ने इनसे कहा कि उसकी पत्नी खुश रहती है, जबकि पाँच सौ रुपए प्रतिदिन की आमदनी से भी उस पत्नी को हाथ धोना पड़ा है। और खुश हो भी क्यों न? जो पति शराबी हो उसकी पत्नी की स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि सभी पत्नियाँ पैसे की भूखी रहती हैं, उसे पति का प्यार और स्नेह भी चाहिए। इसमें उसकी उम्र भी आड़े नहीं आती है। कम पैसे में भी दाम्पत्य जीवन सुखी रह सकता है और रहता है, जैसा कि सिद्धेश्वर जी के साथ रहने वाले कर्मचारी का हुआ। मैं तो कहूँगा की सिद्धेश्वर जी के सुप्रबंधन का ही यह मंत्र है जिसकी वजह से उस कर्मचारी की जिंदगी बदल गई। दरअसल, जैसे आप चाहते हैं कि आपके बॉस आपके प्रति अच्छा व्यवहार करें इसी तरह आपके अधीनस्थ अधिकारी व कर्मचारी भी चाहते हैं कि उनके बॉस भी उनके प्रति अच्छा-शालीन रवैया अपनाएँ। इस माने में सिद्धेश्वर जी के जीवन दर्शन, उनके आचार-व्यवहार से सीख ली जा सकती है। वह अक्सर कहा करते हैं कि किसी समस्या पर चिंता करने से उसका समाधान नहीं होता। सच तो यह है कि समस्या आने पर उसका डटकर मुकाबला किया जाए। घटनाएँ व हालात स्वतः ही किसी समस्या का अपने आप समाधान तलाश लेते हैं।

इसी से जुड़ी एक और कथा भी आप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना समुचित होगा। सिद्धेश्वर जी ने जब अपने एक निजी सहायक का

तबादला कर बोर्ड के ही दूसरे कर्मचारी को अपना निजी सहायक बनाया, तो उसने पदभार ग्रहण करने के दिन से ही किसी भी कीमत पर किसी से रिश्वत नहीं लेने का संकल्प लिया और उनका वह संकल्प सचमुच में इनके कार्यकाल तक बना रहा। आगे क्या होगा कहा नहीं जा सकता, ये सब कुछ उदाहरण हैं जिससे सिद्धेश्वर जी का जीवन-स्पष्ट झलकता है और यही आज लोगों के बीच चर्चा का विषय बना हुआ है।

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व के मद्देनजर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि तकरीबन तेहत्तर बसंत देख चुकने के बावजूद उनमें अभी भी किशोरों को मात कर सकने वाली चपलता है, जो लोगों को अभिभूत कर देती है। बहुत सारे ऐसे लोग हैं, जो जीवन में नई ऊँचाईयाँ पाते हैं, जीवन में नए मुकाम हासिल करते हैं। उँचाई पर पहुँचने के बावजूद सिद्धेश्वर जी का व्यक्तित्व सरल और सहज है जिनकी लोकप्रियता, उनका आचरण और व्यवहार दूसरों के लिए अनुकरणीय है। इतनी कामयाबी के बावजूद वे अहंकारी नहीं दिखते और व्यस्तता के बावजूद उन्होंने आज भी अपने आपको एक आम आदमी की छवि में ढाला है। यही बात उन्हें औरों से एक अलग श्रेणी में ला खड़ा करती है।

सिद्धेश्वर जी केवल निष्ठावान और ईमानदार प्रशासक के रूप में ही अनुकरणीय नहीं हैं, बल्कि एक अच्छे पिता, अच्छे पति, अच्छे मित्र और अच्छे नागरिक की भूमिकाओं में उनका आचरण जैसे किसी आदर्श रोल मॉडल जैसा रहता है। कड़ी मेहनत, ईमानदारी, बड़ों का सम्मान, अनुशासन और लगन नैतिक शिक्षा के तहत आने वाली सफलता के लिए जरूरी मानकों में उभरने वाली ये बातें सबको मालूम होती हैं, लेकिन इस मंत्र को संभवत: सिद्धेश्वर जी ने अक्षरस: अमल किया है। सिद्धेश्वर जी की सबसे बड़ी खासियत है उनकी निष्ठा। अगर उनकी निष्ठा में जरा भी दरार होती, तो कभी भी उन मंजिलों को प्राप्त नहीं कर पाते, जो आज इसके घुटनों से भी नीची रह गई है। इन्हीं गुणों की बदौलत आज वे सबके प्रिय हैं। खुद को कठिनाइयों से बचाते हुए आगे बढ़ने वाले सिद्धेश्वर जी ने इस बात की गांठ बाँध ली है कि आगे बढ़ना है, तो अपनी जिम्मेदारियों को समझना पड़ेगा और ईमानदारी से बढ़ना होगा। वैसे सच बोलने वाले ईमानदार प्रशासक बहुत ही कम हैं, मगर सिद्धेश्वर जी को सच कहना थोड़ा अच्छा लगता है। इसलिए उनकी ईमानदारी पर सवाल खड़ा करने वाले भी कम मिलते हैं। हालांकि बोर्ड द्वारा संचालित संस्कृत विद्यालयों में विसखोपड़ा

दिमागवाले भी कम नहीं हैं, जिन्होंने सिद्धेश्वर जी के विरूद्ध आरोप लगाकर उच्च न्यायालय में जनहित याचिका दायर की, मगर सच्चाई कुछ और बयां कर गई। यानी पुनः विरोधी धाराशायी हुए। कुल मिलाकर देखा जाए, तो सिद्धेश्वर जी एक करिश्माई व्यक्तित्व, कुशल प्रशासक और अपनी एक अलग पहचान बनाने वाले के रूप में उभरे। दरअसल, दूसरों की बैशाखी लेकर चलना इनको कभी भी पसंद नहीं। हाँ सहयोगीयों का सहयोग लेना यह कभी नहीं भूलते। लेखन की महत्ता को वह बखूबी समझते हैं और लेखक के रूप में अपनी सीमाओं से बखूबी परिचित भी हैं। इसलिए वह मानते हैं कि लेखक-साहित्यकार को महज उसका साक्षी बनकर चीजों को लोगों के सामने ईमानदारी से प्रस्तुत करना चाहिए। सिद्धेश्वर जी की यह सहजता भले ही बहुतों के गले न उतरे, पर अपनी ईमानदारी और साफगोई को स्वीकारने में उन्हें कोई हिचक नहीं।

आज समय की भयावहता और बाजारू संस्कृति के बोझ को हर परिवार-समाज के लोग झेल रहे हैं। झूठी शानो-शौकत के पीछे भागते चले जाते हैं। अंततः हमें मिलता क्या है? एक समय ऐसा आता है जब हमारे पास भौतिक सुख-सुविधाओं की बहुत सारी वस्तु होती है, लेकिन भोगने वाला अकेला रह जाता है। ऐसे में सिद्धेश्वर जी के विचार व चिंतन हमें सचेत तो करते ही हैं, बाजार से लड़ने की हमें ताकत भी देते हैं।

बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के अध्यक्ष पद पर विपरीत परिस्थितियों में रहकर जिसने जीवन का रस पीना जाना, हँसना-हँसाना और गुनगुनाना जाना, जो थकते नहीं, डरते नहीं, रूकते नहीं, जो नियति से टक्कर लेते हुए अपने जीवन को रूप-स्वरूप देते हैं, वहीं संभवतः ईश्वरीय कृपा के पात्र भी होते हैं। यही तो हैं सिद्धेश्वर जी। इनके जैसा चरित्र आज के युग में विरल है। खादी का कुर्त्ता-पाजामा, जवाहर कट बंडी, पैर में साधारण चप्पल और इन सबके साथ चेहरे पर विरक्ति का भाव, सरल, निरामिष भोजी इस अत्यंत सात्विक प्रकृति के सिद्धेश्वर जी में प्रबुद्धजनों के प्रति अपार श्रद्धा व सम्मान का भाव सदैव दिखता है। वह अतिथि को देवता तुल्य समझते हैं। इनके घर पर नौकर-दाई नहीं रहने की वजह से अधिक खातिरदारी तो नहीं, पर उनकी धर्मपत्नी श्रीमति बच्ची प्रसाद जी एक प्याली चाय और बिस्कुट अवश्य सामने प्रस्तुत कर प्रसन्नता का अनुभव करती हैं। समय के पाबंद और घड़ी के कांटों की तरह सनियंत्रित और नियम का जरा सा भी व्यतिक्रम इन्हें मंजूर नहीं।

ईमानदारी और नैतिकता में अपार आस्था रखने वाले सिद्धेश्वर जी संभवत: अपनी पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं, पर विडंबना यह है कि व्यावसायिकता और चतुराई की नव-संस्कृति में जकड़े आज के समाज में ये सब मूल्य उतने प्रासंगिक नही रह गए हैं। सिद्धेश्वर जी समकालीन पीढ़ी के ऐसे व्यक्ति हैं जिनके निजी जीवन और लेखकीय व्यक्तित्व के बीच कोई अंतर नहीं दिखता। लेकिन मौजूदा दौर के लेखकों के निजी जीवन और लेखकीय व्यक्तित्व में अंतर ही नहीं, बहुत कुछ विरोधाभास भी दिखाई देता। सरलता और सादगी के प्रतीक सिद्धेश्वर जी आडंबर और पाखंड से कोसों दूर हैं। उनकी कथनी और करनी में कहीं कोई अंतर या विचलन कभी नजर नहीं आता है।

सिद्धेश्वर जी लोकतांत्रिक परंपराओं में विश्वास रखते हैं। वे छोटे-बड़े में कोई भेद नहीं करते हैं। साहित्य और संस्कृति को समर्पित सिद्धेश्वर जी हिंदी और संस्कृत के प्रचार-प्रसार के लिए निरंतर कार्य कर रहे हैं। नेक और ईमानदार व्यक्ति के नाते अधिकांश लेखक और साहित्यकार सिद्धेश्वर जी की बहुत इज्जत करते हैं। आज के युग में एक नेक इंसान होना वाकई एक महत्वपूर्ण बात है।

सक्रिय राजनीति में भले ही सिद्धेश्वर जी कभी नहीं रहे, किंतु राजनीति और राजनेताओं से उनका लगाव सदैव रहा। हमेशा उन्होंने मूल्यों की राजनीति की और अपने अनुभवबहुल दृष्टि से वह राजनीति और समाज दोनों की पारस्परिक अनन्यता का साहित्य-सृजन में पूरा-पूरा उपयोग कर पा रहे हैं। यद्यपि सिद्धेश्वर जी संस्थाएँ बनाने अथवा बहुत सारी संस्थाओं में रहने में विश्वास नहीं करते हैं तथापि अपने समय के सभी सरोकारों से सजग संबंध रखने वाले 'पटेल सेवा संघ' के महासचिव के पद पर रहकर उसे एक अलग पहचान दिलाई और उससे मुक्त होने के बाद देशवासियों में तेजी से लुप्त होती राष्ट्रीयता की भावना के मद्देनजर राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था 'राष्ट्रीय विचार मंच, की न केवल स्थापना कर इन्होंने मुख्य भूमिका निभाई, बल्कि आज भी उसके राष्ट्रीय महासचिव के पद को सुशोभित करते हुए उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' का संपादन बड़ी सफलता के साथ वे कर रहे हैं। जब मैं सिद्धेश्वर जी के जीवन को तटस्थ होकर देखता हूँ तो मुझे कई बातें, जो उनके साथ अपने कई वर्षो के संपर्क के दौरान मैं इस तरह पहचान नहीं पाया था, चकित करती हैं। दूसरों की पीड़ा को व्यक्त करते वक्त कई बार मैंने उनकी आँखों में आँसू देखे हैं। अभी

अभी कुछ माह पूर्व जब मेरी पुत्रवधू तथा बिंहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के सचिव श्री ओम प्रकाश शुक्ल जी के सुपुत्र कैंसर जैसे असाध्य रोग से ग्रस्त हुए, तब सिद्धेश्वर जी का विह्वल-मन और उनकी आँखों में आँसू मैंने देखे, जो दिखाने के लिए नहीं, बल्कि वे उनकी अत्यंत उदामना और संवेदनशील व्यक्ति होने के परिचायक थे। किस तरह बोर्ड के सीमित साधनों में से उन्हें देय आर्थिक सहायता पहुँचाकर उन्होंने अपनी उदारता और सहृदयता का परिचय दिया। यहाँ तक कि गुड़गाँव स्थित अस्पताल में भर्ती उनके सुपुत्र को देखने भी वे चले गए।

संस्कृत बोर्ड के शीर्ष पर रहकर भी सिद्धेश्वर जी किसी के खिलाफ कभी कोई वैमनस्य उत्पन्न होने नहीं दिया, यहाँ तक कि अपने विरोधियों के विरूद्ध भी नहीं। एक बार की घटना जो मैंने सुनी है उसे यहाँ प्रस्तुत करने के लोभ का संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। संस्कृत शिक्षक संघ के एक पदाधिकारी ने जब सिद्धेश्वर जी को धर्मपत्नी के साथ अपने बेटे की शादी के बाद वर-वधू के स्वागत समारोह में सादर आमंत्रित किया, तो वे सहर्ष स्वीकार करते हुए सपत्नीक पहुँचे जहाँ बोर्ड के एक ऐसे अधिकारी भी उपस्थित हुए जिन्होंने इनके हर कदम पर न सिर्फ रोड़े अटकाए, बल्कि काफी मुश्किलें खड़ी की थीं, फिर भी आतिथ्यकर्ता के द्वारा भोजन के लिए आमंत्रित किए जाने पर सिद्धेश्वर जी ने उस अधिकारी का हाथ अपने एक हाथ में रखा और दूसरा उनके कंधे पर रखते हुए भोजन साथ-साथ करने की बात कही। यह सिद्धेश्वर जी की सदाशयता का द्योतक है।

संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष पद पर बैठने की भी एक अलग कहानी है। भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पश्चात् सिद्धेश्वर जी हिंदी साहित्य की सेवा, पत्रकारिता तथा संगठन के कार्य को लेकर जब वर्ष 2000 से दिल्ली में रहने लगे, तो एक बार इन्हें बिहार सरकार के राजभाषा विभाग की ओर से पटना के तारामंडल सभागार में हिंदी दिवस के अवसर पर आयोजित समारोह में अतिथि के रूप में सम्मिलित होने का इन्हें अवसर मिला जिसमें बिहार के मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। समारोह के मंच पर सिद्धेश्वर जी से मुख्यमंत्री की बात तो हुई, पर वहाँ संस्कृत बोर्ड की चर्चा करना शायद उचित नहीं समझकर उन्होंने उसी रात दस बजे दूरभाष पर सिद्धेश्वर जी से उनके बसेरा निवास पर संपर्क करना चाहा, किंतु सिद्धेश्वर जी अपने समयानुसार सोने के लिए बिछावन पर चले गये थे, किंतु सोए नहीं थे।

इनकी श्रीमति जी ने उन्हें सूचित किया कि मुंख्यमंत्री उनसे बात करना चाहते है। फिर सिद्धेश्वर जी से उनकी बात हुई और मुख्यमंत्री जी ने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व संभालने का अनुरोध जब उनसे किया तब सिद्धेश्वर जी ने उनकी बात नहीं मानी। इसी बीच उनकी धर्मपत्नी ने सिद्धेश्वर जी से कहा कि 'जिस मुख्यमंत्री को आप इतने वर्षो से तहेदिल से समर्थन दे रहे हैं और जब उन्होंने आपसे कुछ अपेक्षा की है तो आपको उनकी बात स्वीकार करनी चाहिए'। बस क्या था सिद्धेश्वर जी ने मुख्यमंत्री जी से दूरभाष पर ही कहा कि 'जाइए, नीतीश जी आपका काम हो गया। मैं आपकी बात न मानकर अपनी श्रीमति जी की बात को मानते हुए संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष पद पर जाने की स्वीकृति देता हूँ।' फिर नीतीश जी ने सिद्धेश्वर जी से उनके जीवन-वृत्त की मांग की किन्तु सिद्धेश्वर जी ने दूसरे दिन अपना जीवन-वृत्त भेज देने की बात कही। इसपर नीतीश जी ने कहा कि 'अभी इसी समय आप अपना जीवन-वृत्त भेज दे, ताकि मैं उसे संचिका में संलग्न कर कल ही आपके अध्यक्ष की नियुक्ति की अधिसूचना जारी करवा सकूँ क्योंकि उस नियुक्ति संबंधी संचिका के साथ हमारे समक्ष बिहार के तत्कालीन मुख्य सचिव के साथ-साथ शिक्षा विभाग के प्रधान सचिव और बिहार के तत्कालीन महाधिवक्ता मौजूद हैं।' इसके कुछ ही देर बाद बिहार विधान परिषद के एक सचिव सिद्धेश्वर जी के आवास पर हाथों-हाथ जीवन-वृत्त लेने पहुँच गए। सिद्धेश्वर जी ने अपनी एक पुस्तक के आवरण पृष्ठ के मारजीन पर छपी लेखक-परिचय पर अपना हस्ताक्षर कर उसे उक्त सदस्य को दे दिया और दूसरे ही दिन यानी 15 सितंबर 2008 को बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर उनकी नियुक्ति की अधिसूचना जारी की गई जिसे लेकर बोर्ड के सचिव सिद्धेश्वर जी को बोर्ड कार्यालय ले गए और जहाँ सिद्धेश्वर जी ने अध्यक्ष का पदभार ग्रहण किया।

समय आने पर यदा-कदा राजनीतिक दल के कार्य को लेकर पटना आ जाया करते थे, मगर एक तरह से कहा जाए, तो राजनीति के हिसाब से वे हाशिए पर रहे। प्रभावित करने के लिए उनके पास न पद था, न पैसा और न ही चाटुकारिता का गुण। और सच तो यह है इनकी राजनीति में कोई आकांक्षा भी नहीं थी। पद, पैसा और पुरस्कार के चक्कर में सिद्धेश्वर जी कभी नहीं रहे। लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि राजनीति में जितनी इनकी पकड़ और राजनेताओं तक पहुँच है, ये थोड़ी भी जिज्ञासा प्रकट किए होते, तो बिहार विधानसभा या बिहार विधान परिषद् की कौन पूछे राज्य सभा

या लोकसभा तक भी कबके जा चुके होते। यह उनकी कर्मठता, आदर्शवाद, आत्मविश्वास और समर्पण ही रहा, जिसने उन्हें हताशा और कड़वाहट से दूर रखा और अंततः बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड ज़ैसी भ्रष्टाचार में लगभग पिछले तीन दशक से आकंठ में डूबी संस्था की गरिमा और विश्वसनीयता को कायम करने के लिए इसका अध्यक्ष पद स्वीकार करने पर मजबूर होना पड़ा। साहित्य और पत्रकारिता वे संगठन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता ईश्वर के प्रति भक्ति से कम नहीं है और इस भक्ति को वह जिस एकाग्रता से कर रहे हैं वह अतुलनीय है। दरअसल परम भक्ति में न कोई अपेक्षा होती है, न प्रतिदान।

मैंने सिद्धेश्वर जी को कभी किसी मंदिर जाते हुए न देखा और न ही सुना। पीड़ा और संकट में भी उन्हें ईश्वर को याद करते नहीं सुना। मैं उनके पटना के पुरन्दरपुर स्थित 'बसेरा' निवास में भी जाता हूँ और राजापुर पुल के पास स्थित बोर्ड कार्यालय भी। उनकी किताबों के आसपास मैंने किसी भी भगवान की प्रतिभा या छवि नहीं देखी। हाँ, बोर्ड स्थित इनके अध्यक्ष कक्ष की एक दीवार पर वाग्देवी सरस्वती की एक तस्वीर अवश्य टंगी है। जो बोर्ड के किसी कार्यक्रम में काम आती है। ऐसा भी नहीं कि सिद्धेश्वर जी नास्तिक हैं। इनकी छवि एक खांटी गाँधीवादी की है जो ईश्वर में विश्वास करता है और मानवता, समानता व सद्भाव के, धार्मिक न भी कहें, तो भी परंपरागत आदर्शो से प्रेरित और संचालित मूल्यों से जीवन को निर्धारित करता है, जो परंपरागत जीवन शैली को महत्व देता है और अपने रहन-सहन में मितव्ययी व सरल हैं। उनकी वेशभूषा इस भ्रम को मजबूत करती है। आप सपने में भी अनुमान नहीं लगा सकते हैं कि यह आदमी विचारों में इतना अग्रगामी, इतना उग्र सुधारवादी (Radical) हो सकता है। सच तो यह है कि मौजूदा दौर के तथाकथित साम्यवादी जो अपने धार्मिक संस्कारों और परंपराओं से उबर नहीं पाते और जनता व संस्कृति के नाम पर धार्मिक जड़ता तथा अँधविश्वासों को बनाए और बचाए रखने में उदाहरण बनते हैं से भी कहीं अधिक उदारमना, प्रगतिशील और तार्किक हैं, सिद्धेश्वर जी। जैसा कि मैं कह चुका हूँ कि सिद्धेश्वर जी का विश्वास जबानी जमा-खर्च में नहीं, बल्कि ठोस कर्म में है।

इस तरह का फैसला कोई सामान्य आदमी नहीं कर सकता। उसी से इस बात की उम्मीद की जा सकती है, जिसे अपने वसूलों और आदर्शो में पूरा विश्वास है और जो दोहरी जिंदगी नहीं जीता। सबसे बड़ी बात तो

यह है कि इनकी धर्मपत्नी भी इन्हीं के नक्शे कदम पर चलती हैं। उन्हें भी कहीं किसी ने न मंदिर जाते देखा और नहीं पूजा-अर्चना करते। यहाँ तक कि सिर्फ दिखावा के लिए वह कोई वर्त भी नहीं करतीं, यहाँ तक कि छठ वर्त भी नहीं जिसे बड़ी पवित्रता के साथ विशेषकर बिहार की औरतें मनाती हैं। दरअसल, वह भी अपने पति की तरह कर्म पर विश्वास करती हैं और अपना काम खुद करती हैं।

बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड को सुधारने की ललक ने सिद्धेश्वर जी के लिए रास्ते बनते गए। बुलंद हौसले से बाधाओं का सीना चीर अपनी तकदीर खुद लिखने वाले सिद्धेश्वर जी ने एक बार फिर साबित किया कि आत्मविश्वास व मेहनत के बल पर सफलता की मंजिलें तय की जा सकती हैं।

सिद्धेश्वर जी बोर्ड के अधिकारियों व कर्मचारियों के बीच लोभ का संवरण करने की बात बराबर कहा करते हैं। इस संदर्भ में वह गाँधी जी का एक कथन प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि गाँधी जी का मानना था कि मानव मन उस चिड़िया की तरह होता है, जिसे जितना दाना मिलता है वह उससे ज्यादा चुगना चाहती है। इसी तरह हमारे लोग इच्छाओं के भंवर में जितना ही फंसते जाते हैं, उनकी चाहत उतनी ही बढ़ती जाती है। एक बार बोर्ड के एक बीमार कर्मचारी को जब उनके निवास पर उन्हें देखने और हाल-चाल लेने गए, तो सिद्धेश्वर जी ने उन्हें समझाते हुए कहा कि वह अबतक जितनी संपत्ति अर्जित कर चुके हैं वह कम नहीं है उसी का उपभोग वे उनके कार्यकाल तक करें तो उनकी सारी बीमारी भाग जाएगी और वे चंगा हो जाएँगे। उनकी सारी बीमारी की जड़ है उनका लोभ और अधिक से अधिक धन-संपत्ति अर्जित करने की लालसा। यह बात उन्हें तब समझ में आई जब उनपर गबन के मामले में प्राथमिकी दर्ज की गई और उन्हें निलंबित किया गया।

सिद्धेश्वर जी पुनः कहते हैं कि हमारे पूर्वज मानव मन की इस दशा को समझते थे, इसलिए हमारे ग्रंथों में हमेशा से ही इच्छाओं पर नियंत्रण और सीमित सुख-सुविधाओं की बात की गई है। आधुनिक सभ्यता हमारे मन में एक ऐसी मनोवैज्ञानिक ग्रंथि पैदा कर देती है जो हमें विनाश की ओर ले जाती है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि यह ग्रंथि हमारे निर्णय लेने की क्षमता और चीजों की समझ के प्रति हमारी मानसिक योग्यता को कमजोर कर देती है। आज समाज जितना ही धनी होता जा रहा है नैतिकता वैसे ही विलिप्त होती जा रही है। आज हम इस बात पर गर्व करते हैं कि हमारे बीच में कोई

ऐसा है जो विश्व का सबसे ऊँचा महंगा आवास बना रहा है। पहले लोग शारिरिक श्रम कराने के लिए गुलाम रखते थे, लेकिन आज हम पैसे और विलासिता के गुलाम हो गए हैं। समय बीतने के साथ ही हमारी उपभोक्तावादी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, किंतु ऐसे वक्त में भी सिद्धेश्वर जी की संयम प्रवृत्ति हमें शिक्षा दे रही है। अपनी सेवावधि में तो अपने घर पर नौकर या दाई नहीं ही रखते थे, आज जब वे बोर्ड के अध्यक्ष पद पर आसीन हैं तब भी इनके यहाँ नौकर-दाई नहीं है और घर के सारे काम दोनों पति-पत्नी करते हैं। सच तो यह है कि स्वयं सिद्धेश्वर जी तो लिखने-पढ़ने में ही लगे रहते हैं। ले-देकर उनकी धर्मपत्नी ही घर के सारे कार्यो का निपटारा करती हैं। सिद्धेश्वर और उनकी पत्नी की मितव्ययिंता में छिपे संदेश को आज के लोगों को समझने की आवश्यकता है। इन दोनों के भीतर धनलिप्सा और प्रदर्शन की प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं दिखती है और इनका जीवन सार्वजनिक है। आत्मनियंत्रण ही इनकी सबसे बड़ी तपस्या है और अपने मन को नियंत्रित कर लेना ही सबसे बड़ी विशेषता। मगर आज हम ऐसे समाज की ओर बढ़ रहे हैं, जहाँ हमारी इच्छाएँ बढ़ रही हैं। ऐसे वक्त सिद्धेश्वर जी के सिद्धांत में ही इसका हल है। आखिर तभी तो उनके घर आज तक कोई नौकर-दाई नहीं है। हालांकि बोर्ड के अध्यक्ष पद पर सिद्धेश्वर जी की नियुक्ति की अधिसूचना जारी होने पर जब शिक्षा विभाग के वरिष्ठ अधिकारी ने उन्हें इस आशय की सूचना दी तो सिद्धेश्वर जी ने उन्हें दूरभाष पर कहा कि क्या मुझे मोमबत्ती के साथ आपके सचिवालय में जाकर लोगों से मिलते हुए फिर संस्कृत बोर्ड के कार्यालय को उसी मोमबत्ती की रोशनी में मैं खोजता फिरू? जैसा कि मुझे मालूम हुआ कि उक्त वरिष्ठ पदाधिकारी से जब सिद्धेश्वर जी से दूरभाष पर बात कर रहे थे तो उनकी बातों को महालेखाकार कार्यालय के एक अधिकारी ने जो शिक्षा मंत्री के सहायक आप्त सचिव के रूप में प्रतिनियुक्त थे, सुन रहे थे और उसके बाद उस वरिष्ठ पदाधिकारी को कहा आप सिद्धेश्वर जी को जानते हैं या नहीं। वे किसी भी कीमत में अपना नियुक्ति-पत्र सचिवालय आकर नहीं ले जाएँगे क्योंकि यह उनकी फितरत में नहीं है। इसलिए आप कृपया संस्कृत बोर्ड के सचिव को इस आशय की सूचना दे दें। इसके बाद बोर्ड के तत्कालीन सचिव पुरन्दरपुर स्थित सिद्धेश्वर जी के 'बसेरा' निवास जा पहुँचे। ठीक उसी समय सचिव ने सिद्धेश्वर जी की धर्मपत्नी को घर की सफाई करते हुए देखा और उनसे कहा कि मैडम कल ही बोर्ड के दो कर्मचारी और एक दाई को इस घर की साफ-सफाई

के लिए भेज देते हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उनकी धर्मपत्नी ने उस सचिव से पूछा कि जब आप दो कर्मचारी और एक दाई को मेरे घर की साफ-सफाई के लिए भेज देंगे तो मैं क्या करूँगी? और पुन: उन्होंने कहा कि बोर्ड के उन कर्मचारियों को मेरे घर पर काम करने के लिए उनका वेतन आप बोर्ड से देंगे यह मुझे कतई मंजूर नहीं। और वैसे भी मुझे अपना काम खुद करना अच्छा लगता है। उनकी धर्मपत्नी की यह बात सुनकर सचिव महोदय बहुत लज्जित हुए। और आजतक उनके घर पर कोई नौकर-दाई से काम नहीं लिया जाता है। घर का सारा काम उनकी धर्मपत्नी करती हैं।

ईमानदारी वह पारस पत्थर है, जिससे स्पर्श करने वाला प्रत्येक लोहा सोना बन जाता है। सिद्धेश्वर जी के बोर्ड के अध्यक्ष बनने के बाद बोर्ड के कई कर्मचारी इनके स्पर्श से सोना बन गए। दरअसल चरित्र इनकी सबसे बड़ी शक्ति है। तपे हुए सोने की भाँति चरित्रवान व्यक्ति ईमानदारी की वजह से बनते हैं। यही कारण है कि वे न कभी सत्य मार्ग से डगमगाए और न उन्होंने सिद्धांतों से समझौता किया। अपने जीवन में इन्होंने कुछ भी छिपाने की जो आवश्यकता नहीं समझी उसका भी कारण है वही ईमानदारी और सदाचार का जीवन। धोखे का नकली सिक्का जीवन विद्रूप बनाता है। आरंभ में ईमानदारी में दु:ख मिलने के कारण वैसे लोगों के प्रति इने-गिने आकर्षित होते हैं। सिद्धेश्वर जी के साथ भी यही हुआ। मगर ईमानदारी चंदन की सुवास देती है। इसी सुवास की वजह से लोग इनके प्रति आकर्षित हो जाते हैं। सिद्धेश्वर जी केवल अपनी ईमानदारी पर ही नाज नहीं करते, बल्कि वह यह भी देखते हैं कि वे अपने कर्त्तव्य-पथ पर चलकर अपनी जिम्मेदारी के प्रति कितने ईमानदार हैं।

(५)संस्कृत बोर्ड में बदलाव की बड़ी इबांरत लिखी

बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के अध्यक्ष के रूप में सिद्धेश्वर जी एक ऐसे निडर प्रशासक के रूप में उभरे जो बिना किसी के दबाव में आए अपने निर्णयों पर अडिग रहे। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड एक्ट ने संस्कृत के उन्नयन के लिए संस्कृत बोर्ड को पहरेदारी की जो जिम्मेदारी सौंपी है, सिद्धेश्वर जी ने सचमुच उसे कर दिखाया। संस्कृत शिक्षा माफिया तथा भ्रष्टाचारियों की तमाम आरोंपो के बावजूद सिद्धेश्वर जी अपने फैसले पर अडिग रहे। इस अडिगता के चलते शिक्षा माफियों की दुकानदारी बंद हो गई। उनके कारनामों पर उँगली उठाने वालों को करारा तार्किक जवाब देते हुए उन्होंने साबित कर दिया कि उनकी विश्वसनीयता और ईमानदारी पर सवाल नहीं खड़े किए जा सकेंगे। प्रशासक के रूप में भी उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर बोर्ड एक बार फिर इनके व्यक्तित्व में सकारात्मक सक्रियता दिखी। उन्होंने बोर्ड के स्वायत्तता की ताकत का एहसास कराया। मध्यमा परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्याँकन तथा परीक्षाफल के प्रकाशन से लेकर संस्कृत बोर्ड के कार्यकलापों तक दखल देने वाले अधिकारियों, नेताओं और एजेंसियों को ईमानदारी से काम करने के लिए उन्होंने बाध्य किया और काम करने के क्रम में प्रक्रिया में एक नए अनुभव का भी एहसास कराया। तीन सालों में बोर्ड नीतियाँ तय करने की भूमिका में आ गया। सब के साथ न्याय करने में गर्मी इतनी अधिक थी कि सियासत झुलसने लगी। उम्मीद कीजिए कि यह गर्मी आगे भी कम न हो।

इसे आप अच्छा कहें या बुरा सिद्धेश्वर जी 14 सितंबर 2011 के तुरंत बाद तीन साल का कार्यकाल पूरा होने पर स्वेच्छा से अपने अध्यक्ष के दायित्व से मुक्त करने का अनुरोध लिखित रूप में मुख्यमंत्री से कर डाला, तभी तो उनके कदम पटना से निकल कर देश के दूसरे शहरों की तरफ बढ़ चली है। इस प्रकार महज तीन सालों में बिना किसी खोट या विवाद के जिस तरह संस्कृत शिक्षा बोर्ड का संचालन उन्होंने किया, उससे सरकार और संस्कृत जगत को बता दिया है कि हम ठान लें, तो कुछ भी कर सकते हैं। देश के दूसरे राज्यों में स्थित संस्कृत बोर्ड के लोग भी इनकी ओर उम्मीद भरी नजरों से देखना और उनकी राह पर चलना शुरू कर दिया।

कहा जाता है कि नेतृत्व की असल पहचान मुश्किल हालात में होती है। ऐसे समय में जब संस्कृत बोर्ड एक स्पष्ट जड़ता की स्थिति में था, भ्रष्टाचार की खबरें पुरबा हवाओं की तरह लगातार पिछले तीस वर्षो से

बहती हुई जनता तक पहुँच रही थी, तब बोर्ड के दृश्य को देखते हुए सिद्धेश्वर जी ने कदम उठाया था। जाहिर है आम आदमी की अपेक्षा थी कि इस वक्त संस्कृत बोर्ड भ्रष्टाचार और वित्तीय अनियमितताओं की चुनौतियों का सामना करने के लिए जी-जान से जुट जाए और बोर्ड के अध्यक्ष का कक्ष संस्कृत के प्रति प्रतिबद्ध लोगों से भरा रहे। सिद्धेश्वर जी के कार्यकाल में यही हुआ कि संस्कृत शिक्षा में सुधार के साथ वित्तीय अनियमितताओं पर अंकुश लगाया गया।

सिद्धेश्वर जी बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व संभालते ही न सिर्फ अतीत की ओर झाँकने का काम किया, बल्कि इसके परिप्रेक्ष्य में संस्कृत शिक्षा के बेहतर भविष्य की राह ढूँढ़ने का प्रयास किया। उन्होंने संस्कृत से जुड़े अलग-अलग तबकों के बीच यह सवाल ले जाने का फैसला किया और इसके लिए बिहार के प्रत्येक क्षेत्र में खासतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में संस्कृत सम्मेलन का आयोजन कर नामी-गिरामी संस्कृताचार्यों एवं संस्कृत शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के साथ संस्कृत से जुड़े सवालों पर घंटों तक मंथन किया। संगोष्ठी एवं सम्मेलन में विद्वत्जनों ने बिहार में संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में आए सकारात्मक बदलाव की चर्चा की, तो साथ ही संस्कृत विद्यालयों की आधारभूत संरचना को दुरूस्त करने के लिए कई उपाय भी सुझाए। उन्होंने माना कि संस्कृत शिक्षकों व विद्यार्थियों के बीच वर्षो से फैली जड़ता और लोगों की मानसिकता में बदलाव संस्कृत शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन लाने के लिए बड़ी चुनौती है, फिर भी उन्होंने कभी हार नहीं मानी और उनके बीच लगातार संवाद स्थापित कर उन्हें आधारभूत संरचना तैयार करने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया।

सिद्धेश्वर जी ने यह महसूस किया कि संस्कृत शिक्षा और बदलते समय के लिहाज से आधारभूत संरचना तैयार करने के लिए अलग-अलग और उसमें पुस्तकालय, चापाकल, शौचालय आदि के निर्माण युद्ध स्तर पर होने लगे, क्योंकि संस्कृत के शिक्षकों का यह मानना था कि बिना आधारभूत संरचना के विद्यालयों की प्रस्वीकृति अध्यक्ष के द्वारा कदापि नहीं दी जा सकेगी। इस प्रकार संस्कृत शिक्षकों को सिद्धेश्वर जी से अपेक्षाएँ काफी बढ़ गईं। वैसे भी अध्यक्ष के पद पर रहकर वे कभी नौकरशाह के रूप में नहीं, वरन् सेवक के रूप में रहे। यही कारण है कि अध्यक्ष पद से हटने के बाद भी बिहार की जनता खासतौर पर सद्चित्तवाले संस्कृत शिक्षक इनके खिलाफ एक शब्द भी सूनना पसंद नहीं कर पा रहे हैं। दूसरी बात यह है कि चाहे संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहे हों या उसके बाहर अहंकार

अथवा पद घंमंडरूपी जालों में सिद्धेश्वर जी कभी भी नहीं फँसते हैं। उनकी दृष्टि केवल यही रही है कि इन विकारों से वे सदैव मुक्त रहें।

संस्कृत बोर्ड की सारी परिस्थितियों का सामना करते हुए सिद्धेश्वर जी अपने तीन साल के कार्यकाल में साबित कर दिया कि वे प्रशासनिक क्षमता भी रखतें हैं। एक लंबे अंतराल के बाद संस्कृत बोर्ड में किसी अध्यक्ष की कामयाबी का सेहरा किसी गैर संस्कृताचार्य के सिर बाँधा गया। इस मुकाम तक पहुँचने के लिए सिद्धेश्वर जी को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। मध्यमा परीक्षा तथा उसकी उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्याँकन के दौरान उन्हें काफी मशक्कत करना पड़ा। आखिरकार उन्होंने सारी बाधाओं को झेलते और उसे दूर करते हुए बहुत कम समय में ही परीक्षाफल का प्रकाशन किया और वह भी बोर्ड के अपने वेबसाइट पर। दरअसल, बेहद सजग होकर सिद्धेश्वर जी ने पुरानी गलतियों को सुधारने में वे जुट गए। शायद यही गुण उन्हें भीड़ से अलग बनाते हैं। आखिर तभी तो बोर्ड से निकलने के साथ हर किसी की जुबां पर इन दिनों सिर्फ सिद्धेश्वर जी का नाम है। बोर्ड में इनकी शानदार कामयाबी के बाद जब सिद्धेश्वर जी ने यह कहा कि उन्हें अब इससे अधिक शोहरत की जरूरत नहीं, तो कई लोगों ने इसे उनका बड़बोलापन और घमंड माना, लेकिन सच तो यह है कि उनका आत्मविश्वास बोल रहा था, जो विभिन्नताओं से भी भूमिकाओं को बखूबी निभाकर उन्होंने हासिल किया था। आखिर तभी तो आज संस्कृत जगत ही नहीं उसके बाहर के लोग भी उनकी शिक्षकों के बीच संवाद अदायगी, निडर अंदाज और संज़ीदगी से निभाए गए अध्यक्ष का दायित्व की चर्चा कर रहे हैं।

नि:संदेह सिद्धेश्वर जी ने संस्कृत शिक्षा में छाई निराशा को उम्मीदों में कुछ इस तरह तब्दील कर दिया कि संस्कृत शिक्षकों के जनमानस को उनमें एक ऐसे नेतृत्व की छवि दिखाई दी, जिसके द्वारा खींची गई लकीरों पर चलकर संस्कृत शिक्षा में बदलाव की इबारत लिखी जा सकती है। सिद्धेश्वर जी इस कामयाबी को देखकर मुझे किसी कवि की निम्न पंक्तियाँ याद आ रही हैं जो उसने संपूर्ण क्रांति आंदोलन के प्रणेता लोकनायक जयप्रकाश नारायण के लिए 1977 में लिखी थीं–

'एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या यूँ कहो,
इस अंधेरी कोठरी में एक रोशनदान है....।

ठीक उसी तरह बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड की अँधेरी कोठरी में रोशनदान बनकर 73वर्ष के एक बुजुर्ग ने युवाओं सरीखा, उत्साह लिए

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली से बिहार की राजधानी पटना पहुँचकर संस्कृत बोर्ड में भ्रष्टाचार के खिलाफ अलख जगाया और बोर्ड के बदरंग चेहरे से नकाब हटाया। संस्कृत शिक्षा के मंदिर-संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व जब सिद्धेश्वर जी ने संभाला था, तब लोगों का भरोसा नहीं था कि बात निकलेगी, तो दूर तलक जाएगी। बोर्ड भ्रष्टाचार के धुँध से पूरी तरह घिरा था, नित नए घोटाले उजागर हो रहे थे, ऐसे माहौल को ठीक करना साहस का काम था।

बोर्ड के अध्यक्ष पद पर इनके तीन साल के कार्यकाल के दौरान मैंने देखा कि समय-समय पर जो भी सफलता इन्हें मिलती चली गई उसे देखकर इन्हें हर्ष और संतोष भी मितला गया और दूसरी बात यह कि बड़ी-बड़ी सफलताओं या सपनों के सुनहरे महल सिद्धेश्वर जी नहीं बनाते हैं, क्योंकि वह जानते हैं कि ऐसा करने से मंजिल कठिन हो जाती है। कारण कि जो मनोयोग कार्य की गतिविधि को सुसंचालित रखने में लगाना चाहिए था वह शेखचिल्ली के सपने देखने में उलझा रहता है। फलत: बेचैनी की वजह से उसकी गतिविधि अधूरी, अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित हो जाती है। इनका मानना है कि उतावलेपन सफलता के अवसरों को हाथ से गंवा बैठता है।

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में मैं एक और विशेषता यह देखता हूँ कि उनमें दिखावे की प्रवृत्ति नहीं है। घर अथवा बाहर का कोई भी काम़ करने में इन्हें बेइज्जती महसूस नहीं होती है। उनकी नजर में दिखावा पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति का एक हिस्सा है। अच्छा खाना, अच्छा पहनना और अच्छे से रहना कोई बुरी बात नहीं है। पर जब ये सब अपनी सीमा से बाहर आकर दिखावे में बदल जाते हैं, तो भटकाव का रूप ले लेते हैं। इसलिए जहाँ कहीं इन्हें उद्‌गार व्यक्त करने का अवसर मिलता है, तो दिखावे वाली मानसिकता को जड़ से समाप्त करने की बात करते हैं।

इसी प्रकार समाज में फैले जातिवाद के प्रसंग में सिद्धेश्वर जी का स्पष्टमत है कि जातिवाद को नेताओं ने जातिवादी प्रदूषण फैलाकर उसे विषैला बना दिया है और उसका सियासी दुरुपयोग करते-करते उसे विघटनवाद की कगार तक पहुँचा दिया है। चुनावी राजनीति में जनता और आम आदमी का विघटन हो गया है। उसकी जगह जातियों का गणित हावी हो गया है। इन्हें आशंका है कि यदि हमारे रहनुमा बंद आँखों से यही जातिवादी राजनीति करते रहे, तो कहीं भविष्य में सांप्रदायिक राजनीति का रास्ता ही न साफ हो जाए। इसलिए उनका सुझाव है कि वक्त रहते आम जनमानस राजनीति के इस रूप पर विचार मंथन करे, क्योंकि संस्कृत बोर्ड

भी इसी जातिवादी राजनीति का शिकार हुआ।

सिद्धेश्वर जी ने अपने कार्यकाल के दौरान साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैचारिक पत्रिका 'वाग्वन्दना' का प्रकाशन कर अक्षर समाज में क्रांति पैदा की। इस प्रकार जीवन, समाज और संस्कृत और परिवेश के हश्र को संवेदनात्मक तकाजों के हाथ उन्होंने पाठकों को सामने लाने का प्रयास किया है। उनकी सर्जनात्मक समझ का ताना-बाना भारतीय संस्कृति के अनुभवों से तैयार होता है। बहरहाल, ऐसे दौर में जब संस्कृति, भाषा और उसका साहित्य एवं शिक्षा अपने विकास और प्रसार को लेकर चिंतित है, यह एक अच्छा संकेत है कि इच्छा और इच्छाशक्ति होने पर संस्कृत भाषा और संस्कृत समाज का मटमैलापन को दूर किया जा सकता है, क्योंकि उसकी पहचान ही नहीं विलक्षणता भी है। लिहाजा, बाजार में दौर में रचनात्मक दबावों को भारत की आँचलिकता से आँख फेरने की बजाय उसे समझने की कोशिश करनी चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय दर्शन सिरे से गायब होते जाने के कगार पर है, और पिछले कई सालों से मौलिक संस्कृत लेखन की गिनती इकहरी हुई है। सिद्धेश्वर जी जैसे प्रतिभा-संपन्न प्रशासक एवं संस्कृत के प्रति समर्पित साहित्यकार से मार्गदर्शन पाकर यदि चहल-पहल बढ़ती है, तो संस्कृत समाज और अधिक किलकित-तिलकित महसूस करेगा।

संस्कृत प्राथमिक स्कूलों से लेकर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के ढाँचागत व्यवस्था को दुरुस्त करते देखे गए सिद्धेश्वर जी ने संस्कृत बोर्ड में रहकर उसके अध्यक्ष पद की गरिमा को शानदार तरीके से निभाया है। भ्रष्टाचार जब बोर्ड में हद से ज्यादा बढ़ गया, तो लोगों में असंतोष बढ़ने लगा और ऐसे समय में सिद्धेश्वर जी के अध्यक्ष पद पर आसीन होने से उसकी महत्ता बढ़ गई, क्योंकि बड़ी निष्ठा और ईमानदारी से उन्होंने अपने दायित्व का निर्वहण किया और विषम परिस्थितियों से जूझकर सफलता के दर पर दस्तक दिया जो उनके अटल इरादों को दर्शाता है। यकीनन यही कामना रहेगी कि इनकी प्रेरणा लोगों को सदैव सन्मार्ग की ओर अग्रसर रखे और इनके विचार भावी पीढ़ी में संस्कृत, समाज सेवा, चरित्र निर्माण देशभक्त, शिक्षा, व्यक्तित्व और नेतृत्व इत्यादि के विषय में दिशा-निर्देश देते रहें।

संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहकर सिद्धेश्वर जी ने खुद को केवल बोर्ड के कार्यों तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि सामाजिक सरोकारों को भी बखूबी निभाया है। अपनी निष्ठा के बल पर लोगों के बीच बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड की एक नई तस्वीर पेश करने में अहम भूमिका निभाने

वाले सिद्धेश्वर जी 14 सितम्बर, 2011 तक उसके अध्यक्ष पद पर बने रहे। उनके नेतृत्व में निश्चित रूप से बोर्ड ने अपने इतिहास में नई इबारत लिखी। उनके रहते बोर्ड की खबर अखबारों की सुर्खियाँ बनीं। संस्कृत शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए सिद्धेश्वर जी एक मोहक प्रशासक के रूप में उभरे। बोर्ड की बागडोर जब उन्होंने संभाली, तो उस वक्त बोर्ड के लोग एवं शिक्षक कई खेमों में बँटे हुए थें। सिद्धेश्वर जी के बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व संभालने के बाद तीन सालों में शिक्षकों के बीच खेमाबंदी करीब-करीब बंद हो गई थी। सिद्धेश्वर जी उन खेमों को एक टोली में तब्दील कर सहयोग प्राप्त किया जिसके परिणामस्वरूप बोर्ड ने एक नया भरोसा पैदा किया। फिर उनकी पहचान बोर्ड के सर्वश्रेष्ठ अध्यक्ष के तौर पर दर्ज हो गई। सिद्धेश्वर जी हमेशा इस बात के हिमायती हैं कि सामूहिक टोली की जो ताकत है उसे उसी हिसाब से इस्तेमाल किया जाना चाहिए। उन्होंने बोर्ड में अपनी सफलताएँ इसी टीम की ताकत पर हासिल की।

सिद्धेश्वर जी के कार्यकाल में संस्कृत बोर्ड की स्थिति बदल गई। मध्यमा परीक्षा के संचालन और उसकी उत्तरपुस्तिकाओं के मूल्याँकन, परीक्षाफल प्रकाशन तथा प्रस्तावित संस्कृत विद्यालयों की प्रस्वीकृति की अनुशंसा ने मानसिक रूप से उन्हें एहसास दिलाया कि वे भी बदलाव ला सकते हैं। संस्कृत बोर्ड में उनके द्वारा किए गए कार्य और कई स्तर पर किए गए प्रयोग उनके जीवन के इस अनछुए पहलू को प्रकट करते हैं, जिसके बारे में पहले से बहुत कम लोगों की जानकारी थी। उनके बुद्धिकौशल ने अपनी योग्यता और साहस के बल पर बोर्ड के कार्यो का निबटारा किया। अपने अथक संघर्ष से जिस बोर्ड को उन्होंने संवारने का प्रयास किया उसमें उन्हें संस्कृत के अनेक ख्यातिप्राप्त विद्वानों का भी सहयोग मिला, यह उनके संस्कृत शिक्षा के प्रति प्रेम का परिचायक माना जाएगा।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सिद्धेश्वर जी चौकसी और सतर्कता से प्रमाण पत्र, शिक्षकों की नियुक्ति के अनुमोदन तथा प्रस्तावित विद्यालयों की प्रस्वीकृति को लेकर वर्षो से कार्यरत विचौलिए और दलालों से भी बहुत हदतक मुक्ति मिली। इस कामों में अगर इतनी सफलता मिली, तो उसकी सबसे बड़ी वजह थी उनके काम करने की शैली और बोर्ड के सहायकों एवं अधिकारियों के साथ उनका दोस्ताना व्यवहार, अपनी दृढ़ता , लगन और कभी हिम्मत न हारने वाले जज्बे के कारण ही उन्होंने यह कर दिखाया।

(६) सिद्धेश्वर जी का सृजन-कर्म

मनुष्य के पास पद-प्रतिष्ठा हो, वैभव और यश हो, पर उसका अपकार चाहने वाले न हों, संभव नहीं। मनुष्य के पास सुर्य और चन्द्रमा जैसी क्रांति और लोकप्रियता हो, पर राहु-केतु का खतरा नहीं यह असंभव। सामान्य मनुष्यों के जीवन के अहर्निश लेने वाले ग्रहण चर्चित नहीं होते। महिमामय लोगों की तो छोटी-छोटी व्याधि तक प्रथम पृष्ठ पर चर्चित हो जाती है। संस्कृत शिक्षा बोर्ड के तत्कालीन अध्यक्ष सिद्धेश्वर भी एक ऐसे ही व्यक्ति हैं, जिनके पद-प्रतिष्ठा और यश से ईर्ष्या करने वालों की कमी नहीं। खासकर वैसे लोग जिनका हित इनके आने से सध नहीं रहा हो वैसे लोगों का इनसे खफा रहना स्वाभाविक है। फिर काज़ल की कोठरी में जाने के बावजूद अभी तक सिद्धेश्वर जी बचते आए। जबकि सच तो यह है कि सयाना भी काज़ल की कोठरी में जाए, तो एक रेखा काज़ल की अंजवाकर ही आता है। शरीर में दूषित रक्त की जितनी शिराएँ हैं उतनी ही शुद्ध रक्त की धमनियाँ भी। जीवन की परितः वलयाकार घूमती हुई जितनी अनाहत विपदाएँ हैं, उतनी ही मंगल शुभ की संभावनाएँ भी।

जहाँ तक सिद्धेश्वर जी के लेखन का संबंध है वे अपने घर-परिवार, पास-पड़ोस और समाज के पात्रों को और उनके इर्द-गिर्द से लेकर देश-काल तक के परिवेश को उठाते वक्त की पारिवारिक और सामाजिक दास्तानों एवं आत्मीय अनुभवों को रेखांकित करते हैं और विषमताओं, विडंबनाओं व विद्रूपदाओं को उघाड़ते हुए उन पर चुटीले व मारक व्यंग्य करते हैं। बूढ़े बाप-माँ को आज की संतानें किस तरह बोझ मानती हैं इस पर इनकी कई रचनाएँ धारावाहिक रूप में दिल्ली से प्रकाशित पत्रिका 'विचार दृष्टि' में प्रकाशित हुई हैं। इन रचनाओं में जहाँ एक ओर नैतिक उधेड़-बुन है, तो वहीं दूसरी ओर रिश्तों में पड़ती दरारों पर जबरदस्त व्यंग्य भी है जिनकी वजह से साझा परिवार बिखर रहे हैं। इनकी रचनाएँ सिर्फ तत्कालिक बनकर नहीं रहतीं, बल्कि उनकी व्याप्ति दूर व देर तक बनी रहने वाली हैं, क्योंकि वे युग परिवेश का भी यथार्थ खींचते हैं।

इसी प्रकार देश के नेताओं पर सत्ता व शक्ति का नशा किस प्रकार चढ़ा है और युवा पीढ़ी किस भाँति प्रभुवर्ग के भ्रष्टाचार का शिकार हो रही है, इसे भी उनकी रचनाओं में लक्ष्य किया जा सकता है। राजनेताओं को या यों कहें कि विपक्ष के राजनेताओं को सत्ता पर बैठे हुक्मरान की हर बात में खिलाफ राजनीति नजर आती है। कोई राजनीति घोटाला करता हुआ या नोट

लेतां हुआ स्टिंग ऑपरेशन के दौरान पकड़ा जाए, तो बिफर पड़ता है- 'ये विपक्ष की मेरे खिलाफ राजनीति है।' किसानों की आत्महत्या भी उन्हें अपने खिलाफ की जा रही राजनीति प्रतीत होती है। सिद्धेश्वर जी का जीवन एक नदी की तरह जिसे दिशा और धरा मिलती है प्रबुधजनों से, विद्वत्जन इनके लिए बहुत अहमियत रखते हैं। उनके साथ बिताया हर लम्हा सिद्धेश्वर जी के लिए खास रहता है। सिद्धेश्वर जी अपनी संतान को जिंदगी जीने की सोच देते हैं, एक अच्छा इंसान बनने की सलाह देते हैं जो जिंदगी की मुश्किलों, परेशानियों में अडिग रहे और हर बाधा से परे जीवन अपनी शर्तो पर जिए। इस प्रकार ये अपनी संतान को तराशते भी हैं।

कभी मुक्ति बोध ने लिखा था- 'मुझे भ्रम होता है। प्रत्येक पत्थर में चमकता हीरा है। हरेक छाती में आत्मा अधीरा है। हरेक वाणी में महाकाव्य की पीड़ा है। लेकिन इसमें कोई भ्रम नहीं है कि हर पत्थर में एक खूबसूरत मूर्ति छिपी हुई है। हर रंग और कागज में एक लुभावना चित्र छिपा हुआ है। हर की छाती और वाणी में वाल्मीकि जैसा कवि बसा हुआ है। शर्त वही है कि पत्थर की मूर्ति में बदल डाले ऐसा मूर्तिकार उसे मिल जाए। सिद्धेश्वर जी अपनी संतान के लिए ऐसे ही मूर्तिकार हैं जिन्होंने पत्थर रूपी अपनी संतान को मूर्ति में बदलने का प्रयास किया।

सिद्धेश्वर जी अपनी संतान को अच्छी नसीहत देते हैं, अच्छी राह पर चलने की सलाह देते हैं, ताकि अपने भीतर के 'सर्वोत्तम' को बाहर लाने के लिए सचेष्ट हो। ऐसे में मुझे याद आती हैं कवि की निम्न पंक्तियाँ जो इन पर सटिक बैठती हैं-

'कोई भी पत्थर हीरे में बदल सकता है,
शर्त ये है करीने से तराशा जाए।'

इसमें तनीक संदेह नहीं कि बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के पूर्व अध्यक्ष सिद्धेश्वर जी की कामयाबी हर संस्कृतानुरागियों के लिए गर्व की अपार गाथा बन गई है। यह बात सही है कि इस पद पर आने के बाद ही इस शख्सियत के बारे में लोगों को पता चला कि ये न केवल राष्ट्रभाषा हिंदी सहित भारतीय भाषाओं के उन्नयन के समर्थक रहे हैं, बल्कि इनकी प्रशासनिक क्षमता भी काबिलेतारीफ है।

इनकी रचनाओं की खाशियत है वे मनुष्यता, भारतीयता और नए विचार से अपनी श्रेष्ठता को स्थापित करते हैं। उनका मानना है कि आज के समाज में जिस प्रकार अपसंस्कृति के हमले हो रहे हैं उसके समानांतर एक

खड़ी रेखा खींचनी होगी। पूरे समाज में इसे लेकर तड़प है। इस तड़प को पहचानना होगा और उसे संगठित करना होगा। साहित्य और साहित्यकारों की इसमें अपनी अहमन्यता है। सिद्धेश्वर जी के लेखन की विशेषता यह है कि वे खुद को दोहराते नहीं हैं। उनके पास इतने व्यक्तिगत और विभिन्न अनुभव हैं कि उन्हीं के बीच जाने कितनी विसंगतियाँ देख लेते हैं। इनके निबंधों को पढ़कर यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज को समग्रता में देखने के लिए कितनी व्यापक दृष्टि चाहिए। उन्होंने स्वतंत्र भारत के वर्तमान और भविष्य को तय करने वाली शक्तियों की संरचना में मौजूद साथियों को अपने खास अंदाज में रेखांकित किया है।

किसी साहित्य-राजनीतिक विवादों से बचने वाले सिद्धेश्वर जी सामाजिक सरोकारों पर अत्यंत गंभीर और संवेदनशील होकर सोचते-लिखते हैं। हर प्रलोभन से बचते हुए वे प्राय: अपनी गुणग्राहकता का परिचय देते हैं। इनके संपादन की एक खास शैली यह रही है बहुत सोच-समझकर लेखकों को दायित्व सौंपते हैं और बेवजह किसी की सिफारिश को कबूल नहीं करते हैं। देश के विभिन्न भागों की यात्रा करने वाले सिद्धेश्वर जी ने न्यूयार्क की भी यात्रा की है। जीवन विश्वविद्यालय में अध्ययन मनन के परिणामस्वरूप उन्हें साहित्य, संस्कृति और संवेदन की दुनिया में पीएच.डी. की उपाधि के हकदार बना दिया है। लोग उन्हें डॉ. सिद्धेश्वर कहकर पुकारते तो मुस्कुराकर कहते-अरे भाई! मैं डाक्टर नहीं।

सिद्धेश्वर जी हिंदी के एक ऐसे लेखक हैं जिनकी रचनाओं को चाव से पढ़ा जाता है। वे सचमुच एक बौद्धिक हैं और हर विषय पर अपनी पक्की राय रखते हैं। यही नहीं हर मुद्दे पर वे हस्तक्षेप करते दिखाई देते हैं। इन्होंने कभी भी दायरे में बँधकर लिखना पसंद नहीं किया। इसके लिए यह संभव भी नहीं था। इन्होंने अपनी नंगी आँखों से जिंदगी को देखा और वैसे ही चित्रित किया। इनका मानना था कि दायरे में बँधा लेखन लेखनीय उत्कृष्टता पर आघात तो करता ही है उसे सीमित भी करता है। कथ्य और शिल्प के अनूठे तालमेल के कारण इनका लेखन अद्वितीय है जिसमें एक प्रखर बुद्धिजीवियों के भी दर्शन होते हैं।

सिद्धेश्वर जी इन दिनों चर्चे में अधिक इसलिए हैं कि तकरीबन तीस साल तक बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड ने संस्कृत के लिए जो नहीं किया, इन्होंने मात्र तीन साल में संस्कृत भाषा के प्रति लोगों में रूझान पैदा करने के लिए कई सफल आयोजन किए। बोर्ड से पहली बार 'वाग्वन्दना' नाम्नी

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैचारिक पत्रिका का प्रकाशन कर इन्होंने न केवल संस्कृत के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जाहिर की, बल्कि अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। सचमुच में सिद्धेश्वर जी ने संस्कृत की खोई गरिमा को पुनर्जीवित करने के लिए चमत्कार कर दिया। बोर्ड के इतिहास में इतनी उपलब्धियाँ कभी नहीं हुई। जहाँ कहीं भी बोर्ड की बात चलती, तो उसके अधिकारी-कर्मचारी सहित संस्कृत विद्यालयों के शिक्षकवृंद खुश होते हैं यह सोचकर कि बोर्ड के अध्यक्ष की मेहनत रंग लाई। जिस बुलंदियों पर संस्कृत बढ़ी संस्कृत से जुड़े लोग गौरवान्वित महसूस करते हैं, क्योंकि आखिर अध्यक्ष की बदौलत ही तो बोर्ड की छवि बदली है।

सिद्धेश्वर जी ने बोर्ड की पुरानी कार्य प्रणाली को ध्वस्त करते हुए नई कार्य प्रणाली लागू कर मैक्सिम गोर्की की इस सूक्ति को चरितार्थ किया है- 'मेहनती लोग पुरानी दुनिया ध्वस्त करके नई दुनिया भी बसाई हैं।' सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में एक खुबी यह दिखती है कि वह सुनते हैं सबकी, पर करते हैं वही जो उनका मन करता है। रिस्क लेते हैं, गलत निर्णय नहीं। सिरियस होने की बजाय सिन्सियर रहते हैं। उनका मानना है कि बिना थपेड़ों के इंसान नहीं सिखता, इसलिए जीवन में थपेड़े भी जरूरी है। किसी भी काम को करने के पहले सिद्धेश्वर जी सबकी राय लेते हैं, लेकिन जो उचित लगता है वही करते हैं।

सत्तासीन राजनीति के सवाल पर सिद्धेश्वर जी सबकी राय लेते हैं कि राज्य में सत्तासीन होने वाले तमाम राजनीतिक दलों ने वहाँ के संसाधनों का दोहन जनता के हितों के बदले अपने हितों के लिए किया। जाति, मजहब और वर्ग की इस राजनीति में विकास हाशिए पर चला गया और लूट-खसोट, मारकाट, दलबदल का साम्राज्य होता चला जा रहा है। कुछ चीजें बदलने का नाम नहीं लेतीं। हम लाख कोशिश करते रहें, ढिंढोरे पीटते रहें, दावे और क्रांतियाँ करते रहें, जमीनी सच्चाई हमें हमेशा मुँह चिढ़ाती रहती हैं। कुछ ऐसी ही स्थिति आज इस देश की राजनीति में है।

संविधान के आधार पर भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है, जहाँ सभी धर्म, जाति के लोगों के साथ समान व्यवहार करना सरकार का संविधान सम्मत धर्म है, लेकिन सरकार क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थो के लिए खुद इसका पालन किसी भी तरह नहीं करती और जनता से अपेक्षा करती है कि सभी सद्भाव बनाकर रहें। यह संभव नहीं है जबतक कि सरकार स्वयं अपने आचरण और व्यवहार से ऐसी परिपाटी विकसित न करे।

लिखित और मुद्रित शब्द से विरक्ति के इस दौर का जो सबसे अधिक संतोषजनक और आश्वस्तकारी पक्ष मुझे यह दिख रहा है कि अंकों से अक्षर तक खेलने वाले सिद्धेश्वर जी अपनी उम्र के पचहत्तर वर्ष के पड़ाव से गुजरने के बाद भी इस समय पहले के किसी भी अन्य समय की अपेक्षा आज साहित्य की विभिन्न विधाओं में सृजन कर रहे हैं, चाहे वे कविता लिखें, निबंध लिखें या संस्मरण। और वे जो लिख रहे हैं वे सरसरी निगाह से खारिज किए जाने की छूट कतई नहीं देते। उन पर पूरी तवज्जो, विचार की सिफारिश करते हैं। कविता के क्षेत्र में और खासतौर पर जापान से आयातित हाइकु व सेन्र्यू काव्य में तो शायद ही ऐसा पहले कभी हुआ हो कि एक साथ इतनी बड़ी संख्या में वे बेहतर और विचार-संपृक्त कविताएँ रच रहे हों। 'कवि और कविता' तथा 'बुजुर्गों की जिंदगी' नामक अपनी दो हाइकु व सेन्र्यू काव्य संग्रह प्रकाशित होने के बाद तकरीबन पाँच सौ पृष्ठों में 'जीवन रागिनी' नाम्नी गद्य में आत्मकथा तथा पद्य यानी हाइकु में तकरीबन ढाई सौ पृष्ठों में 'मेरी जीवन-यात्रा' नामक आत्मकथा लिखकर तो इन्होंने हम सभी साहित्य में रुचि रखने वाले लोगों को अचरज में डाल दिया है।

सिद्धेश्वर जी की नवीन रचनादृष्टि और नए प्रयोग करने की सामर्थ्य इनमें असीम है। और सबसे बड़ी बात तो मुझे यह लगी कि वे तुकबंदी के शिकार नहीं हैं। अपने समय बोध की अभिव्यक्ति के लिए उनके पास समयानुकूल और संगत भाषा शिल्प है। हमारी दृष्टि में काव्याभिव्यक्ति का उनका मुहावरा, अपने समय और समाज में आ रहे परिवर्तनों को समझने और बताने की उनकी दृष्टि काबिलेतारीफ है। कुछ इसी दृष्टिकोण से सृजन-कर्म के हाइकु व सेन्र्यू काव्य जगत में उनकी आमद को इस पुस्तक में रेखांकित करने की मेरी प्रबल इच्छा हुई। वैसे इसके पहले से भी हाइकु व सेन्र्यू में वे लिख रहे हैं जिसकी चर्चा इसके पूर्व मैंने की है कि इधर हाल की रचनाओं में वे मानवोचित व सामाजिक सरोकार उनकी चिंताओं के केंद्र में हैं। बदली हुई सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक परिस्थितियों ने उनकी अभिव्यक्ति को धार दी है जिसके परिणामस्वरूप इन्होंने निर्दोष और सरल-हृदय नागरिकों के मनोजगत को बदलने में सफलता हासिल की है। दरअसल, सिद्धेश्वर जी ने सामाजिक यथार्थ को तीखे ढंग से पेश किया है और वंचित समुदाय के दु:ख-दर्दो को अपने लेखन व कविता का विषय इन्होंने बनाया है। इनकी अभिव्यक्ति में वह बेचैनी और विद्रोह की ज्वाला है जिसकी उम्मीद सिद्धेश्वर जी जैसे एक सच्चे और ईमानदार रचनाकार से की जाती है।

(७) साक्षात्कार विधा में इनके बढ़ते कदम

प्रश्नोत्तर की परंपरा इस देश में प्राचीनकाल से चली आ रही है। समस्त भारतीय चिंतन एवं ज्ञान-विज्ञान का विवेचन इन्हीं प्रश्नोत्तरी के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है। भारतीय चिंतन का अक्षय भंडार सभी 108 उपनिषद् में उपलब्ध है। इसी परंपरा में आगे चलकर शास्त्रार्थ का सूत्रपात हुआ जिसके क्रम में महर्षि याज्ञवल्क्य का नाम सर्वोपरि है। उन्होंने सतरह अति महत्वपूर्ण शास्त्रार्थ किए थे। इसके बाद शंकराचार्य की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में किए गए शास्त्रार्थो का स्थान सम्मानपूर्वक लिया जा सकता है। इस प्रसंग में उन्होंने शताधिक विद्वानों से शास्त्रार्थ करके उन्हें पराजित किया था। ऐसे मनीषियों में प्रयाग के आचार्य कुमारिल भट्ट तथा मिथिला के मंडन मिश्र के नाम अत्यंत आदरपूर्वक लिए जा सकते हैं।

प्रत्येक युग में ऐसे महापुरुष एवं मेधावी पैदा हुए हैं। आधुनिक युग में ऐसे महात्माओं में महात्मा गाँधी का स्थान सर्वोपरि है। उन्होंने अपने जीवन काल में जितने प्रश्नों के उत्तर दिए वे सभी 100 खंडों में प्रकाशित उनकी ग्रंथावलि में संगृहीत हैं। सच तो यह है कि उन्होंने हर विषय के जितने उत्तर दिए उतने आज तक किसी ने नहीं दिए। इसी प्रकार हिंदी साहित्य में जैनेन्द्र कुमार ने जीवन के हर क्षेत्र के साथ सेक्स पर भी अपने विचार प्रश्नोत्तर के रूप में व्यक्त किए हैं। फिर पटना विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे सुलभ साहित्य अकादमी के अध्यक्ष प्रो. चंद्र किशोर पाण्डेय ऊँ आचार्य निशांतकेतु के 180 प्रश्नोत्तर हिंदी-तेलगु के सेतु एवं 'चंदामामा' के संपादक डॉ. बालशौरि रेड्डी द्वारा संपादित पुस्तक 'हिंदी के रूद्राक्षर' में प्रकाशित हैं।

इसी कड़ी में बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहे दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' के संस्थापक-संपादक सिद्धेश्वर का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने व्यक्तिगत, समाज, संस्कृति, धर्म-अध्यात्म, राजनीति, अर्थ, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय, पत्रकारिता, प्रकृति, विचार, नैतिकता,. शिक्षा तथा न्याय जैसे महत्वपूर्ण विषयों से जुड़े एक हजार एक सौ ग्यारह प्रश्नों के उत्तर दिए हैं, जिन्हें संकलित कर पांच पुस्तकों का रूप दिया गया है जो प्रकाशनाधीन है। पहली पुस्तक है 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' जिसके संपादन का दायित्व पटना विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ. बलराम तिवारी को दिया गया। अन्य पुस्तकों में 'इंसानियत की धुँआती आँखें', 'राष्ट्रीय राजनीति', 'वैश्विक

कूटनीति' और 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक 'फैसले' का संपादन सिद्धेश्वर जी ने स्वयं किया है।

जहाँ तक 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' का सवाल है डॉ. बलराम तिवारी द्वारा संपादित इस पुस्तक में पत्रकारों एवं प्रबुद्धजनों द्वारा व्यक्तिगत, साहित्यिक, भाषिक, शैक्षिक, नैतिक और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर पूछे गए 234 प्रश्नों के उत्तर सिद्धेश्वर जी ने दिए हैं। इसी कड़ी में सिद्धेश्वर जी से किए गए साक्षात्कार के दौरान समाज, संस्कृति, धर्म व अध्यात्म, नैतिकता, वैचारिक तथा प्रकृति से संबंधित 210 प्रश्नों के सिद्धेश्वर जी द्वारा दिए गए उत्तर को संग्रहित कर 'इंसानियत की धुँआती आखें' नाम्नी पुस्तक प्रकाशनाधीन है।

सिद्धेश्वर जी द्वारा दिए गए 213 प्रश्नोत्तर को संग्रहीत कर 'राष्ट्रीय राजनीति' नामक जो पुस्तक आई है उसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, मौद्रिक एवं वित्तीय नीति, मुख्य बजट के साथ रेल बजट को शामिल करने ईमानदार अधिकारियों एवं कर्मचारियों को कठघरे में खड़ा करने की बजाय भ्रष्ट अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पकड़ने एवं उनपर कड़ी कार्रवाई करने, देश के सरकारी दफ्तरों की कार्य संस्कृति में पारदर्शिता, चुस्ती-दुरूस्ती और जवाबदेही, संघीय ढाँचे के अनुरूप नदी जल के उपयोग, बँटवारे और उससे जुड़े विवादों के हल के लिए अलग से कोई सर्वमान्य संस्था का गठन, राष्ट्रीय मिशन के तहत इस देश के अपने ब्रॉंड एवं तकनीक बनाने, लुप्त होती राष्ट्रीयता की भावना, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 को लेकर जम्मू-कश्मीर की समस्या और कश्मीरियत, इंसानियत और जम्हूरियत के खिलाफ आतंकवादियों एवं अलगाववादियों के कहर, देश में बढ़ती बेरोजगारी, भारतीय राष्ट्रवाद, आरक्षण से जुड़े सवाल, राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता पर मंडराते खतरे के बादल, सेना को विवादों से परे रखने, गाँवों और किसानों की दशा में सुधार, धर्मनिरपेक्षता भारत की सुरक्षा के लिए बनता खतरा और दूसरों की सफलता आदि राष्ट्रीय मुद्दों से संबंधित प्रबुद्धजनों की जिज्ञासाओं को भी प्रथम अध्याय में अपने उत्तर से संतुष्ट करने का उनका प्रयास रहा है।

इस पुस्तक के द्वितीय अध्याय में भारतीय राजनीति से संबंधित प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत किए गए हैं। देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति अपने निम्नतर स्तर पर जा पहुँची है। आखिर वह कौन सा कारण है कि देश की आजादी के 70 वर्ष पूरे होने के बावजूद भारत के लोकतंत्र में परिपक्वता नहीं आ सकी है। दरअसल देश की आजादी के तुरंत बाद के नेता अपने

वादों परं खरा उतरा करते थे, लेकिन आजकल के राजनीतिज्ञों को प्रतिबद्धता से कोई वास्ता नहीं रहता। आज की राजनीति में न तो कसमों का कोई स्थान है और न वादों व आश्वासनों का। यही कारण है कि ले-देकर नेताओं के वादे और कसमें जनता पर कोई असर भी नहीं डालते। राजनीतिज्ञों में आज के दिन वफादारी इसलिए नहीं दिखती क्योंकि वे पार्टी के सिद्धांतों पर नहीं, अपितु सत्ता पर उसकी पकड़ को देखते हैं। यदि बारिकी से देखा जाए, तो आज के राजनेता सत्ता को देखकर तुरंत अपना रंग बदल लेते हैं। आज के नेता दल या देश की नहीं, बल्कि अपनी स्थिति को मजबूत करने में विश्वास करते हैं। आज उसी तरह के नेता को चतुर कहा जाता है जो लहर देखकर तत्काल उस पर सवार हो जाए। ऐसे नेताओं की चाल, चरित्र और चेहरे देखकर अब तो वैसे पुराने एवं स्वाभिमानी नेताओं की याद आने लगी है, जो नीति और सिद्धांत को लेकर सत्ता को लात मारने की हिम्मत दिखाया करते थे, मगर देश की आजादी के दो-तीन दशक बाद इस देश और यहाँ की जनता को बंधक बनाकर रखने की राजनीति शिखर-पुरुष चला रहे हैं। सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में जमे हुए मठाधीशों का उपेक्षा भाव निःसंदेह चिंता का विषय है, क्योंकि आम आदमी पुलिस तंत्र और नेता तंत्र के संयुक्त हमले को झेलता हुआ आतंक की छाया में जी रहा है। आपको याद होगा काँग्रेस के पुराने नेता पुरुषोत्तम दास टंडन ने काँग्रेस का अध्यक्ष पद छोड़ दिया था, लेकिन नेहरू के सामने आत्मसमर्पण करना पसंद नहीं किया। यही हाल नेताजी सुभाषचंद्र बोस का भी था।

'राष्ट्रीय राजनीति' के प्राक्कथन में सिद्धेश्वर जी कहते हैं - 'कथनी-करनी में अंतर के मामले में राजनीतिक दलों-नेताओं की साख में जारी गिरावट चुनाव के समय तो मानो अपने चरम पर पहुँच जाती है। काँग्रेस, बसपा, सपा, जद(यू), राजद आदि की तो बात ही छोड़िए, भाजपा की पहचान से जुड़े राम मंदिर और समान नागरिक संहिता का इस्तेमाल आखिर चुनाव के वक्त अक्सर क्यों किया जाता है? इसी प्रकार सत्ता की सतहो में बहुत कुछ होता रहा और आज भी हो रहा है पर आमजन जीवन सदियों से संजोए मूल्यों और परिपाटियों के मुताबिक जीता रहा। जड़ होती समाज व्यवस्थाओं के बीच भी सदियों से उत्पीड़ित जन अपनी सरलता और सादगी, अपनी कर्मठता और जीवन-सत्य बचाए रहे। पर अब भारत की राजनीति से भारत के आमजन को खतरा महसूस हो रहा है। यह राजनीति जनता के बीच के विभाजनों को खतरनाक ढंग से इस्तेमाल कर इसे और

गहरा कर रही है। यंह राजनीति इस देश को अंदर ही अंदर तोड़ रही हैं, जो बड़ी मुश्किल से सदियों के संघर्ष के बाद सचमुच एक देश बनने की प्रक्रिया में था। भारत राष्ट्र को राष्ट्रवाद की इस राजनीति से खतरा है कारण कि एक राष्ट्र जिसे निर्मित करने की जरूरत है, मजबूत करने की जरूरत है, उसकी सांस्कृतिक बहुलता को समरस और उत्पादक, न्यायपूर्ण और समय की जरूरत है । उसे राष्ट्रवाद की राजनीति का अखाड़ा बनाने का मतलब उसके नींव की इंटें खिसकाना है, उसके बनने की प्रक्रिया को बाधित करना है।'

साक्षात्कार के दौरान सिद्धेश्वर जी के 230 प्रश्नोत्तर को संकलित कर 'वैश्विक कूटनीति' नामक जो पुस्तक प्रकाशनाधीन है उसमें सिद्धेश्वर जी अपने प्राक्कथन में कहा है कि अंतरराष्ट्रीय समुदाय अपने-अपने देश के साथ आर्थिक, व्यापारिक और कूटनीतिक संबंधों को लेकर असमंजस में बने रहते हैं। सभी देशों की सरकार के नीति-नियंताओं को कूटनीतिक कार्रवाई की ओर ज्यादा ध्यान केंद्रित करना पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र के कुल 193 देशों में से अधिकांश देशों में इधर हाल के वर्षों में घटित घटनाओं खासतौर पर भारत-पाक के बीच संबंधों में आई खटास से संबंधित मुझसे साक्षात्कार के दौरान प्रबुद्धजनों के द्वारा मेरे समक्ष प्रस्तुत प्रश्नों के दो टूक जवाब हमने बड़े सलीके से देने का प्रयास किया है, ताकि उनकी जिज्ञासाएँ पूरी हो सकें। आतंकवाद की जननी पाकिस्तान द्वारा अधिकृत कश्मीर को लेकर निरंतर आतंकियों की हैवानियत के बाद भारतीय सैनिकों के लक्षित हमले (सर्जिकल स्ट्राइक) के पूर्व और बाद की घटनाओं पर पूछे गए प्रश्नोत्तर देने में हमने अपनी बौद्धिक क्षमता और ज्ञान-साधना के अनुसार कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी है।

भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने विगत ढाई-तीन वर्षों में तकरीबन साठ-सत्तर देशों की यात्रा के दौरान अपनी कूटनीतिक चाल से प्राय: सभी देशों का ध्यान खींचने में सफलता हासिल की है जिसका नतीजा है कि पाकिस्तान आज प्राय: सभी देशों से अलग-थलग पड़ गया। संयुक्त राष्ट्र पर हावी औपनिवेशिक मानसिकता पर मैंने अपने उत्तर में पी-5 यानी परमानेंट-5 के पाँच देशों- अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, रूस और चीन जिनके पास वीटो पावर है संयुक्त राष्ट्र की 1945 में हुई स्थापना के वक्त से ही वे उसकी सुरक्षा परिषद् के स्थाई सदस्य बने हुए हैं और उनका 'वीटो पावर' इनकी दबंगई का ब्रह्मास्त्र है। इसके आगे बाकी 188 संयुक्त राष्ट्र सदस्यों के सारे हथियार बेकार हो जाते हैं। राजनीतिक और वैश्विक प्रसंगों के वर्तमान

संदर्भो के अनुरूप सिद्धेश्वर जी ने प्रस्तुत पुस्तक में संग्रहीत प्रष्टाओं के उत्तर में व्याख्या की है जिसमें राजनीति और वैश्विक कूटनीति से जुड़ी जिज्ञासाओं के सवाल-जवाब सहज अंदाज में उन्होंने प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

इसी प्रकार)साक्षात्कार के दौरान उच्च एवं उच्चतम न्यायालय में हुए न्यायिक फैसले तथा केंद्र सरकार द्वारा आर्थिक मामलों में लिए गए फैसलों से संबंधित पूछे गए 224 प्रश्नों के जो उत्तर सिद्धेश्वर जी ने दिए है उसे संगृहित कर तैयार पुस्तक 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले' में सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि सर्वोच्च न्यायालय ने जिस तरह पिछले बीस वर्षों से अदालत में लंबित मामलों को लेकर सभी सरकारों पर प्रश्न चिह्न लगाया है उससे सवालों के घेरे में हर राजनीतिक दल अपने आप ही शामिल हो गया है। भले ही नेता कुछ कहें, पर उनके दिलों में क्या बसता है, यह सर्वोच्च न्यायालय की कठोर टिप्पणियों के सामने आ ही गया है। सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने जिस तरह से देश की संसद और विधायिका को आड़े हाथों लेते हुए धर्म के राजनीति में दुरुपयोग से जुड़े मामलों पर सवालों की लंबी सूची रखी है उससे नेताओं की पोल खुल जाती है। आज हमारे नेताओं और सरकारों को इस बात की आदत हो गई है कि किसी भी विवादित मुद्दे को तबतक खींचा जाए जबतक अदालत जाकर उसके बारे में स्पष्ट आदेश न ले आए। चूँकि यह विभाजन राजनेताओं को अपनी राजनीति को मजबूत करने का काम भी करता है तो किसी भी दल को इस बात में कोई दिलचस्पी ही नहीं होती है कि इस प्रक्रिया पर कोई रोक लगायी जाए।

इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में केंद्र सरकार के द्वारा जहाँ तक आर्थिक मामलों पर लिए गए फैसले का सवाल है सिद्धेश्वर जी का मानना है कि वर्ष 2014 में जब नरेन्द्र मोदी ने केंद्र सरकार की सत्ता संभाली थी तब निर्विवाद रूप से बेहद विषम परिस्थितियों में उन्होंने काम करना शुरू किया था। निवेशकों का भरोसा रसातल में था और अर्थव्यवस्था गिरावट की मार झेल रही थी। न केवल पूँजी निर्माण या राजकोषीय घाटा, बल्कि ऐसे तमाम अहम संकेतक लाल निशान यानी खतरे के स्तर पर थे, मगर सत्ता संभालने के कुछ बाद अर्थव्यवस्था का कायाकल्प हुआ है जिसने उसे मजबूती प्रदान की है और इसमें सरकारी खजाने की सेहत में सुधार के साथ-साथ सरकारी खर्च में आई बढ़ोतरी की मुख्य भूमिका रही है, पर कुछ अवरोध अभी भी कायम है, जो हमारी अर्थव्यवस्था की तेज गति की राह में लगातार आड़े आ रहे हैं। ये अवरोध हैं गैरनिष्पादित आस्तियों यानी एनपीए

की मार से कराह रहा बैंकिंग क्षेत्र और अवरूद्ध पड़ा निजी निवेश चक्र। उपभोग और सरकारी व्यय एवं निवेश ने अर्थव्यवस्था को उस भंवर से बाहर निकाला है, जिस भंवर में सप्रंग सरकार ने उसे फँसाकर छोड़ दिया था।

साहित्यकार सिद्धेश्वर जी से तकरीबन पचास पत्रकारों एवं प्रबुद्धजनों द्वारा किए गए साक्षात्कार के अंतर्गत उनकी जो बातें या विचार उत्तर के रूप में पाठकों के समक्ष आए हैं वे किसी तरह के प्रमाण की मोहताज नहीं हैं। सिद्धेश्वर का चिंतन उनके द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'विचार दृष्टि' के संपादकीय एवं अग्रलेख में तो आए ही हैं समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तथा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के विभिन्न केंद्रों से प्रसारित और सभा-संगोष्ठियों में इनके द्वारा व्यक्त उद्‌गारों से भी लोग अवगत होते रहे हैं। इसके अलावा कई समारोहों एवं कार्यक्रमों के अवसर पर प्रमुख वक्ताओं ने इनके व्यक्तित्व व कृतित्व पर जो उद्‌गार व्यक्त किए हैं वे इनके विचारों को जानने के लिए काफी हैं और पाठकों के लिए उपयोगी भी। इससे साहित्य तथा अन्य क्षेत्रों से जुड़े लोग भी विशेष रूप से लाभान्वित हो सकते हैं।

उल्लेख्य है कि सार्वजनिक जीवन में अपने पांव रखने के पूर्व सिद्धेश्वर जी ने अपने जीवन् के बेहतरीन 36 वर्ष भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग (Indian Audit & Accounts Department) जिसे अर्द्धन्यायिक विभाग (Semi Judicial Department) कहा जाता है, में विभिन्न पदों पर रहकर अपनी सेवा प्रदान की है जहाँ भारत सरकार के साथ-साथ राज्य सरकारों के नियम-कानूनों की बारीकियों को न केवल इन्होंने समझा है, बल्कि लेखा परीक्षण के दौरान उसका इस्तेमाल भी किया है। आखिर तभी तो सर्वोच्च न्यायालय के अधिवक्ता श्री नागेश, पाटियाला हाउस अदालत के अधिवक्ता श्री घनश्याम मिश्र, पटना उच्च न्यायालय के वरीय अधिवक्ता श्री अवधेश प्र. सिन्हा तथा धनबाद सिविल कोर्ट के पूर्व सिविल जज श्री राम लखन द्वारा सिद्धेश्वर जी के समक्ष प्रस्तुत न्यायिक प्रश्नों के उत्तर इन्होंने बड़ी गंभीरता से दिए हैं।

अंकों की दुनिया में तीन दशक से अधिक समय तक रहकर आज अक्षर से खेलने वाले सिद्धेश्वर जी आत्मविश्वास से लबरेज हैं और वाग्देवी की उपासना में रत रहकर जीवन के वास्तविक सच को उजागर कर रहें हैं, क्योंकि इसके अभाव में जीवन का कोई मूल्य नहीं रह जाता है। अवरोधों से टक्कर, समय की चुनौतियों से जुझने की प्रवृत्ति, उनकी शक्ति एवं दुष्प्रवृत्ति के पराक्रम को भी परखने की समझ तथा नए मार्ग के अन्वेषण

की पहचान सबके सब सिद्धेश्वर में बड़ी खासियत वास्तविक रूपों में उपस्थित हैं। अपनी कड़ी मेहनत, लगन और प्रतिभा के बल पर इन्होंने जिस प्रकार तमाम विपरीत परिस्थितियों में बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड को उँचाइयों पर पहुँचाते हुए नई इबारत लिखी, उसी प्रकार साहित्य व पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अपनी कलम के बल पर उसकी समृद्धि में जी-जान से ये लगे हुए हैं जिसका प्रमाण है कि संस्कृत बोर्ड में अपने तीन साल के कार्यकाल बिताने के बाद स्वेच्छा से इन्होंने उसे छोड़ा और जोर-सोर से सृजन में तल्लीन हो गए जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न विषयों पर इनकी एक दर्जन से अधिक पुस्तकों की पांडुलिपियाँ तैयार हो चुकी हैं और 'कवि और कविता' एवं 'बुजुर्गो की जिंदगी' विगत 14 मई 2017 को पटना के ए.जी. कॉलोनी स्थित इनके 'संस्कृति' निवास के संस्कृति वाटिका में आयोजित अमृत महोत्सव के अवसर पर लोकार्पण के वक्त आपके समक्ष आ चुकी हैं। अन्य पुस्तकों के नाम हैं-'हमें अलविदा ना कहें' (संस्मरणात्मक निबंध संग्रह), 'दरिंदगी का दर्द', 'आम आदमी की आवाज', 'राष्ट्रीयता:विविध आयाम' 'जीवन-रागिनी' (आत्मकथा) तथा हाइकु काव्य में इनकी आत्मकथा 'मेरी जीवन-यात्रा'।

किसी रचनाकार का बड़प्पन इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपने आस-पास से कितना परिचित है और उसके लिए कितना चिंतनशील है, उसका जन-संबंध कितना वास्तविक और बुनियादी है और उसके सामाजिक सरोकारों एवं मानवीय संवेदनाओं का धरातल कितना ठोस है। इस दृष्टिकोण से यदि देखा जाए, तो अत्यंत संवेदनशील और किसी वाद में शामिल नहीं होने वाले सिद्धेश्वर जी हिंदी के ऐसे जीवंत साहित्यकार हैं, जो व्यक्ति के आंतरिक विरोध को मिटाकर उसमें समता, उदारता, सहिष्णुता, समरसता, प्रेम और करुणा जैसे मानवीय एवं शाश्वत मूल्यों को उत्पन्न करना चाहते हैं, ताकि स्वस्थ समाज एवं सबल राष्ट्र का निर्माण हो सके। इनके व्यक्तित्व की इन्हीं विशेषताओं के कारण समाज के हर क्षेत्र के लोग इनसे मिलना पसंद करते हैं और इनसे मिलकर न केवल अपने सवालों के जवाब हासिल करते हैं, बल्कि अपनी तनाव भरी जिंदगी में इनके साथ मिल-बैठकर और विभिन्न विषयों पर आत्मीयता से बातचीत करने के बाद उन्हें थोड़ी तसल्ली मिलती है और वे राहत महसूस करते हैं। आजकल अधिकांश लोग शारीरिक व मानसिक जटिलता से गुजर रहे हैं और उनकी उम्र के हर पड़ाव पर परशानियाँ खड़ी होती हैं तथा आत्मशक्ति को कमजोर

करतीं हैं। सिद्धेश्वर ने इन किताबों में सभी छोटे-बड़े संवालों का जवाब दिया है जिसे लोगों को समझने की जरूरत है। नहीं तो कई प्रतिभा के धनी लोग अपनी प्रतिभा में निखार नहीं ला पाते और पीछे रह जाते हैं। इन पुस्तकों में प्रस्तुत प्रश्नोत्तर से उनकी परेशानियाँ दूर हो सकती हैं और उनकी प्रतिभा मुखरित हो सकती है।

दरअसल, सिद्धेश्वर अपने दोस्तों व शुभेच्छुओं के साथ मिलकर विभिन्न मुद्दों पर बहस करने में रुचि रखते हैं, जिससे पता चलता है कि देश-दुनिया के बारे में इनकी जानकारी कितनी है और दिन-प्रति-दिन की खबरों पर आपका कितना नियंत्रण है। रोजाना की राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, वैचारिक, नैतिक, राष्ट्रीय एवं वैश्विक खबरों पर अपनी नजर वह बनाए रखते हैं और यह इनके व्यक्तित्व को एक अलग आयाम देता है। जब जागरुकता इनके व्यक्तित्व से प्रतिबिंबित होती है, तो लोग इनकी बातों को महत्व देते हैं। इन बातों से किसी का प्रभावित होना यह साबित करता है कि इनकी आवाज में कितना दम है और कितनी क्षमता। सच तो यह है कि इनकी बातों से लोग इसलिए प्रभावित होते हैं, क्योंकि ये लोगों को अपनी बातें सुनने के लिए मजबूर कर देते हैं। इसकी मुख्य वजह यह है कि इनकी आवाज में मिठास है जिसे लोग सुनना पसंद करते हैं, इसीलिए साक्षात्कार के दौरान प्रश्नकर्ताओं और इनके बीच विभिन्न मुद्दों पर हुई बातचीत को वह आम भारतीय के बीच ले जाना चाहतें हैं। यह कृति इनकी इसी चाह का प्रतिफल है, जिससे सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनीतिक, प्राकृतिक तथा वैश्विक आदि परिवेश का परिचय प्राप्त होता है। इन्होंने सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं पर जो विचार अपने उत्तर में दिए हैं वे मार्मिक हैं और उन्होंने उत्तर प्रस्तुत करने में जो कौशल का निर्वाह किया है वह रोचकता को बढ़ाता है।

कुछ इन्हीं सब वजहों से समाज अथवा साहित्य के क्षेत्र में उपलब्धियों के तथाकथित झंडे भले ही बहुत सारे रचनाकारों ने गाड़ लिए हों, मगर जन-सामान्य का जैसा मान-सम्मान, स्नेह व प्रतिष्ठा सिद्धेश्वर को मिला और आज भी प्राप्त हो रहा है, वैसा कितने महान रचनाकारों को मिल पाता है। उपलब्धियों के शिखर तक पहुँचने वाले चाहे साहित्यकार हों या राजनीतिज्ञ उनसे लेंकर आम आदमी तक इनका रिश्ता कभी न टूटा, क्योंकि इनके पास सामाजिक जीवन के व्यापक अनुभव हैं और इनके सृजन में समय के तल्ख अनुभवों की एक बड़ी दुनिया दिखाई देती है। इसके

साथ-साथ समाज एवं व्यक्ति को परखने की पैनी दृष्टि भी है इनमें। यही नहीं अपने अनुभवों को रचनात्मक अभिव्यक्ति देने के लिए शिल्प भी है इनके पास।

एक अच्छा साहित्यकार चाहे उसकी लेखन विधा कोई भी हो, मूलतः रचनाकार ही होता है। वह अपनी रचना के माध्यम से समाज को नई दिशा देता है, मार्गदर्शन करता है, बशर्ते रचनाकार का इतिहास-बोध अच्छा हो तथा उसमें उत्कृष्ट स्तर की युग चेतना भी हो। लगभग डेढ़ दर्जन पुस्तकों के रचयिता सिद्धेश्वर एक ऐसे ही रचनाकार हैं, जो प्रतिभा के धनी तथा प्रभावशाली वक्ता भी हैं। इनके तर्कपूर्ण तथ्यों एवं कथ्यों के आगे विरोधी भी निरूत्तर हो जाते हैं। ये जो भी लिखते हैं उसका महत्व होता है, क्योंकि इनकी रचनाएँ सामाजिक सरोकारों से जुड़ी होती हैं। इसके साथ ही इनकी रचनाओं में जहाँ विषयगत विविधता है, वहीं शब्दों के साथ प्रयोग भी जिसकी वजह से ये निरंतर एक ताजगी का अहसास कराते हैं। लेखन में बड़ी शालीनता और मधुरता से प्रहार करने वाले सिद्धेश्वर के लेखन-कर्म के माध्यम से इनकी सार्थक जीवन-दृष्टि को आसानी से देखा-समझा जा सकता है। अनुशासन और व्यवस्थित दिनचर्या इनकी सफलता के रहस्य हैं। यह लेखन और स्वस्थ जीवन दोनों के लिए आवश्यक हैं जो नए लेखकों को इनसे सीखने की चीज है।

सिद्धेश्वर स्वस्थ जीवन बिताते हुए अपने वर्तमान परिवेश और समाज के गंभीर अध्येता और भविष्य के प्रति चिंतनशील तथा हर समय में जीवंत, प्रसन्नचित्त और प्रभावी दिखाई देते हैं। मुझे तो लगता है कि सिद्धेश्वर न तो तालाब के पानी की तरह कभी किसी सीमा में कैद रहे और न ही वर्षा-ऋतु की प्रतीक्षा कर सके, वह उद्दाम प्रवाहवाली अंतःसलिला नदी की तरह आगे बढ़ते रहे और अपने समय के मर्म पकड़ते रहे।

सिद्धेश्वर की रचनाएँ और प्रस्तुत पुस्तक में प्रश्नकर्ताओं को दिए गए इनके उत्तर लगभग हर महत्वपूर्ण विषयों सहित राजनीतिक-सामाजिक एवं साहित्यिक दौर से परिचित करा देते हैं। हर दौर के यथार्थ और बदलते यथार्थ को पहचान सकने लायक औजार इन्होंने गढ़े हैं और उन्हें और परिष्कृत किए हैं। लोकतंत्र के तीनों स्तंभों से लेकर चौथे स्तंभ तक में दमन, हिंसा, बेरोजगारी, नवधनाढ्य संस्कृति और राजनीतिक-सामाजिक उच्छृंखलता की वज़ह से हम सचमुच क्या खो रहें हैं इसकी पहचान करवाने में इनके उत्तर समीचीन हैं, क्योंकि इसने हमें भीतर तक हिलाकर रख दिया है। सच

तो यह है कि इस संग्रह के प्रश्नोत्तर में बिखरा हुआ समय अपने पूरे वजूद के साथ उस बिंब को रचता है जो समय की आँच में कही बिखर गया है। बेशक प्रश्नकर्ताओं ने समकालीन कालखंड की परिस्थितियों के अनुसार ही सिद्धेश्वर के समक्ष सारे प्रश्न प्रस्तुत किए हैं जिसमें विविधता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। चूँकि साहित्य समाज से आगे चलने वाली मशाल है इसलिए इनके उत्तर भी समाज के लिए मशाल का काम करेंगे और प्रश्नों का विषय इतना विपुल है कि उसमें से हर कोई अपनी रुचि के अनुसार उत्तरों का आस्वाद ले सकता है। सच तो यह है कि सिद्धेश्वर ऐसे व्यक्तित्व और कृतित्व के धनी रचनाकार हैं जिनसे वर्तमान में उपस्थित तीन पीढ़ियाँ प्रेरणा ग्रहण कर सकती हैं। छिहत्तर साल पार करने के बाद लेखन से इन्होंने अपने समकालीन परवर्ती और आधुनिक नई पीढ़ी को न केवल प्रभावित किया है, बल्कि आज भी यथासमय सबका मार्गदर्शन कर रहे हैं।

आजादी के सत्तर वर्षो के बीत जाने के बाद इन वर्षो में मानवीय संवेदनाओं में जो टूट-फूट हुई है और सौंदर्य एवं निर्माण को पहचानने की जगह क्रूर और हिंसक प्रवृत्तियों को अपने को पहचनवा लेने में जो कामयाबी मिली है उन सबकी खोज-खबर सिद्धेश्वर जी के उत्तर में है। यह इस संग्रह की बड़ी उपलब्धियाँ कही जाएँगी। इसी प्रकार साहित्य, पत्रकारिता और राजनीति एवं न्यायपालिका को एक व्यापक फलक से जोड़ने और समझने की दृष्टि भी पाठकों को इससे मिलती है।

प्रसिद्ध दार्शनिक बर्टेंड रसेल का मानना है कि मनुष्य के जीवन को खतरों से मुक्त कर देने मात्र से ही उसे सुखी नहीं बनाया जा सकता। सिद्धेश्वर के प्रश्नोत्तर में आम आदमी के अंतःकरण में समाई आसक्ति और मर्म को इस तरह से गुँथा गया है कि इससे निकलती सुगंध से परिवार, समाज और देशवासियों के जीवन से संबंधित विभिन्न रूपकों को आसानी से पकड़ा जा सकता है। प्रश्नोत्तर इनकी वैचारिक सुगंधता और जीवन की आकांक्षा का संगीत मुखरित करते हुए निरंतर जीवन को ऊँचे पायदानों की ओर अग्रसर करते हैं। इनकी तीक्ष्ण चिंतनपरकता उस हद तक जाती है जहाँ दार्शनिकता की जुमलेबाजी न होकर सुख और संतोष की गहरी छाँव पसरी हुई है।

सिद्धेश्वर जी की दूसरी बड़ी विशेषता है इनकी स्पष्टवादिता, निर्भीकता, सिद्धांतप्रियता, कर्मठता और ईमानदारी जिसका परिचय तो लोगों को तब मिला जब सिद्धेश्वर जी के सबल कंधों पर बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड में राज्यमंत्री के दर्जा प्राप्त अध्यक्ष का दायित्व सौंपा गया। सच मानिए

अपने तीन साल के कार्यकाल के दौरान संस्कृत बोर्ड को जिस रास्ते से ये ले गए उससे न केवल इनकी प्रशासनिक क्षमता से लोग अवगत हुए, बल्कि अपनी कार्यक्षमता और संस्कृत भाषा के प्रति निष्ठा एवं समर्पण-भाव की वजह से संस्कृत बोर्ड को इन्होंने राष्ट्रीय स्तर एक अलग पहचान दिलाई। विगत चार दशकों से भ्रष्टाचार में आकंठ डुबी बोर्ड की बेपटरी गाड़ी को इन्होंने पटरी पर लाया। सच तो यह कि जब तक किसी सज्जन को कोई मौका नहीं मिलता है तबतक तो वैसे भी वे ईमानदार होने का डंका पिटते हैं, लेकिन जैसे ही उन्हें या किसी इंसान को मौका मिलता है तो बहती गंगा में हाथ धोने से वे बाज नहीं आते। यह बात सिद्धेश्वर पर इसलिए लागू नहीं होती है, क्योंकि छत्तीस वर्षो तक भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के उच्च्च पद पर रहकर भी इन्होंने अपने सफेद कुर्त्ते पर कहीं कोई दाग लगने नहीं दिया। आज के दौर में यह किसी इंसान के लिए आसान नहीं।

भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के राँची एवं पटना के महालेखाकार, बिहार के कार्यकाल से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने के बाद जब सिद्धेश्वर जी ने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया, तो इन्हें रेलवे हिंदी सलाहकार समिति का सदस्य नियुक्त किया गया। उस दौरान इन्होंने पूरे भारत का दौरा किया और राजभाषा हिंदी से संबंधित अधिनियम के क्रियान्वयन के सिलसिले में अनेक शहरों के प्रबुद्धजनों से इन्हें मिलने का मौका मिला।

प्रबुद्धजनों के जटिल प्रश्नों पर सिद्धेश्वर जी ने ऐसे अध्ययनपूर्ण उत्तर दिए हैं जो विद्वतजनों को भी विस्मय में डाल देते हैं तथा प्रष्टाओं ने भी जिज्ञासापूर्वक प्रश्न पूछकर इनके मुँह से ज्ञानवर्द्धक उत्तर प्राप्त किए हैं। निश्चित रूप से इसमें एक ओर जहाँ प्रश्नकर्ता सहित उत्तरदाता दोनों की प्रज्ञा का परिचय मिलता है, वहीं दूसरी ओर सिद्धेश्वर जी से साक्षात्कार कर तैयार यह संवाद-ग्रंथ निर्धारित कतिपय सीमित, परंतु समसामयिक विषयों का ज्ञानकोश हो गया है और इसे पाँच पुस्तकों में विभक्त कर अलग-अलग नाम देने पड़े हैं।

विषय संग्रह के केंद्र में रहकर सिद्धेश्वर जी हम सब के लिए अभिनंदनीय हो गए हैं। वैसे सच कहा जाए तो वास्तव में वर्ष 2016-2017 हिंदी साहित्य की दुनिया में एक बड़े बदलाव के लिए इसलिए भी याद किया जाएगा कि इस बदलाव के केंद्र में पाठक आ गए हैं। इस साल हिंदी लेखन में ताजगी दिखाई दे रही है और पाठकों ने उसका आगे बढ़कर

स्वागत किया है। इस लिहाज से भी सिद्धेश्वर अभिनंदनीय हैं कि इन्हीं वर्षों में इनके लेखन-कर्म में गति आई और समाज के बदलावों को लेकर इनमें एक सकारात्मक भाव देखा गया। जिस दौर में समाज सबसे तेजी से बदल रहा था, विचारों को बचाने और बदलावों को समझने में इन्होंने कोई चूक नहीं की।

सिद्धेश्वर से साक्षात्कार के आधार पर तैयार इस कृति का नाम 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' इसलिए रखा गया है, क्योंकि हिंदी के संवर्द्धन, विकास एवं प्रचार-प्रसार में एक-निष्ठ भाव से वे लगे हैं और इस प्रकार इन्हें हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर के रूप में देखा जा रहा है। छिहत्तर वर्ष की उम्र पार करने के बाद भी सिद्धेश्वर आज भी प्रतिदिन कुछ न कुछ लिख लेते हैं और इस तरह अपने स्तरीय लेखन, ओजस्वी व्याख्यानों, संगोष्ठियों एवं कार्यशालाओं में सहभागिता आदि के द्वारा वे पूरे देश में हिंदी साहित्य की समृद्धि में योगदान दे रहे हैं। दूसरी बात यह कि इनका साहित्य समाज के बंधनों को परत-दर-परत खोलता है और इनके साहित्य में जहाँ समाज की चिंता के स्वर हैं, वहीं आधुनिक भारत की पीड़ा और मातृभूमि के साथ इनका लगाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है जिसकी वजह से उसकी प्रासंगिकता सदैव बनी रहती है। दरअसल, इन्होंने अपने समय को समझा है जिसके परिणामस्वरूप ये अपने समय को गढ़ रहे हैं। ये अपनी बातों को वैसे ही रख पाते हैं।

जैसा समय है और समय का यही तकाजा भी है जिस तरह की इनकी सामाजिक मानसिकता है इनसे अपेक्षा भी यही की जाती है कि इनकी रचनाएँ जनमानस के दुख-दर्द को साझा करे। सच कहा जाए तो रचनाकार होने के नाते ये अपने दायित्व के निर्वहण में सफल हो रहे हैं और साहित्य जगत के सन्नाटे को समाप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। इनके व्यक्तित्व में एक और विशेषता यह देखने को मिलती है कि समाज को सही राह दिखाने और सच को सच कहने की इनमें हिम्मत है। इनकी बेबाक दृष्टि के भी हम सब कायल हैं। काले को काला और सफेद को सफेद कहना साहस का काम है जिसे सभी साहित्यकार नहीं कह सकते, क्योंकि अधिकांश में इसी साहस की कमी दिखती है। यही नहीं साहित्यकार अपने रचनात्मक धर्म-समाज के प्रति अपनी जवाबदेही से भी भटक गए हैं।

अपनी किताबों और रचनाओं के माध्यम से सकारात्मक सोच, ध्येय पर निगाह और हार न स्वीकार करना जैसी बातों को सलीके से पाठकों

के समक्ष प्रस्तुत करने वाले सिद्धेश्वर से किए गएं साक्षात्कार में प्रष्टाओं ने अपने प्रश्नों के जरिए जिन मुद्दों पर उनका ध्यान आकृष्ट कराया है, वे समय-समय पर हर किसी के जीवन में आते हैं। सिद्धेश्वर जी ने उनके प्रश्नों के उत्तर में उन बाधाओं से लड़ने के उपाय भी सुझाए हैं जिसकी मदद से पाठक चुनौती को चुनौती देते हुए सफलता के उच्चत्तम शिखर तक पहुँच सकते हैं।

प्रश्नकर्ताओं के भीतर से उठने वाले सवालों और मुद्दों को सिद्धेश्वर ने अपने उत्तर में जिस प्रकार विवेचन-विश्लेषण किया है उनमें लेखक के रूप में कोई अंतर्विरोध नहीं है, हाँ उनके विचारों में समाजवाद स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सच तो यह है कि सिद्धेश्वर लकीर के फकीर नहीं हैं इसलिए वह रूढ़ियों, अंधविश्वास और पाखंड को तोड़कर क्रांतिकारी साहित्य का सृजन करना पसंद करते हैं। वैसे भी जो लोग समाज में बुनियादी बदलाव करके वर्गहीन शोषण-मुक्त समाज का निर्माण करना चाहते हैं, वे अपने सिद्धांतों एवं विचारों पर अडिग रहते हैं, हालांकि मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति में समाजवादियों में आम समाजवादी विचारधारा विलुप्त होती दिख रही है। मगर सिद्धेश्वर एक ऐसे रचनाकार हैं जो समाज के किसी भी क्षेत्र में हो रही विसंगतियों, कुप्रवृत्तियों और विद्रूपताओं में हस्तक्षेप करने से बाज नहीं आते है। इस दृष्टि से इन्हें समाजविज्ञानी कहना उपयुक्त होगा, क्योंकि इनके चिंतन का मूल आधार साम्राज्यवाद और सामंतवाद का विरोध है। इसलिए प्रबुद्धजनों की धूर्तताओं, चाटूकारिता करने वालों तथा छल-छद्म करने वाले राजनेताओं को न केवल वे समझते हैं, बल्कि उसके रेशे-रेशे को उजागर कर पाठक के समक्ष रखते भी हैं। इसी प्रकार विभिन्न विषयों पर इनके द्वारा दिए गए उत्तर के माध्यम से इनके विचार की विशिष्टताएँ भी उजागर हुई हैं। तीन सौ से अधिक पृष्ठों में विभिन्न विषय वस्तु की विविधताएँ तो हैं ही साथ ही दृष्टि का विस्तार भी है। भाषा और शैली भी अपनी जगह है। प्रश्नों के उत्तर में वस्तुपरकता तो है ही, पूछे गए सवालों के प्रति निष्ठा भी है और इन्होंने प्रश्नों के तल्ख उत्तर दिए हैं। इनके उत्तर से स्पष्ट है कि इनमें साहित्यिक एवं वैचारिक समझ है। हमारी दृष्टि में व्यापकता भी है और अपने समय के लेखन को रेखांकित करने का विजन भी। विषयवार विभाजित 16 खंडों और प्रष्टाओं के परिचय से ऐसा ज्ञात होता है कि कम उम्र की शिक्षित युवती रिंकु पाण्डेय से लेकर बुजुर्ग साहित्यकार डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' तक को इस कृति में जोड़ा गया है

जिनके विषय में कहने को मैं शब्द नहीं जुटा रहा। तुलसी के पत्ते, चाहे छोटे हों या बड़े रूप और गुण की दृष्टि से सभी समान हैं। इसी प्रकार इस पुस्तक में विभिन्न विषयों पर जिन प्रबुद्धजनों ने सिद्धेश्वर के समक्ष प्रश्नों के माध्यम से अपनी जिज्ञासाएँ प्रकट कर उनसे उत्तर की अपेक्षा की है वे सभी कोटिश: धन्यवाद के पात्र हैं, क्योंकि उनके सहयोग से ही यह सारस्वत यज्ञ संपन्न हुआ।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि सिद्धेश्वर जी से साक्षात्कार के दौरान पत्रकारों एवं साहित्यकारों सहित दिल्ली एवं पटना के अतिरिक्त देश के अन्य कई शहरों के प्रबुद्धजनों द्वारा विभिन्न विषयों से संबंधित जो प्रश्न सिद्धेश्वर जी के समक्ष प्रस्तुत किए गए उनकी संख्या एक हजार एक सौ ग्यारह तक पहुँच गई है और उन प्रश्नोत्तरों को संकलित कर पुस्तक का रूप दिया गया है जिनके नाम और उसके आगे अंकित प्रश्नोत्तर की संख्या इस प्रकार है-

पुस्तक का नाम	प्रश्नोत्तर की संख्या
1. हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर	234
2. इंसानियत की धुँआती आखें	210
3. राष्ट्रीय राजनीति	213
4. वैश्विक कूटनीति	230
5. उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले	224
कुल प्रश्नोत्तरों की संख्या-	1111
	एक हजार एक सौ ग्यारह

(८) सरस्वती के साधक

खेमेवाद में बंटे साहित्य ने सिद्धेश्वर जी को सदैव अपने से अलग रखा है। साहित्य की प्रायः सभी विधाओं चाहे वह काव्य, कहानी, निबंध संस्मरण, रिपोर्ताज, पत्र-लेखन, साक्षात्कार हो, सिद्धेश्वर जी की प्रतिभा प्रत्येक क्षेत्र में है। सरस्वती के इस साधक की एक खासियत यह है कि वह समय की कीमत पहचानते हैं। इनका ताल्लुक मौजूदा राजनीति से है, किंतु आपने मूल्यों की राजनीति करना पसंद किया है। इन्हें जिस जीवन की परख है उसी पर लिखना ये पसंद करते हैं। फैशनपरस्ती को लेखन इन्हें कतई पंसद नहीं। वह जानते है कि व्यक्ति और समाज का जो यथार्थ उन्हें आंदोलित करेगा उस पर उनकी लेखनी चलेगी। कड़वी बात सीधे अंदाज में कहने वाले सिद्धेश्वर जी की बड़ी दुनिया ही नहीं, साहित्य की सामाजिक सार्थकता के प्रति उनके रचनाकार की प्रतिबद्धता के लिए भी वह सराहनीय हैं। उनका कहना है कि वह केवल पाठकों के मनोरंजन के लिए लिखना पसंद नहीं करते, बल्कि जीवन की समस्याओं और पेचीदगियों पर करते हैं और पाठकों के समक्ष अपने भावों एवं अनुभवों को प्रस्तुत करते हैं। वह लेखन को अपनी नियति मानते हैं और तन्मय होकर उसी में सुख का अहसास भी करते हैं। यही कारण है कि उनके साहित्य में कभी समाज और सामाजिकता से कथ्य व तथ्य अलग नहीं होते। वह अपने पात्रों से मजाक भले ही उड़ाते हों, किंतु उनसे हमदर्दी बराबर रखते हैं। सामंतियों की खबर लेने और शोषकों की कुकृतियों को उजागर करने से बाज नहीं आते। सिद्धेश्वर जी अपने लेखन को आमजन का एक ऐसा चेहरा बनाना चाहते हैं जिसमें उसका यश, उसकी हताशा, उसके सपने और उसकी पीड़ा अक्षरों में ढलकर समाज और सरकार तक पहुँचे। उसे एक निर्णायक मुकाम मिले। साहित्य अथवा लेखन का भी यही है और उसकी भूमिका भी सिद्धेश्वर जी पाठकों और शुभेच्छुओं के प्यार और सहयोग से इस भूमिका के निवेदन में बहुत हद तक कामयाब हुए हैं ऐसा हमारा यकीन है। हमारे यंकीन के कई ठोस प्रमाण है। उनमें एक है दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' और बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना से प्रकाशित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैचारिक पत्रिका 'वाग्वन्दना'। इसके अतिरिक्त समय-समय पर अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित इनकी रचनाएँ भी जन चेतना जागृत करने में कामयाब हुई हैं। यह इनके लेखन को सकारात्मक सोच के साथ आगे बढ़ने का संकल्प है।

सिद्धेश्वर जी का प्रयास नया इतिहास रच रहा है। वह साहित्य, शिक्षा, संस्कार, संस्कृति और जन सरोकारों की नई लकीर खींच रहा है। इनकी पत्रकारिता उसी रफ्तार से गतिशील है। वह नई सोच, प्रगति के नए आयाम और प्रस्तुति के नए अंदाज के संग आम आदमी के साथ प्रबुद्धजनों की आवाज बन रही है। सिद्धेश्वर जी और उनके संपादकत्व में प्रकाशित पत्रिकाएँ पहरूए की भूमिका में हैं। इनकी रचनात्मक यात्रा के जो सकारात्मक साल बीत रहे हैं वह काबिलेतारीफ है।

(९) स्वाभिमानी शख्सियतः

सिद्धेश्वर जी एक स्वाभिमानी साहित्यकार हैं। इनके स्वाभिमान का अर्थ है कि वह स्वयं के बारे में क्या सोचते हैं, कैसा महसूस करते हैं। खुद के बारे में इनका नजरिया कार्यालय में इनके काम करने से लेकर इनके संबंधों, माता-पिता के रूप में इनकी भूमिका, जिंदगी में कुछ कर गुजरने की चाह आदि पर असर डालता है। इनकी कामयाबी या नाकामयाबी का फैसला करने में इनके स्वाभिमान की एक अहम भूमिका है। ऊँचा स्वाभिमान इन्हें खुशहाल, संतुष्ट और मकसदों से भरी जिंदगी देता है। सच तो यह है कि जबतक कोई व्यक्ति खुद को बहुत उपयोगी नहीं समझेगा, तबतक उसमें एक ऊँचा स्वाभिमान नहीं आ सकता। सिद्धेश्वर जी एक ऐसे ही शख्सियत हैं जो खुद को समाज व देश के लिए उपयोगी समझते हैं। आखिर तभी तो इन्होंने भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग से संवर्ग 'क' की सेवा से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर अपनी सेवा पत्रकारिता, हिंदी व संस्कृत भाषा, संगठन तथा राजनीति में लगा दिया। इतिहास साक्षी है कि दुनिया के बड़े नेताओं और मनीषियों में कामयाबी के लिए अंदरूनी प्रेरणा मिली। यही अंदरूनी प्रेरणा सिद्धेश्वर जी को भी मिली जिसके परिणामस्वरूप सरकारी सेवा से स्वैच्छिक अवकाश ग्रहण कर सार्वजनिक सेवा करना उन्होंने स्वीकार किया और इसी अवधि में उन्हें बिहार सरकार ने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद का दायित्व सौंपा जहाँ उनकी अपनी अंदर की परख और शख्सियत व्यवहार के रूप में उभरकर बिहार की जनता के सामने आया जिससे प्रेरित होकर दूसरे भी उसी के अनुसार व्यवहार करते हैं। यानी सिद्धेश्वर जी का असली व्यक्तित्व सामने आया। इंनके ऊँचे स्वाभिमान में इनका आत्मविश्वास और दृढ़ता, काबिलियत और अपनी जिम्मेदारियों को कुबूल करने की प्रबल इच्छा झलकती है। वे जिंदगी

का सामना एक आशावादी की तरह करते हैं। यही कारण है कि औरों से इनके संबंध बेहतर होते हैं और जिंदगी खुशहाल होती है। सिद्धेश्वर जी जैसे लोग ही प्रेरक और संवेदनशील होते हैं और उनकी काम करने एवं जोखिम उठाने की क्षमता बढ़ जाती है। इसी स्वाभिमान की वजह से सिद्धेश्वर जी नए अवसरों और चुनौतियों के लिए सदा तैयार रहते हैं। ऐसे लोग बड़ी आसानी और समझदारी से आलोचना और तारीफ, दोनों कर सकते हैं और ले भी सकते हैं।

स्वाभिमान एक ऐसा अहसास है जो काम को समझने और करने की जानकारी से आता है। ऊँचे स्वाभिमान की वजह से ही वे लोगों की भावनाओं और उनकी कार्यक्षमता को समझकर उनसे सीधा संबंध स्थापित करते हैं। सिद्धेश्वर जी के ऊँचे स्वाभिमान का सबूत इस बात से मिलता है कि वह खुद का, दूसरों का, संपत्ति कर, कानून का, माता-पिता का और अपने देश-समाज का कैसे सम्मान करते हैं। इनका स्वाभिमान इनके भीतर संकल्प और विश्वास को मजबूत करता है और जिम्मेदारी उठाने की इच्छा पैदा करता है।

चाहे कोई भी क्षेत्र हो वही लोग अच्छे माने जाते हैं, जिनका जीवन एक खुली किताब की तरह होता है। किताब और जीवन में फर्क होता है। किताब के मूल संस्करण में हुई गलती को दूसरे संस्करण में सुधारा जा सकता है, किंतु जीवन के साथ ऐसी बात नहीं होती, क्योंकि जीवन का कोई दूसरा संस्करण नहीं होता इसलिए जीवन में एक बार की गई गलती को सुधारा नहीं जा सकता। यही वजह है कि जीवन की किताब के एक-एक पन्ने को बड़ी सावधानी से लिखना पड़ता है। सिद्धेश्वर जी एक ऐसे ही व्यक्ति हैं जो अपने जीवन की किताब के एक-एक पन्ने में बड़ी सावधानी से लिखते चले जा रहे हैं, क्योंकि वह जानते हैं कि यदि सावधानी से नहीं लिखा तो उनके सामने पछताने के अलावा कोई चारा नहीं बचता। यह बात सार्वजनिक जीवन जीने वालों पर अधिक लागू होती है, जिनकी एक-एक गतिविधि को हजारों-करोड़ों लोग गौर से देखते हैं। यही कारण है कि जीवन की किताब को बेफिक्री से खुरदरा (Rough)करते जानें वाले यानी गलत-सलत लिखते जाने वाले नेताओं के लिए राजनीतिक पुनर्वास काफी मुश्किल हो जाता है। स्वाभिमानी होने के बावजूद सिद्धेश्वर जी अपने कार्यकलापों में काफी सावधान रहते हैं। इनका प्रयास रहता है कि बिना कोई

वजह के किसी को न सताया जाए।

इनके जीवन पर नजर डालने से हमें एक और चीज़ देखने को मिलती है कि सिद्धेश्वर जी अपने काम की जगह पर खुश रहते हैं। सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक क्रिस्टोफ़र पीटरसन का मानना है कि जो लोग अपने काम की जगह पर खुश रहते हैं, वे अपनी जिंदगी में भी खुश होते हैं। पीटरसन ने अपनी चंर्चित पुस्तक 'अ प्राइमर इन पॉजिटिव साइकोलॉजी' में वह खुश रहने के सकारात्मक असर को हर जगह देखते और महसूस करते हैं। खुश कौन नहीं रहना चाहता है? किसी से भी पूछिए कि वह क्या चाहता है? उसका जवाब होगा खुशी। चाहे परिवार बनाने की बात हो या दोस्त, खुशी के लिए ही किया जाता है। यानी एक मायने में हमारी जिंदगी का लक्ष्य ही खुशी होती है। मगर हर की जिंदगी में खुशी नहीं आती है, क्योंकि वह चाहता जरूर है कि वह खुश रहे, पर काम उसके उलट कर रहा होता है। दरअसल खुशी के लिए सोच का सकारात्मक होना जरूरी है। सिद्धेश्वर जी की सोच सदैव सकारात्मक होती है। वे जो काम करते हैं उसका असर उनकी जिंदगी पर भी पड़ता है। वे अपने काम में खुशी ढूँढ़ते हैं और जब वह मिल जाती है, तो उनकी जिंदगी का मजा भी कुछ और ही हो जाता है। सिद्धेश्वर जी की जीवन-सरिता इनकी नस-नाड़ियों में इसी तरह प्रवाहित हो रही है।

(१०) सिद्धेश्वर जी के व्यवहार व आदतें

सिद्धेश्वर जी अंदर से बाहर तक भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता प्रकट करना इनके लेखन का उद्येश्य है, क्योंकि इन्होंने तामसी वृत्ति को पश्चिमी देशों द्वारा आयातित बताया है जिसके चंगुल में भारत की राजसी वृत्तियाँ फँस जाती हैं और जिन्हें भारत की सात्विक वृत्तियाँ उबारने की कोशिश करती हैं। जातियों के आपसी संघर्ष के बारे में पूछने पर सिद्धेश्वर जी बताते हैं कि जबतक जातियाँ अपनी श्रेष्ठता का घमंड नहीं त्यागतीं उनके बीच का संघर्ष थम नहीं सकता। इसके समाधान के लिए वह पुनः सुझाव प्रस्तुत करते हैं कि संघर्ष या द्वेष के स्थायी समाधान के लिए अंतर्जातीय विवाह उनकी राय में स्नेहबंध का स्थाई आधार है।

सिद्धेश्वर जी का मन काफी बड़ा है। वह, हर शख्स से जो उनसे मिलने जाता है निहायत ही खुलकर मिलते हैं। जो शख्स खासकर संस्कृत शिक्षक एक बार उनसे मिल आता है उसे हमेशा उनसे मिलने की इच्छा रखता है। दोस्तों और शुभेच्छुओं से मिलकर उनका दिल बाग-बाग हो जाता है और उनकी खुशी से खुश और उनके गम से गमगीन होते हैं। इसलिए उनके मित्र हर जाति, हर मज़हब और न सिर्फ दिल्ली और पटना में, बल्कि तमाम हिंदुस्तान में बेशुमार हैं। उनका बहुत-सा वक्त दोस्तों एवं लेखकों से मिलने में जाता है। वह दोस्तों की फरमाइशों से कभी तंग दिल नहीं होते हैं। हाँ, जो काम नहीं होने लायक होता है उसमें वह अपनी लाचारी व्यक्त कर देते हैं।

मुरव्वत और लिहाज सिद्धेश्वर जी की तबियत में हद से ज्यादा है। बावजूद इसके कि उनके पास वक्त की कमी रहती है, खासतौर पर बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद संभालने के बाद, फिर किसी लेखक की नई पुस्तक में भूमिका या शुभाशंसा लिखने के लिए आग्रह किया जाता है, तो वह नहकारते नहीं, समय निकालकर लिख ही देते हैं।

सिद्धेश्वर जी अपने उन दोस्तों व लेखकों के साथ जो अपने बाल-बच्चों के चाल-व्यवहार और आचरण की वजह से गर्दिश में पड़कर उनसे सलाह व सहयोग की अपेक्षा करते हैं उनसे उनकी सोचनीय हालत के बाद भी वैसे बाल-बच्चों से मुक्त हो जाने को कह देते हैं, उसपर रहम न करने की सलाह देते हैं। इनके मित्र राजभवन सिंह और हरिहर नाथ प्रसाद इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

इसी प्रकार अगर कोई सामाजिक व राजनीतिक कार्यकर्ता आर्थिक रूप से कमजोर होने की वजह से अपना वस्त्र तक खरीदने से मजबूर हो

जाता है, तो सिद्धेश्वर जी उसे अपना कुर्ता-पाजामा यहाँ तक कि अपनी उलेन बंडी भी उसे दे डालते हैं। उनके निवास पर आये वैसे जरूरतमंद लोगों को खुद खूंटी से कुर्ता-पाजामा उतार कर पहना दिया करते हैं।

जैसे सिद्धेश्वर जी की तबियत में समझदारी, जेहन में ऊँचाई और तेजी है, उसी तरह उनकी याददाश्त भी अत्यंत शक्तिशाली है। उन्होंने जो कुछ लिखा, वह महज याददाश्त के भरोसे पर लिखा। काव्य-चिंतन का इनका यह तरीका है कि अक्सर अहले सुबह में वह सोचा करते हैं। किसी किताब को समझने में भी वह एक अलग किस्म के व्यक्ति हैं। कैसी भी किताब हो वह अक्सर सरसरी निगाह में उसकी तह तक पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार संस्कृत बोर्ड कार्यालय में जिस तरह के पत्र या अदालत के आदेश से संबंधित दस्तावेज उनके समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं, वह अक्सर एक सरसरी नजर में उसकी तह तक पहुँच जाते हैं और फिर उसी के अनुरूप अपने अधीनस्थ अधिकारियों एवं सहायकों को उस पर आवश्यक कार्रवाई करने के आदेश दे डालते हैं।

इसी संदर्भ में एक और बात का यहाँ उल्लेख करना उचित जान पड़ता है कि बोर्ड के अध्यक्ष पद पर इनके कार्यकाल में बोर्ड की गतिविधियाँ बढ़ती गई और लोग इनके कार्यकलापों से अवगत होते गए, अदालत भी इससे अछूता नहीं रहा। नतीजा यह हुआ कि अदालतों में जो भी मामले जा रहे हैं उनमें से अधिकांश पर अदालत के आदेश प्राप्त हो रहे हैं कि बोर्ड के अध्यक्ष स्वयंवादी, प्रतिवादी से आवेदन प्राप्त होने पर विवादों को सुलझाएँ तथा उसपर आवश्यक आदेश निर्गत करें। फलस्वरूप अध्यक्ष के समक्ष यह समस्या उत्पन्न हो गई है कि उन मामलों को दोनों पक्षों से सुनकर फैसला दें। यह तो कहिए कि जिस भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग में सिद्धेश्वर जी ने छत्तीस वर्षो तक अपनी सेवा दी है उसे अर्धन्यायिक कार्यालय(Semi Judicial Office) कहा जाता है जहाँ नियमों, अधिनियमों, आदेशों, अनुदेशों की व्याख्या की जाती है। मसलन छत्तीस साल के सिद्धेश्वर के अनुभव काम आए जिसके परिणामस्वरूप मामलों को सुनने और उसके निपटारे में वह कठिनाई का अनुभव नहीं महसूस करते। अधिकांश मामलों की सुनवाई के लिए उनके पास अदालतों के द्वारा भेजा जाना इस बात का प्रमाण है कि उनकी विश्वसनीयता और साख बढ़ी है। दरअसल, हकीकत यह है कि सिद्धेश्वर जी न केवल वादी-प्रतिवादी के अधिवक्ताओं की बातों को बड़े गौर से सुनते-समझते हैं, बल्कि भलि-भाँति

अध्ययन कर फैसला देते हैं। हाँ, बेहद पेचीदा मामलों पर अपने रिटेनर अधिवक्ता अवधेश प्र. सिन्हा या कामेश्वर प्र. सिन्हा से सलाह-मशविरा अवश्य करते हैं।

सिद्धेश्वर जी बोर्ड कार्यालय के अपने कक्ष में जब शिक्षकों, परीक्षार्थियों तथा अभिभावकों से मिलकर बात करते हैं, तो उनकी बातों में उनके लेखन से कम विनोद नहीं होता है। यही वजह है कि लोग उनसे मिलने और उनकी बातें सुनने के लिए बेचैन रहते हैं। वह ज्यादा बोलते नहीं हैं, मगर जो उनकी जबान से निकलता है, लुत्फ से खाली नहीं होता है। उनकी तबियत में विनोद इस हद तक है कि अगर उनको 'बोलने वाला' न कहकर 'विनोदी प्राणी' कहा जाए, जो ज्यादा सही है। वक्तृत्व कला, हाजिर जवाबी और बात में से बात पैदा करना उनकी खास खुबियाँ हैं।

पटना के पुरन्दरपुर स्थित अपने जिस मकान में सिद्धेश्वर जी रहते हैं उसकी पहली मंजिल के अग्रभाग स्थित बरामदा में ही उनका बैठना होता है। उसमें आठ-दस कुर्सियाँ लगी रहती हैं और वहीं बगल में एक धावन-पात्र (Wash-Basin) भी लगा हुआ है और उसपर एक ग्लास रखा रहता है, ताकि आगंतुक गर्मी और लू के मौसम में भी स्वयं पानी पी सकें। कारण कि इनके यहाँ आजतक न कोई नौकर और न ही कोई दाई रहती है। इसलिए जितना बन पाता है इनकी धर्मपत्नी स्वयं अतिथियों का आवभगत करती हैं और यह करने में वह प्रसन्नता का अनुभव करती हैं। सिद्धेश्वर जी भी इस कार्य में यदा-कदा सहयोग कर दिया करते हैं। यही बरामदा और उसके बगल का एक कमरा इनका आवासीय कार्यालय भी है जिसकी वजह से बोर्ड के द्वारा गर्मी से बचने के लिए परदे लगा दिए गए हैं।

बावजूद इसके कि सिद्धेश्वर जी बहुत नहीं मात्र पेंशन तथा बोर्ड से प्राप्त केवल आतिथ्य भत्ता से ही आत्म-सम्मान और प्रतिष्ठा को कभी हाथ से जाने नहीं देते थे। घर-किराए से इनकी पत्नी खान-पान आदि की व्यवस्था कर लेती हैं और पेंशन की राशि इनकी यायावरी यात्रा तथा इनकी किताबों की छपाई में खर्च होती है। शेष राशि तो दिल्ली से प्रकाशित पत्रिका 'विचार दृष्टि' में लगाकर इन्हें आत्म संतुष्टि होती है।

पाटलिपुत्र के साहित्यकार, पत्रकार, राजनेता के अतिरिक्त सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यकर्ता इनका आतिथ्य स्वीकार कर गर्व महसूस करते हैं और सिद्धेश्वर जी भी अपने उन अतिथियों का स्वागत कर गौरव का अनुभव करते हैं। इनका स्वभाव ऐसा है कि जो लोग इनके यहाँ आते हैं

इनकी कोशिश यही रहती है कि वह भी उनके यहाँ जाएँ, मगर जो लोग इनके यहाँ नहीं आते हैं उनके यहाँ जाने से सिद्धेश्वर जी थोड़ा कतराते अवश्य हैं। राज़नेताओं खासकर मंत्रियों तथा सांसदों-विधायकों के यहाँ इनका आना-जाना बहुत कम ही हो पाता है, क्योंकि फालतू का समय जाया करने की अपेक्षा अध्ययन और लेखन में देना वह ज्यादा श्रेयष्कर समझते हैं।

सिद्धेश्वर जी की पसंदीदा खुराक सुबह के नास्ते में दही-चूड़ा तथा दिन के भोजन में दो रोटियाँ और दही के साथ हरी सब्जी। इसी तरह रात के खाने में भी दो रोटियाँ दूध के साथ, बस यही है उनका शाकाहारी भोजन। हाँ, इतना जरूर है मौसम के अनुरूप उपलब्ध फल वह अवश्य खाते हैं। फलों में आम और अमरूद उन्हें बेहद पसंद हैं। किसी शादी-विवाह के अवसर पर या किसी ऐसे समारोह में जहाँ भोजन की व्यवस्था रहती है, एक मिठाई अथवा कुछ फल खाकर ही वह क्षमा माँग लेते हैं कारण कि डालडा से बनी चीजें इन्हें बिल्कुल पसंद नहीं। इसलिए ऐसे समारोहों से वापस लौटकर घर में दो रोटियाँ खा लेना इनकी आदत बन गई है।

सिद्धेश्वर जी एक किसान के बेटे हैं। कृषि वृत्ति उनका पैत्रिक व्यवसाय रहा है, किंतु इनके पिताश्री स्व. इन्द्रदेव प्रसाद तकरीबन दो दशक तक ग्राम पंचायत, बसनियावाँ के मुखिया रहे और बड़ी निष्ठा एवं ईमानदारी से पंचायत में रहकर ग्रामीणों की सेवा की। कहा जाता है कि व्यक्तित्व में आचरण और व्यवहार का महत्व तो होता ही है शारीरिक गुणों का भी महत्व होता है। इसके अतिरिक्त वातावरण और पालन-पोषण का प्रभाव भी इसके निर्माण में बड़ा भाग लेते हैं। वातावरण और पालन-पोषण व्यक्तित्व को पूरा ही नहीं करते, दबाते-निखारते, बिगाड़ते-बनाते हैं। सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में ज़ो गुण हैं, वह पैतृक गुणों की वजह से भी है। उनके यहाँ तक पहुँचने का जो रहस्य है उसे उनके परिवार में ढूँढ़ना चाहिए। उनके शारीरिक गुण वेशभूषा, आचार-विचार की जो झलकियाँ मिलती हैं, उनसे ज्ञात होता है कि उनके यहाँ किसी अभाव या दोष की आड़ नहीं ली गई, कोई अभाव समृद्धि बनकर नहीं आया। उन्हें शैशव के मनोरंजनों यौवन के आनंद की बहारों, सबमें हिस्सा मिला। साधारण किसान होते हुए भी इनके पिताजी ने इन्हें न केवल कला की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ पटना कॉलेज में शिक्षा-दीक्षा दिलाई, बल्कि उसके जैक्सन छात्रावास में रहने का खर्च दिया। इससे सिद्धेश्वर जी के आकर्षण का भेद समझ में आ जाता है। अत: उनके व्यक्तित्व में सबसे अधिक महत्व इसी पिष्टपोषण का है, जो एक सुलझे साहित्यकार व पत्रकार की पहचान है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि सिद्धेश्वर जी के बचपन में कोई ऐसा गहरा रोमानी प्रभाव नहीं मिलता जो आरंभ से उनके व्यक्तित्व को एक साँचे में ढाल देता। सिद्धेश्वर जी पर माताश्री फूलझार प्रसाद का भी प्रभाव इसलिए पड़ा कि वह भी स्नेहमयी माँ थीं जो अत्यंत सीधी-सादी महिला थीं। सिद्धेश्वर जी को इसीलिए चिंता मुक्ति और विलासिता मिली। सिद्धेश्वर जी की रिश्ते में एक भाभी थीं जिन्होंने इनका खूब ख्याल रखा। कुछ इन्हीं सब पारिवारिक विशिष्टताओं की वजह से भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को पूरी तरह सिद्धेश्वर जी ने ग्रहण किया।

इसीलिए सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व को मैं संपूर्ण और सजीव व्यक्तित्व मानता हूँ जिसका प्रत्येक पहलू आकर्षक और रचनात्मक है। उनकी रोमानियत उन्हें अनुभवों और अनुभूतियों के नए-नए प्रदेशों में ली जाती हैं। उनके व्यक्तित्व में आत्मसम्मान की बहारें हैं और मस्ती एवं प्रसन्नता का सामान भी। उनकी कविता में विचार की गहरी पूँजी है, जो कवि सुलभ लालित्य के साथ प्रस्तुत की गई है। वह साहित्य की परंपराओं से एकदम विद्रोही न होते हुए भी उनके पाबंद नहीं। वह जीवन की अनुभूतियों में कोई अलौकिकता उत्पन्न न करते हैं, जीवन का कोई दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत न कर पा रहे हैं, परंतु उनका दार्शनिक और विद्वतापूर्ण प्रवृत्ति हमें जिंदगी को समझने और सोचने पर विवश करती है। वह साहित्य को समय और समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। और इस प्रकार वह जीवन की एक महत्वपूर्ण सेवा कर रहे हैं। वह गहरे और उथल, प्रत्येक प्रकार के चित्र तैयार कर सकते हैं इनमें देव-पुत्रों की सी विचार-विशालता और जौहरियों की सी मीनाकरी, दोनों मिल जाती हैं। उनकी कविता हमें जीवन में संपन्नता, संतोष और शांति की ओर नहीं ले जाती, बल्कि एक सुक्ष्म-सी मानसिक उलझन, एक बेचैनी और एक स्वतंत्र दृष्टिकोण की ओर ले जाती हैं। उनके निबंधों में हमें कलाकार का वह सत्य और साहस मिलता है, जो अपने पर के प्रत्येक आवरण को उतार फेंकने के लिए तैयार है, वैसा ही नजर आना चाहंता है, जैसा वह है। सिद्धेश्वर जी की इस पृष्ठभूमि के बाद भी उनमें एक खास चीज है कि वह अध्यात्म में गहरी आस्था रखते हैं। वह कहते हैं कि वह आध्यात्मिक हैं तो वह यह कहना नहीं भूलते कि वह धार्मिक नहीं है। वे संस्कार और रीतियों को मानते हैं, लेकिन वे धार्मिक कतई नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि वे एक सर्वोच्च शक्ति के अस्तित्व को नहीं मानते, जो यह दुनिया चला रही है, इस सर्वोच्च शक्ति

पर उनका पूरा विश्वास है। उन्हें पता है कि जो कुछ वे कर रहे हैं, वह यह शक्ति देख रही है और उसके अनुसार ही वह उनके साथ भी पेश आएगी, वह यह शक्ति देख रही है और उसके अनुसार ही वह उनके साथ भी पेश आएगी, उसी प्रकार वह उनकी मदद करेगी, उनका ध्यान रखेगी। वह कुछ भी करें, कुछ भी सोंचे, पर यह शक्ति उन्हें समय-समय पर सही निर्णय लेने में उन्हें मदद भी करती है। अपने स्वास्थ्य पर ध्यान देने वाले सिद्धेश्वर जी उस धर्म को मानते हैं जो उन्हें कर्त्तव्यों को निभाना और माता-पिता के अतिरिक्त बड़े-बुजुर्गो को सम्मान देना सिखाता है।

सच मानिए सिद्धेश्वर जी का अस्तित्व इसलिए है कि ये किसी भी विषय पर सोच सकते हैं। सोचने के लिए वैसे दिमाग तो सभी के पास रहता है, पर असल उपलब्धि तो इसके इस्तेमाल समुचित रूप से करने में है। ये अपने दिमाग का समुचित इस्तेमाल करते हैं और अपने विचारों को कागज के पन्नों पर उतारने के लिए अपनी कलम का इस्तेमाल करते हैं। इनका प्रयास पारिवारिक तो है ही सामाजिक और राष्ट्रीय भी है जिससे इनकी सफलता का माप संचालित होता है। यही कारण है कि अपने निवास चाहे पुरन्दरपुर, पटना का 'बसेरा' हो या ए.जी. कॉलोनी, पटना का 'संस्कृति' उसके आस-पास से लेकर, घर के बाहर जो भी मिलते हैं उनसे अच्छा व्यवहार, सड़क पर दूसरों के बारे में सोचते हुए वाहन संचालन तथा अपने कार्यो का ख्याल रखते हुए दूसरे का नुकसान न करने का निर्णय भी अवश्य लेते हैं और इनके आगे से वाहन चलाते हुए आने वालों की आँख पर भी इनकी नजर जाती है, ताकि अपने को वे बचा सकें और दूसरों को भी बचने के लिए सावधान कर सकें। जब कभी वे अपनी गाड़ी में बैठे रहते हैं तब भी अपने चालक भाई राजेन्द्र जी को सावधान करते रहते हैं। यही नहीं यदि कोई परेशानी में इनसे सलाह की अपेक्षा करते हैं, तो उसका साथ भी वे अवश्य देते हैं, क्योंकि आमतौर पर सांसारिक दृष्टि से ये व्यवहारिक हैं।

दरअसल, सिद्धेश्वर जी हमेशा यह मानते रहे हैं कि सामाजिक जिम्मेदारियों का महत्व व्यक्तिगत जिम्मेदारियों की अपेक्षा कहीं अधिक है। हमारा रिश्ता परिवार के साथ-साथ समाज से भी है, क्योंकि परिवार भी समाज की इकाई है। जीवन का उद्येश्य सिर्फ अपने और अपने परिवार के भरण-पोषण और उसके प्रति अपने कर्त्तव्यों के निर्वहण में ही खत्म नहीं हो जाता, बल्कि जीवन की सार्थकता इसी में है कि हम अपने अतिरिक्त कितनों के काम आए। हमारी संपन्नता और समृद्धि से कितने लोग

लाभान्वित हुए, कितनों का भला हुआ, महत्व इस बात का है। सच पूछा जाए, तो मानव जीवन का वास्तविक सुख और समृद्धि इसी में निहित है। एक समृद्ध और अनुशासित समाज का निर्माण तभी हो सकता है जब समाज का प्रत्येक सदस्य अपनी जिम्मेदारी को समझे और उसका पूरा निर्वह्ण करे। सिद्धेश्वर जी अपनी इसी जिम्मेदारी को समझते हुए अपने दायित्व का निर्वह्ण कर रहे हैं। यही कारण है कि वह अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को सीमित करके उन कार्यो को वरीयता देते हैं जो सार्वजनिक व जनहित में हैं। इसी में वह सबका हित समझते हैं। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड में भी कुछ इसी भाव से प्रेरित होकर इन्होंने अपना योगदान दिया और निष्ठा से अपने कर्त्तव्य का निर्वह्ण किया।

(११) नैतिक मूल्यों की रक्षा के पक्षधर

अक्सर भारतीय समाज और सरकार के साथ-साथ आम लोग दोहरे मापदंड पर आधारित जीवन जीते नजर आते हैं। मसलन, सरकार ने शराब के विज्ञापन प्रसारित करने पर रोक लगा रखी है, लेकिन हर दिन टी.वी. चैनल पर मशहूर शराब ब्रांड के विज्ञापनों को देखा जा सकता है। लेकिन दिखावा किया जाता है कि ये शराब का नहीं, बल्कि सोडे का विज्ञापन है। इसी तरह सरकार ने कई उपग्रह चैनलों को अश्लील बताकर उन पर बैन लगा रखा है, फिर भी उप विज्ञापनों का क्या, जिनमें ऐसे भद्दे दृश्य दिखाए जाते हैं और जिन्हें बच्चों या बड़ों के साथ देखने पर शर्मिंदगी का अहसास होने लगता है। यदि यही दिखाना है, तो सरकार द्वारा नैतिकता का यह ढोंग क्यों किया जा रहा है, सिद्धेश्वर जी के लिए यह चिंता की बात है। सिद्धेश्वर जी का यह मानना बिल्कुल सच है कि बदलते परिवेश में समाज में भौतिकवादी तथा व्यवसायिक रूझान बढ़ता जा रहा है। लोगों में भावनाओं की जगह निजी स्वार्थो ने ले ली है। एक समय पास-पड़ोस के सुख-दुख में शामिल होने में लोग अपनी जिम्मेदारी समझते थे, वहीं अब उपभोक्ता और बाजारवाद के घोड़े पर सवार आधुनिक लोग यह कहने में गर्व का अनुभव करते हैं कि वे अपने पड़ोसी को नहीं जानते। नतीजतन व्यक्ति का जीवन भावनारहित और एकांगी बनता जा रहा है। वह धन अर्जित कर उसके माध्यम से आधुनिक सुख सुविधाएँ तो जुटा ले रहा है, लेकिन अपने बच्चों को सामाजिकता और नैतिकता के बारे में अवगत कराने के लिए उसके पास समय नहीं है। न तो बच्चों को अभिभावकों से अपनापन मिल रहा है और

न ही भावनात्मक संबल। सिद्धेश्वर जी इसे आधुनिक समाज के लिए चिंता का विषय मानते हैं और इसके निदान के लिए यह बेहद जरूरी समझते हैं कि अभिभावक बच्चों को नैतिक मूल्य और संस्कार दें, ताकि अभिभावकों के प्रति बच्चों में लगाव उत्पन्न हो और सम्मान की भावना जाग्रत हो सके। नैतिक मूल्य और संस्कार के अभाव में बच्चे जब बड़े होते हैं, तो अभिभावक उन्हें बोझ लगने लगते हैं। उनके द्वारा माँ-बाप को परेशान और अपमानित किया जाता है या फिर उन्हें वृद्धाश्रम पहुँचा दिया जाता हैं तब उन्हें बच्चों की परवरिश में की गई गलती का अहसास होता है।

दरअसल, हम भारतवासी बहुत परिणाम में विदेशी भावों से आक्रांत हो रहे हैं जो हमारे जातीय धर्म की संपूर्ण जीवनी शक्ति को चुका डालते हैं। यही कारण है कि आज हम इतने पिछड़े हुए हैं। सिद्धेश्वर जी का स्पष्ट मत है कि हममें से 99 प्रतिशत आदमी संपूर्णत: पाश्चात्य भावों और उपादानों से विनिर्मित हो रहे हैं। अगर हम लोग राष्ट्रीय गौरव के उच्च शिखर पर आरोहण करना चाहते हैं, तो हमें यह भी याद रखना होगा कि हमें पाश्चात्य देशों से बहुत कुछ सीखना शेष है। पाश्चात्य देशों से हमें उनका शिल्प और विज्ञान सीखना होगा, उनके यहाँ के भौतिक विज्ञानों को सीखना होगा।

सिद्धेश्वर जी की चिंता यह है कि एक ओर जहाँ लड़कियाँ व महिलाओं को विकास की राह दिखाकर ऊँचे आदर्शों एवं विचारों पर चलने का पाठ पढ़ाया जा रहा है, तो वहीं दूसरी ओर अशिक्षित एवं अत्याधुनिक कहलाने वाली पश्चिमी सभ्यता के बाह्य आडंबरों से प्रभावित होने वाले नवयुवक और नवयुवतियाँ अपनी सहज कामुकता, नग्नता एवं अश्लीलता का सहारा लेकर समाज में विषाक्त वातावरण तथा विकृत मानसिकता फैलाना चाहते हैं। इसके परिणामस्वरूप भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति जिसकी जड़ें कितनी ही मजबूत क्यों न हों, बार-बार के प्रहार से हिल सकती हैं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता का संबंध जाति, भाषा और क्षेत्र से है। हम अपने ही समाज को अगड़े वर्ग में बाँट देते हैं और अपने स्वार्थ की सिद्धि करने लगते हैं। ऐसे में नैतिकता कहाँ से आएगी?

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मौजूदा दौर में हमारे शिक्षक, शिक्षार्थी, अभिभावक, राजनीतिक दलों के सदस्य, अधिकारी व कर्मचारी सभी मानवीय मूल्यों के निरंतर पतन और नैतिकता में आई गिरावट से लोग संकट के दौर से गुजर रहे हैं। सिद्धेश्वर जी का कहना है कि इसके परिणामस्वरूप सामाजिक मूल्यों में ह्रास की वजह से हमारे बीच सामाजिक

पार्थक्य पनप रहा है। वर्तमान में अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए हमें किसी भी सीमा तक गिरने में हिचकिचाहट महसूस नहीं होती। हम दिखावा करके स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं। भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने में हमारे अंदर की मानवीयता कुण्ठित हो रही है। ऐसी विकट और भयावह स्थिति में सिद्धेश्वर जी का सुझाव है कि मानवता को जीवित रखते हुए और उसे पतन के मार्ग से बचाते हुए तथा उसे सन्मार्ग की ओर उन्मुख करने के लिए आवश्यक है एक सार्वभौमिक भाषा की जो निरक्षर व साक्षर के भेद को समाप्त कर उसे नैतिक मूल्यों की ओर वापस ले आए और जीवन के प्रत्येक मोड़ पर अच्छाई और बुराई के भेद को स्पष्ट करने की शक्ति प्रदान करे। सिद्धेश्वर जी का सामाजिक चिंतन बताता है कि आर्थिक विषमताओं के जंगल में मानव मूल्यों के दावानल भस्म कर रहा है। राजनीतिक स्वार्थो की आँधी ने मानवता को दूर फेंक दिया है। नौकरशाही की क्रूरता ने इंसानियत ने आग्रहों को घायल कर दिया है। दुख इस बात का है कि सभ्यता के मायने ही विकृत कर दिए गए हैं। इस दृष्टिकोण से उनका अभिमत है कि मनुष्य व्यक्तिगत स्वार्थ के दायरे से बाहर आकर सामूहिक चिंतन करे। देश की वर्तमान सामाजिक स्थिति देखकर सिद्धेश्वर जी को महान चिंतक एवं विचारक मार्क-ट्वेन का यह कथन याद आ रहा है- 'भारत मानवता का पालना है, मानववाणी की जन्मस्थली है, इतिहास की माँ है, गाथाओं की दादी और परंपराओं की परदादी है।' इस देश के लोगों को ट्वेन की ये बातें याद रखनी चाहिए।

मनुष्य व्यक्तिगत स्तर पर चिंतन और मननशील प्राणी होने के साथ-ही-साथ 'स्व' से स्वेतरोन्मुख होते ही सामाजिक प्राणी भी कहलाने लगता है। अपने जननी-जनक, बंधु-बांधव और आत्मीयजनों के अतिरिक्त अपने चतुर्दिक नैसर्गिक वातावरण के साथ भी अपने रागात्मक संबंध वह ज्ञात-अज्ञात रूप से बनाता जाता है। उसकी अभिज्ञा के सामानांतर उसकी संवेदना की परिधि भी व्यापक होने लगती है। भ्रम और ममतेर का अंतराल समाप्त हो जाता है। 'अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसामृ, 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम्' जैसी अधिसंख्य उक्तियाँ इसी तथ्य की दिशा में इंगित करती हैं। सिद्धेश्वर जी साधनात्मक और भावनात्मक रूप से इन्हीं आदर्शो से प्रभावित होकर नैतिकता और मानवता के पक्षधर हैं और अपना आचरण और व्यवहार भी उसी के अनुरूप बनाए हुए हैं। साहचर्य, सानिध्य, समर्पण, प्रीति, जिजीविषा आदि मनोभाव एवं मानवीय प्रवृत्तियाँ इसी के परिणामस्वरूप

इनके व्यक्तित्व में देखी जाती हैं। सिद्धेश्वर जी इसी वजह से सहृदयी हैं और व्यक्ति की उपेक्षा नहीं करते हैं। संस्कृत शिक्षा बोर्ड के दफ्तर में हर दिन अंदर एक सौ लोगों से मिलना और उनका सुनकर निदान निकालना इन्हीं के बूते की बात थी। जो साधन-संबंध को महत्व देगा वह किसी की उपेक्षा नहीं करेगा। शरीर से ही साधना भी की जाती है। इसीलिए यह शरीर निकम्मा नहीं है। सवाल इसे सार्थक करने का है सिद्धेश्वर जी इसी के मद्देनजर साधन की सार्थकता साध्य-प्राप्ति में मानते हैं।

यह दृश्यमान संसार निरंतर गतिशील है। इस निरंतर गतिशीलता को देखकर ही सिद्धेश्वर जी 'गंतव्य' की बात करते हैं। चैरैवेति-चैरैवेति के सिद्धांत पर चलने के आदि सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि जो गंतव्य को नहीं पहचानते, वे धोखे में हैं। इसलिए वह काल की महिमा और उसकी शक्ति को पहचानते हैं। इसी काल पर ध्यान रखकर ही वे जागतिक धन-वैभव एवं एश्वर्य को तुच्छ समझते हैं। जहाँ छत्तीसों राग बजाते हैं, कहाँ कौए पाए जाते हैं। जो फूलता हैं, वह मुरझाता भी है, कोई बेचने वाला भी नहीं हैं। सिद्धेश्वर जी इस नश्वरता को समझते हुए भी इसमें अमरत्व को ढूँढ़ने की साधना करते हैं। इसलिए इनके यहाँ भाव-भवति प्रधान है। पूजा, अर्चना, श्रवण, कीर्तन, वंदन, प्रवचन आदि का समावेश इनके यहाँ इसी भाव-भवति के ही अंतर्गत मिल जाता है कहीं मंदिर-मस्जिद, गिरिजा या गुरुद्वारा जाने की जरूरत नहीं।

कबीर के बारे में जिस प्रकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि 'वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, हिंदु होकर भी हिंदु नहीं थे, वे साधु होकर भी साधु(अगृहस्थ) नहीं थे, वै वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे, वे कुछ भगवान की ओर से ही न्यारे बनाकर भेजे गये थे। ठीक उसी प्रकार सिद्धेश्वर जी हिंदू होकर भी हिंदू नहीं हैं। इनमें गलत परंपरा के प्रति अकारण असम्मान नहीं है। लेकिन वे अपने अनुभव को झुठलाते नहीं हैं। यही कारण है कि वे किसी धर्म पर प्रश्न नहीं उठाते हैं और न ही लोगों के द्वारा सुझाए गए पूर्व मार्गो को अपर्याप्त समझा कर त्रुटियों की ओर संकेत करते हैं। सिद्धेश्वर जी का साहित्य इस बात का साक्षी है कि उनकी रचनाओं पर इन सबका गहरा एवं सम्मिलित प्रभाव है। इनके काव्य में ज्ञानात्मक भावना के साथ-साथ भावात्मक भावना का पुष्ट पक्ष उपलब्ध होता है। इनके काव्य संग्रह 'सुर नहीं सुरीले', 'जागरण के स्वर', 'पतझर की सांझ', 'यह सच है', 'कवि और कविता' तथा 'बुजुर्गों की जिंदगी' की रचनाएँ मानवीय संवेदना से युक्त कर देते हैं।

भारतीय संस्कृति प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्र चिंतन की पूरी छूट देती है। चिंतन पर कोई प्रतिबंध नहीं है। किसी भी सिद्धांत अथवा आस्था-सूत्र को सर्वमान्य मानने की बाध्यता नहीं है। अतः सिद्धेश्वर जी ने इन प्रश्नों पर मुक्त रूप से विचार किया है। इन्होंने वैयक्तिक विचार-स्वातंत्र्य को सर्वोपरि माना है। इनके लिए साध्य सर्वोपरि है, साधन नहीं। साथ ही, यह मानने में भी इन्हें कोई हिचक नहीं है कि दूसरे व्यक्ति द्वारा अपनाई गई पद्धति भी शुद्ध और सम्यक् हो सकती है। वेदों, उपनिषदों एवं श्रीमद्भाग्वदगीता में बारंबार इस विचार की पुष्टि की गई है।

सिद्धेश्वर जी का यह स्पष्ट मत है कि वस्तुतः सभी धार्मिक मतों एवं दार्शनिक परंपराओं के मूल सिद्धांत समरूप हैं जिन्हें भारतीय दार्शनिकों ने 'यम' की संज्ञा दी है, यथा-सत्य, अहिंसा, सदाचरण, परोपकार एवं कल्याण की भावना। किसी भी धर्म या संप्रदाय में इन मूल तत्त्वों से उद्गार एवं सुक्तियाँ भारतीय जनमानस को तुरंत आकर्षित करती हैं। इसी की वजह से वैचारिक तल पर भारतीय जनमानस में किसी भी धार्मिक मत के प्रति कोई विद्वेष कभी नहीं रहा। हमारे संविधान में जब भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को धर्मनिरपेक्ष घोषित किया गया, तब इसी ग्राह्यता के कारण जन-साधारण के स्तर पर इसका कोई विरोध नहीं हुआ। आज भी इस सिद्धांत की स्वीकृति बनी हुई है। सिद्धेश्वर जी की इस मायने में उदारवादी चेतना है और इसी उदारवादी चेतना की वजह से ये भारतीय पाठकों के अत्यंत प्रिय हैं। समन्वित संस्कृति के सिद्धेश्वर जी पोषक हैं। यह परंपरा वर्तमान पीढ़ी के पास थाती स्वरूप है जिससे अक्षुण्ण रखना तथा इसका संवर्द्धन करना ये अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते हैं।

सिद्धेश्वर जी को इस बात को लेकर चिंता है कि विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र माने जाने वाले भारतीय राजनीति अवसरवादियों की चारागाह, अपराधियों की पनाहगाह और अकूत धन अर्जित करने का जरिया बनती जा रही है। राजनीति से समता, संपन्नता और स्वराज जैसे गुण छिटककर दूर होते जा रहे हैं और उनके स्थान पर हिंसा, छल-प्रपंच, फरेब, जुगाड़, सिफारिश, रिश्वत, अपहरण, गबन और घोटाले जैसे विकृत विध्वंसक तत्व में लिपटी राजनीति का कुरूप चेहरा उभरता नजर आ रहा है। जनतांत्रिक संस्थाएँ ध्वस्त होती दीख रही हैं। हजारों वर्षो से चली आ रही सामाजिक एकता तार-तार होती जा रही है। सांप्रदायिक विद्वेषी और विश्वासघाती नेताओं के संरक्षण में अलगाववादी ताकतें खुला खेल रही हैं। महंगी से जर्जर

होते समाज को बाजार भरोसे छोड़ देना क्या यही नैतिकता है? जनता से बड़े-बड़े वायदे कर सत्ता की कुर्सी पर विराजमान होते ही उन्हें विकास के नाम पर ढेंगा दिखा देना क्या नैतिकता है?

हिसार और जिंद जिलों की सीमा से लगे मिर्चपुर गाँव में मात्र कुत्ता भौंकने पर एक दलित और उसकी विकलांग बेटी को उनके घर में बंद करके जिंदा जला देना तथा मृतकों का दो दिन तक संस्कार न होने देने पर शासन-प्रशासन के द्वारा चुप्पी साध लेना क्या नैतिकता थी? नेता ऐशो-आराम भरी जिंदगी जीते रहें और गरीब की झोपड़ी में जलने वाली डिबिया में तेल भी न हो, गरीब के पास ओढ़ने की एक फटी चादर भी न हो और नेता नोटों की मालाएँ ओढ़ते फिरें क्या यही है नैतिकता? इन्हीं सब बातों को लेकर सिद्धेश्वर जी की चिंता स्वाभाविक है।

मनुष्य का नैतिक पतन जिस तेजी से हो रहा है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अब सामाजिक मूल्यों का, जिसे हम सहेज कर रखना चाहते हैं, उसका कोई महत्व नहीं रह गया है। भूतकाल को कोई याद नहीं रखना चाहता। वर्तमान में किसी से कोई मतलब नहीं है और भविष्य की कोई चिंता ही नहीं है। फिर हम कैसे सहेज कर रख पाएँगे अपनी मर्यादा को? स्वतंत्रता के नाम पर बच्चे अपने माता-पिता की हत्या करने से बाज नहीं आ पा रहे हैं, जिन हाथों में भाई अपनी बहनों से हर वर्ष राखी बँधवाते थे वही हाथ उसकी सुरक्षा करने की बजाय उन्हीं की हत्या कर उनके खून से रंग रहे हैं। क्या हम अपने आदर्शों से भटक कर जो कार्य कर रहे हैं वह उचित है? सिद्धेश्वर जी इसे अनुचित मानते हुए हर कार्य के लिए समाज में एक दिशा-निर्देश की आवश्यकता जताते हैं, जिससे सामाजिक मूल्यों की रक्षा हो सके।

आज की इस आपाधापी भरी जिंदगी में सुबह होने से पहले ही सड़कों पर लोग पैसा कमाने की तलाश में निकल पड़ते हैं पापी पेट की खातिर। ऐसे में गरीबों और असहायों की ओर कितने लोगों की नजर जा पाती है। जो लाचार व भूखे हैं, मानसिक रूप से विकलांग हैं से व्यक्ति जब पेट की खातिर कुछ माँगते हैं, तो कितने ही लोग उन्हें कुछ देने की बजाय दुत्कार कर भगा देते हैं। अंत में उनमें से कुछ सड़कों पर फेंके हुए कचरे के ढेर से कुछ चुनकर खाने को वे मजबूर हो जाते हैं, तब लगता है कि इस धरती से मानवता बहुत ही तेजी से लुप्त हो रही है। ऐसी स्थिति को देखकर सिद्धेश्वर जी यह महसूस करते हैं कि अगर इसी रफ्तार से मानवता

का ह्रास होता रहा, तो वह दिन दूर नहीं, जब आदमी राह चलते आदमी को लूटने लगेगा ऐसे में हमें दुखियों और लाचारों के साथ वैसे ही पेश आना चाहिए, जैसे अपनों के साथ आते हैं। सिद्धेश्वर जी असल जीवन उसी को मानते हैं, जिसमें परायों के लिए भी हमदर्दी हो, मदद करने की भावना हो। इसी वक्त कतील शिफाई की दो पंक्तियाँ मुझे स्मरण हो रही हैं जो आज के हालात पर सटीक बैठती हैं:

निकलकर हैरां काबा से अगर मिलता न मैख़ाना,
तो ठुकराए हुए इंसा खुदा जाने कहाँ जाते हैं।

सभी धर्मों व संस्कृतियों में काल की गति को सर्वोपरि माना गया है, मगर इसके साथ जीवन को, मनुष्यता को लगातार उच्चतम स्तर पर ले जाने की अपेक्षा भी की गई है। उच्चता के स्तर पर मनुष्य लगातार अनुभवों से गुजरते रहने पर ही पहुँचता है। सिद्धेश्वर जी भी इसी रास्ते से गुजरते हुए उच्च स्तर पर पहुँच रहे हैं। चरैवेति-चरैवेति से भी उन्होंनें यही सीख ली है कि निरंतर गतिमान रहो। ज्ञानमार्गी बनो। वह सर्व ज्ञानमार्ग पर गतिमान रहे हैं। अनुभव के हर सोपान पर, हर अध्याय पर वह शिक्षित हो रहे हैं, गतिमान हो रहे हैं। आखिर इसका क्या कारण है? दरअसल, सिद्धेश्वर सदाचारी हैं। ईमानदारी और जिम्मेदारी की ताकत से ही उन्होंने सदाचार को सशक्त किया है। आज के समय में व्यक्ति को सदाचारी होना आवश्यक है, तभी वह सामाजिक और पारिवारिक दायित्वों का निर्वहण कर सकता है।

सिद्धेश्वर जी एक ऐसे साहित्यकार हैं, जो समाज और युग के आगे-चलते हैं। समाज और युग के आगे-आगे चलने और चलते रहने की ईमानदारी, योग्यता और क्षमता भी उनमें है। जीवन की भीषण आपदाओं से जुझती जनता के भोलेपन और लाचारी को वह भलि-भाँति समझते हैं। सामाजिक रूढ़ियों, पाखंडों, धर्मांधताओं, कुरीतियों, अत्याचारों और राजनीतिक षड्यंत्रों तथा आमजन के साथ किए जा रहे फरेब प्रवचन, धोखाधड़ी पर उनकी नजर बराबर रहती है। जनहित से विमुख परिणति की एक भी हरकत उन्हें सह्य नहीं होती, तमाम जनविरोधी उपक्रमों का विरोध वह करते हैं। उनके क्रिया-कलाप और लेखन इस बात के प्रमाण हैं। सच तो यह है कि केवल निबंध, कविता, रिपोर्ट, आलेख आदि लिखकर ही अपना दायित्व पूर्ण कर लेना वह नहीं समझते, बल्कि जब भी बारी आती है तो सभा-संगोष्ठियों के माध्यम से परिचर्चा आदि का आयोजन कर अपने भावों को अभिव्यक्त करते हैं।

राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण और समाज व देश की ज्वलंत समस्याओं का बोध सिद्धेश्वर जी में इतना दुरूस्त और स्पष्ट है कि उसके चित्रण में इन्हें कोई दुविधा और दिक्कत नहीं होती। यह परिवेश के प्रति उनकी जागृति का ही परिचायक है। इनकी पूरी सृजन-यात्रा एक ही विषय बोध के आस-पास नाना तरह से पूरी हुई है। हाँ, यह बात अवश्य है कि उस विषय का आयाम इतना विस्तृत है कि उनमें सारे के सारे परिदृश्य समा जाते हैं। सिद्धेश्वर जी के मित्रों व शुभेच्छुओं से जब बात होती है, तो उससे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि वह परम स्वाभिमानी, ईमानदारी, उदार और साहित्य सृजन में अनुभूति की मौलिकता के पक्षधर हैं, इसलिए अक्सरहा कटु सच बोलते-लिखते हैं। कभी कोई खेमेबाजी और आत्मविज्ञापन के धंधे में संलग्न नहीं होते हैं। जिन भ्रष्टाचारियों एवं बेईमानों की बखिया उधेड़ी उसका खामियाजा उन्हें भुगतना पड़ा। सिद्धेश्वर जी अपने पाखंडी समकालीनों की तरह नहीं हैं, जो सोचते कुछ और लिखते कुछ और हैं, या जो लिखते हैं उसे अपने जीवन में नहीं उतारते हैं। सिद्धेश्वर जी की कथनी व करनी में समानता दिखती है। अपने लक्ष्य के साथ कभी नाइंसाफी नहीं करते हैं। जिस प्रकार इनके लेखन का वास्तविक लक्ष्य आमजन की पीड़ा और दुख-दर्दो का सहभागी होना है, उसी प्रकार संस्कृत बोर्ड में रहकर उसके बुनियादी स्वरूप और उद्येश्य से संस्कृत शिक्षकों को उन्होंने परिचित कराना समझा। निरंतर संस्कृत के सवालों पर सोचना इनकी आदत बन गई है। अक्सरहां वह कहते हैं कि संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष का जो दायित्व इन्हें दिया गया यदि संस्कृत के सवालों पर वह सोचना बंद कर दें, तो वे अपने कर्त्तव्य से दूर हो जाएँगे और साथ ही मात्र व्यक्ति बनने की वजह से अपनी भूमिका के प्रभावी चरित्र से वंचित हो जाएँगे। उनका कहना है कि जो लोग वैचारिक जीवन से बाहर चले जाते हैं उनका सामाजिक चरित्र और पहचान भी समाप्त हो जाती है। सिद्धेश्वर जी का वैचारिक सोच ही उन्हें, सामाजिक पहचान दिलाता है। इनका ध्यान अपने माहौल में व्याप्त आज की अपसंस्कृति की ओर जाता है, क्योंकि श्रम के स्तर पर संगठित और एकीकृत मनुष्यता आज क्षेत्रीय, भाषिक, जातीय, धार्मिक आदि अस्मिताओं के आधार पर इस तरह विभाजित है कि जीवन के केंद्रीय एवं असली मामलों पर उनकी सहमति लगभग पूरी तरह अनुपस्थित नजर आती है। मानव अस्तित्व के प्रत्येक स्तर पर व्यक्तिपरक विचार और आत्मकेंद्रित प्राथमिकताएँ हावी हैं। इसे मात्र औद्योगीकरण या शहरीकरण का परिणाम नहीं कहा जा सकता।

(१२) कर्मवादी सिद्धेश्वर: नाम से भी बड़े हैं जिनके काम

सिद्धेश्वर जी काम से बाज नहीं आते, बल्कि उसे सबको बताकर अपना प्रचार करते हैं कि वे मेहनत कर रहे हैं। वे खुद को प्रस्तुत करते हैं, तभी उन्हें सफलता हाथ आती है। आज के परिदृश्य में मेहनतकश को केवल काम ही नहीं करना है, बल्कि उसे आम जनता को बताना भी है। अगर खुद को वे नहीं बताएँगे, तो पीछे रह जाएँगे। जिंदगी के हर क्षेत्र में आज विपणन हो रहा है। इसी स्वयं को प्रस्तुत करने की वजह से आए दिन लोग इनकी तारीफों के पुल बाँधते नजर आते हैं।

दरअसल, सिद्धेश्वर जी पूर्ण रूप से कर्मवादी हैं। वे भाग्य के भरोसे नहीं रहते। उनका कहना है भाग्य भरोसे रहना कायरों की कायरता को बढ़ाना है। भाग्यवाद कायरों, अज्ञानियों, धर्म के ठेकेदारों की देन है। उनका कहना है कि हमें प्रंकृति से इस माने में शिक्षा लेनी चाहिए, जैसे सूर्य अरबों वर्षो से स्वयं जल कर विश्व को प्रकाश ही नहीं, बल्कि जीवन प्रदान कर रहा है, चाँद अपनी शीतलता दे रहा है, हवा अनवरत बह रही है, तारे अनंत अपना प्रकाश बिखेर रहे हैं, ये सभी कर्म का ही तो पाठ पढ़ा रहे हैं। जीवन का दूसरा नाम ही कर्म है। नदी, झरना, सागर, पहाड़ सभी अपने कर्मो के प्रति सतत् जागरूक रहकर विश्व को बरकरार रखते हैं। रामचरित से हमें कर्म की यही शिक्षा मिलती है कि स्वयं मर्यादा पुरषोत्तम राम ने कर्म के बल पर राज्य छोड़कर दानवों का नाश करके मानव मात्र का कल्याण किया। यहाँ तक कि वानर, भालू और गिलहरी ने भी अपने-अपने कार्य मुश्तैदी के साथ संपन्न किए। इसी प्रकार जटायु ने भी कर्म और अपने कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाया। आज आदमी कर्म के बल पर ही चाँद या मंगल पर पहुँचना चाह रहा है। संतोष यादव का एवरेस्ट की चोटी पर पैर रखना क्या कर्म का पाठ नहीं सिखाता है? कल्पना चावला, सुनिता विलियम, डॉ. स्टीफन हॉकिंस-ये सब विभूतियाँ जगत में एक नयी मील का पत्थर के समान हैं। यह सब कर्म का सार है।

साल 2010 के जनवरी महीने में 16 साल की एक लड़की विश्व रेकॉर्ड बनाने के हौसले के साथ घर से निकल पड़ी। अमेरिका की एब्बी संदरलैंड ने तय किया है कि वह समंदर के रास्ते पूरे विश्व के चक्कर काटेगी। संदरलैंड के मुताबिक इस दौरान उसे कई तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, लेकिन उफान मारती लहरें उसके हौसले पर पानी फेर सकी है। वह हिंद महासागर से भी गुजरी। सिद्धेश्वर जी इस लड़की

के बारे में बताते हैं कि वह हमारे उसी समाज की लड़की है जहाँ लड़कियों को अकेली घर से बाहर निकलने की इज़ाजत नहीं दी जाती, वहीं महज 16 साल की यह अमेरिकन बाला अकेली ही समंदर के रास्ते दुनिया के सफ़र पर निकल पड़ी है। उसके साथ मे न तो उसके पिता हैं, न भाई, न चाचा, न ही कोई दोस्त। सफर पर बिल्कुल अकेली। सुनकर हैरानी होती है और सोचकर रोमांच भी हो आता है। आखिर इसे उस लड़की का कर्म नहीं तो और क्या कहें?

वस्तुत: सफलता का रास्ता थोड़ा कठिन और लंबा जरूर होता है, लेकिन परिश्रम से जो सफलता मिलती है, उसकी सुगंध एक लंबे अरसे तक रहती है। जीवन में मुश्किल वक्त भी आता हैं उतार-चढ़ाव जीवन का स्वाभाविक नियम है। इसलिए मुश्किलों का सामना मन में यह विश्वास रखकर करें कि इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। सिद्धेश्वर जी इसी सिद्धांत पर चलते हैं।

सिद्धेश्वर जी की जिंदगी में मुश्किलें भी कम नहीं आईं। जब वह मध्य विद्यालय के छात्र थे एक पुरानी दीवार के गिरने से उसके मलवे के नीचे वे दब गए। फिर काफी जद्दोजहद के बाद उन्हें निकाला गया, तो वे अचेतावस्था में थे। उन्हें शीघ्र ही पटना मेडिकल कॉलेज अस्पताल पहुँचाया गया जहाँ से वे चंगे होकर उन्होंने छुट्टी पाई। इसी प्रकार जब उन्होंने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का पद संभाला, तो भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों के अतिरिक्त शिक्षा माफियों ने उनपर कहर ढाया जिस पर उन्होंने अपनी सूझबूझ, क्षमता, निष्ठा एवं ईमानदारी के बल पर संघर्ष करते हुए विजय पाई।

यह सच ही कहा गया है कि मुश्किलें भी जिंदगी में बहुत कुछ सिखा जाती हैं। जिसने बचपन से ही जटिल स्थितियों का सामना करना सीख लिया हो, वह जिंदगी के हर इम्तिहान में शत-प्रतिशत अंकों से उत्तीर्ण हो जाता है। शिक्षाविद् तथा रचनाकार सिद्धेश्वर जी की जिंदगी भी कुछ ऐसी ही रही है। भारतीय लेखा एवं लेखापरीक्षा विभाग की सेवावधि में बेहद आराम और सुकून भरी जिंदगी जीने के बाद संस्कृत बोर्ड के संघर्ष भरे दिन इनके लिए वाकई मुश्किल थे, किंतु उसे भी उन्होंने पार किया। वैसे जिंदगी की जंग पर विजय पाना कोई आसान काम नहीं होता।

साहित्य पढ़ने-लिखने में इन्हें सेवावधि के दौरान ही आदत लग गई थी और वह आज भी बरकरार है। इसी दौरान पत्रिका के प्रकाशन में भी

हर कदम पर कई मुश्किलें चुनौतियों के रूप में सामने आईं। कुछ तो उनके आगे घुटने टेक दी, लेकिन कुछ ऐसी भी रही जिसे डटकर मुकाबला की और लंबे संघर्ष के बाद उस मुसीबत से वे बाहर निकल आए। खैर, जो हो, उबड़-खाबड़ पथरीली राहों से गुजरते हुए आज वे जिस मुकाम पर हैं उसमें साहित्य-सृजन और पत्रकारिता का काम निरंतर चल रहा है। जिंदगी में मुश्किलें इतनी पड़ीं कि आसां हो गई। ये सामान्य सहज कदमों से प्रगति पथ पर आगे बढ़े और ऐसा करने से ही आप सहजता से कामयाबी की मंजिल की ओर बढ़ते जा रहे हैं। आखिर तभी तो उनके व्यक्तित्व में विनम्रता और ऊर्जस्विता का अद्‌भूत समन्वय, उनका उच्च संस्कार का आत्मबल उनके हर कार्यकलाप में देखा जा सकता है।

आत्मविश्वास का आभामंडल, पुरुषार्थ की दृढ़ता की आँखों में चमक, सिद्धांतप्रियता को कर्म में चरितार्थ करने की जिजीविषा से आप्लावित सिद्धेश्वर जैसे व्यक्तित्व विरले ही होते हैं। उनके हृदय में राष्ट्रभाषा हिंदी सहित संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति सम्मान का भाव भरा है। आखिर तभी तो बिहार के लोकप्रिय मुख्यमंत्री नीतीश कुमार जी के आग्रह पर इन्हें बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के अध्यक्ष पद की स्वीकृति देनी पड़ी। बिहार और संस्कृत भाषा के उन्नयन की चाहत ने इन्हें बिहार खींच लाया। वैसे सच कहा जाए, तो केवल चाहत ही काफी नहीं है, बल्कि बिहार आने के बाद ये साधना में लग गए, क्योंकि इनमें अभीप्सा के साथ-साथ संकल्प भी है जो साधना के लिए आवश्यक है।

भारतीय दर्शन, कुछ अपवादों को छोड़ कर, मूलतः आध्यात्मिक है। प्रायः सारे संप्रदाय एक आध्यात्मिक परमसत्ता में विश्वास करते हैं और उसे प्राप्त कर लेना जीवन का आत्यंतिक लक्ष्य मानते हैं। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रमुख तीन साधन हैं:-ज्ञान, कर्म और भक्ति। इनमें से सिद्धेश्वर जी ने कर्म का ही चयन किया है और उसी कर्म को पूजा समझते हुए साधनारत हैं। ये एक कर्मठ कार्यकर्ता, सांस्कृतिक दृष्टि संपन्न नेता, सज्जनता और स्पष्ट क्रियाशैली के अग्रदूत हैं। इनकी साहित्यिक एवं सामाजिक-राजनीतिक अभिरुचि ने इनके इन गुणों के साथ मिलकर एक अलौकिक क्रियाशीलता को जन्म दिया है जो अनवरत कार्यरत रहने पर भी थकान का अनुभव नहीं करती। इनके कार्य कुछ ऐसी राहों का निर्माण करते हैं, जिसे लोग पारदर्शिता कहते हैं।

पुरुषार्थ सिद्धेश्वर जी की प्रवृत्ति है और दुस्साहस इनकी कार्यशैली।

अपनी दृष्टि में जो इन्हें सही मालूम हुआ, उस पर अकेले चल पड़ते हैं। हालांकि यह भी सही है कि लोकतांत्रिक सोच की वजह से जब कभी कुछ लोग इनके समक्ष सुझाव प्रस्तुत करते हैं, तो उनकी ये सुनते हैं और अमल में लाते हैं। उनकी यह शैली उन्हें अन्य लोगों से बहुत ऊँची स्थिति में खड़ा करती है और वे अनुकरणीय बन जाते हैं। नियमबद्ध और समयबद्धता का कठोरता के साथ लागू करने की वजह से इनके बहुत सारे शुभेच्छु एवं मित्र भी कुछ कष्ट झेल जाते हैं। किंतु थोड़ी देर बाद विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इस समाज में कोई तो है जो हमें छड़ी के सहारे इन बद्धतामूलक नियमों की महत्ता और फायदा बता रहा है। तब धन्यवाद दिए बिना उसे नहीं रहा जाता।

कहा जाता है कि अवसर सभी के पास जाता है। कुछ लोग उसे पहचान लेते हैं, कुछ लोग और अच्छे समय की प्रतीक्षा में रहते हैं। इस तरह कुछ पहचान कर भी नहीं पहचानते। अक्सर लोग दूसरे अवसर की प्रतीक्षा करते हैं। सौभाग्य से वह अवसर आ भी जाए, तो फिर दूसरे अवसर की उन्हें प्रतीक्षा रहती है। सिद्धेश्वर जी को जब अवसर मिलता है, तो वह उसे पहचान लेते हैं और काम करना प्रारंभ कर देते हैं। यही कारण है कि इन्हें निरर्थक भटकना नहीं पड़ता। इसे ही कहते हैं 'बहती गंगा में हाथ धोना' सिद्धेश्वर जी अवसरज्ञाता हैं।

कर्म, अकर्म और विकर्म-गीता में इन तीन प्रकार के कर्म बताए गए हैं। उचित ध्येय के लिए किया जाने वाला जिसमें की कोई गलत भावना न हो या जो किसी के अधिकारों का हनन न करता हो, वह कर्म कहलाता है। सिद्धेश्वर जी इसी कर्म के रास्ते चल रहे हैं। कर्महीनता या निष्क्रियता जिसे अकर्म कहा जाता है या जो कार्य धर्म पर मानवता के विपरीत है, जिसे विकर्म कहा जाता है, इन दोनों से बचते हुए सिद्धेश्वर जी कर्म कर रहे हैं जो वास्तव में तप है। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के जिस अध्यक्ष पद पर इन्हें बैठाया गया बिना किसी स्वार्थ की भावना रखे हुए उन्होंने दूसरों का कार्य किया और साथ ही अपने किए हुए कर्म को ही वे तप मानते हैं। गीता के इस ज्ञान को आत्मसात कर ही समाज तथा बोर्ड में व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करने का उन्होंने प्रयास किया। अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखते हैं, ताकि इनका अधिक से अधिक समय रचनात्मक कार्यों में लग सकें जिससे समाज का भला हो। इसी में वे बड़प्पन समझते हैं न कि आवश्यकता से अधिक धन व वैभवपूर्ण संसाधनों को एकत्र कर लेने में।

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व की एक विशेषता यह भी हैं कि वे गम को पी लेते हैं इसलिए इन्हें ज्यादा दर्द नहीं होता। किसी ने कहा भी है:-

गम पी लो ज्यादा दर्द नहीं होता
दर्द पी लो जीवन सर्द नहीं होता।

कहा जाता है कि कान जो सुनते हैं वह सब आँखों को सच नहीं लगता। प्राय: समाचार-पत्रों को देखकर लगता है कि अमुक आदमी ऐसा हो सकता है। लेकिन सच मानिए पत्र-पत्रिकाओं तथा टी.वी. चैनलों में जितनी बातें सिद्धेश्वर जी के बारे में सुनी या पढ़ी जाती हैं उससे कहीं अधिक उनसे मिलने के बाद वे मालूम पड़ते हैं। जीवन के प्रति सिद्धेश्वर जी की अपार लालसा है। शरीर से तो वे अभी बहत्तर के पड़ाव पर हैं, पर उनका मन अभी किशोर ही है। ऐसा लगता है कि मन से वे बूढ़े कभी नहीं होंगे। मनुष्य का नाम वाणी इस चराचर जगत में अकेला द्वितीय नहीं है। उसके सुख-दुख में उसकी सहचरी एक दुनिया है। बर्नार्ड शॉ से किसी ने पूछा कि आपकी शवयात्रा में कौन शामिल होगा, आपने तो किसी को बक्शा नहीं।' शॉ ने उत्तर दिया वो जानवरों का वह विशाल संख्या जिनका मांस मैंने नहीं खाया। शॉ निरामिष थे। बड़ा रचनाकार मूक और अशक्त को वाणी देता है। मुझे लगता है कि सिद्धेश्वर जी से भी यदि वह प्रश्न किया जाए, तो उनका उत्तर बर्नार्ड शॉ के जैसा ही होगा, क्योंकि वे भी जन्मकाल से ही निरामिष हैं। सिद्धेश्वर जी प्रतिबद्ध लेखक हैं, लेकिन वे अपनी आँखिन देखी अपनी अनुभूति के आग्रह पर विचारधारा को तोड़ते भी हैं। वे समाजवादी पार्टियों और उसके नेताओं की खबर भी लेते हैं।

दरअसल, जैसा कि मैंने पूर्व में कहा सिद्धेश्वर जी ने जीवन को अच्छी तरह समझ लिया है इसलिए इनका जीवन समय की तेज रफ्तार के साथ बहता जा रहा है, क्योंकि जीवन के महान उद्येश्य इनके मन में घर कर गया है। 'उद्यानंते पुरुष नावयानं' उपनिषद् के इस छोटे से सूत्र को इन्होंने समझा है। जिससे मनुष्य को प्रेरणा दी गई है कि हे पुरुष तुम ऊपर उठो कभी नीचे मत गिरो। लक्ष्य ऊँचा होगा तो हमारी गति भी ऊँचाई की ओर ही होगी।

यह जिंदगी केवल सुख-सुविधाओं के पीछे पागल बनकर खराब करने के लिए नहीं है। गाड़ी, बंगला, नौकर, टी.वी., कम्प्यूटर, इंटरनेट ये सब आपकी प्रगति में साधन और सहायक हो सकते हैं, साध्य नहीं। इसलिए इन्हें साध्य मानने की भूल कभी नहीं करना चाहिए। सिद्धेश्वर जी अपनी

जिंदगी के इसी दूरगामी और ऊँचे लक्ष्य को हमेशा याद रखकर कर्म करते जा रहे हैं और उसी पर अपनी तीव्र दृष्टि टिकाए हैं। साहस का दीप प्रज्ज्वलित कर सिद्धि प्राप्त करना वे बखूबी जानते हैं। इनमें शक्ति है, साहस है, धैर्य है, शौर्य है जिसके बल पर ही अपनी सिद्ध यात्रा हेतु निकल पड़े हैं और इनके रास्ते में एक नहीं अनेक मिल जाते हैं। मैं भी उन्हीं रास्तों का एक राही हूँ। वैरागी को वैरागी और वैज्ञानिक को वैज्ञानिक मिल ही जाते हैं। जहाँ तमन्ना होती है, रास्ते निकल आते हैं और हिम्मत होती है, तो लोग पीछे आ जाते हैं। किसी कवि की निम्न पंक्तियाँ इस संदर्भ में सटीक बैठती हैं:-

आईना देखा तो क्या कमाल किया,
बनों खुद आईना कि दुनिया चेहरा देखे।

चाणक्य ने कहा था-कोई व्यक्ति अपने कर्मो से महान होता है जन्म से नहीं। सिद्धेश्वर जी ने अपने अबतक के जीवन में इसे सच कर दिखाया है। उनकी कथनी और करनी में कभी कोई अंतर नहीं दिखाई देता है। साथ ही उन्होंने यह भी साबित कर दिया है कि ढोंग-ढकोसले के सर्वत्र व्याप्त आचरण के बीच हर तरह के छल-कपट से परहेज करने वाला इनसान ही असलियत में बड़ा होता है।

इसलिए मुझे यह कहने के लिए विवश होना पड़ रहा है कि कर्मवादी सिद्धेश्वर एक ऐसे ही व्यक्ति हैं जिनके नाम से भी बड़े हैं इनके काम।

(१३) सिद्धेश्वर और हिंदी पत्रकारिता

पत्र-पत्रिकाएँ समाज के सर्वांगीण विकास को दर्शाने तथा राष्ट्रीय चेतना करने वाला आईना का काम करती हैं। पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित करना आसान है, किंतु तेवर के साथ स्तरीय पत्रिका प्रकाशित करते रहना सबके बूते की बात नहीं है। सिद्धेश्वर जी की सोच और नेतृत्व में पिछले तकरीबन दो-ढाई दशक से कई पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक, नई दिल्ली के अंतर्गत कार्यालय, प्रधान महालेखाकार(लेखा परीक्षा) बिहार, पटना से प्रकाशित विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' के सिद्धेश्वर जी न केवल संस्थापक-संपादक रहे, बल्कि जब तक वे कार्यालय में रहे इसे दम-खम के साथ इन्होंने निकाला और आज भी 'प्रहरी' को इनका मार्गदर्शन तो मिल ही रहा है, इसे अपना रचनात्मक सहयोग भी प्रदान कर रहे हैं। इसके पूर्व 31 अक्टूबर, 1980 से 1996 तक की अवधि में जब वे लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल के सिद्धांतों एवं विचारों की समर्पित संस्था पटेल सेवा संघ, बिहार के महासचिव पद पर रहे संघ के द्वारा प्रत्येक वर्ष सरदार पटेल के जन्म दिवस पर एक सुरुचिपूर्ण स्मारिका का प्रकाशन कर उन्होंने एक उदाहरण प्रस्तुत किया। सरदार वल्लभभाई पटेल को एक लंबे अरसे से ही राष्ट्र निर्माता और लौह पुरुष के नाम से देशवासी संबो करते आ रहे हैं और उनके जन्म दिवस को राष्ट्र निर्माण दिवस के रूप में स्मरण करते आ रहे हैं, मगर मुझे लगता है कि राष्ट्र निर्माण के संकल्प को शब्दों से देशवासी जितना दुहरा रहे हैं कार्यों से उतना ही वे उसे झूठला रहे हैं, कारण कि देश के कई छोटे-बड़े मुद्दों पर हमारी राष्ट्रीयता की भावना विखराव की स्थिति में है। ऐसी विषम स्थिति में भी सिद्धेश्वर जी एक आशावादी होने के नाते राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना जागरित करने का काम वे लगातार करते जा रहे हैं।

अपनी सेवावधि के दौरान ही जबतक 'विचार दृष्टि' के नाम का अनुमोदन और निबंधन भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक(Registrar of News Papers of India)के कार्यालय से नहीं हो पाया था, अक्टूबर,1997 से सितंबर,1999 तक 'राष्ट्रीय विचार पत्रिका' नाम्नी पत्रिका प्रकाशित करते रहे। फिर भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक से निबंधन होने के बाद अक्टूबर,1999 से अबतक नियमित रूप से दिल्ली से 'विचार दृष्टि' राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका के रूप में इनके संपादकत्व में प्रकाशित की जा

रही है। पन्द्रह साल किसी भी अव्यावसायिकं पत्रिका की जिंदगी में खासा महत्वपूर्ण होता है। बाजारवाद और उदारवाद की इस महादौड़ में जब सब कुछ नए रंगरूप में परिभाषित हो रहा है, तब 'विचार दृष्टि' के पन्द्रह साल का यह सफ़र अक्षरों और शब्दों की उस सत्ता की जय है, जो आम आदमी के पक्ष में खड़ी है। दरअसल, यही मूलाधार है जो सिद्धेश्वर जी के खुद को होने और 'विचार दृष्टि' के साथ-साथ हिंदी पत्रकारिता की अस्मिता का अहसास कराती है। इसमें तनीक संदेह नहीं कि 'विचार दृष्टि' सकारात्मक विचारधारावाली एक वैचारिक पत्रिका है जिसमें देशवासियों की आत्मा धड़कती है और इसमें आम आदमी की आवाज, उनका सुख-दुख, उनके सपने, उनकी जटिलता और उनका जुझारूपन अक्षरों में ढलकर लोगों तक पहुँच रहा है। यह इस बात का द्योतक है कि इस पत्रिका को देश के प्रबुद्ध एवं सुधिजनों का जो अजस्र-स्नेह और प्यार मिल रहा है उससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'विचार दृष्टि' अपने उद्येश्य की तरफ तेजी से और सही दिशा में काम कर रही है। यही नहीं यह इस बात का परिचायक है कि यह पत्रिका हिंदी का होते हुए भी ने केवल हिंदी भाषी क्षेत्रों व राज्यों में, बल्कि दक्षिण भारत के चारों राज्यों सहित पश्चिमी एवं पूर्वोत्तर राज्यों में भी विचार, भाषा, दर्शन और चेतना के लिए अलग से पहचानी और पढ़ी जाती है। शिक्षा, शौर्य और अध्यात्म से भी इसकी अलग पहचान है और इस प्रकार कुछ झंझावतों से गुजरते हुए 'विचार दृष्टि' आज विश्वसनीयता के शिखर पर है। देशवासियों को सच कहने की हिम्मत को चरितार्थ करते हुए यह अब कस्बों एवं गाँवों की गलियों में भी पैठ बनाने का प्रयास कर रही है।

'विचार दृष्टि' मौजूदा दौर की ऐसी पत्रिका है जिसकी दृष्टि साफ, पूर्वाग्रहमुक्त और राष्ट्रीयता की सांस्कृतिक अवधारणा से विनिर्मित है। यह उन मूल्यों के प्रति अडिग और आस्थावान है जिसकी समसामयिकता का लोप होता जा रहा है और बाजारवादी सभ्यता जिसे तिरस्कृत कर रही है। व्यावसायिकता की इस मरूभूमि में पत्रकारिता की इस मूल्यपरक कसौटी पर 'विचार दृष्टि' उन गिने-चुने नखलिस्तानों की तरह है, जिसने हाँफती-भागती मनुष्यता के लिए थोड़ा पानी बचा रखा है। इसके अग्रलेखों व लेखों में राजनीति से आक्रांत होकर बिखरते समाज, साहित्य, संचार माध्यम, धर्म और संस्कृति के सार्वकालिक सरोकारों के मानदंडों से जुड़े सवाल हैं, उभरते प्रश्न और संदर्भ से जुड़ी समस्याएँ हैं।

'विचार दृष्टि' के लिए पत्रकारिता निराशा का कर्त्तव्य भार नहीं है।

इसलिए इसका दायरा वहाँ तक है, जहाँ अभी भी थोड़ी रोशनी बाकी है। यह उन आवाजों को सुनती है जिनपर भरोसा किया जा सकता है। इसे विश्वास है कि अँधेरा व्यक्ति समाज की नियति नहीं है। यही कारण है कि इसमें वर्णित विषयों पर रचनाकारों के लेखन विषयपरकता को समेटते हुए भी अपना प्रभाव विषय-परक न डालकर दृष्टि और विचार-परक डालते हैं।

दरअसल, पत्रकारिता के लिए संपादकीय समझ और दृढ़ता जरूरी है। 'विचार दृष्टि' के प्रकाशन में इसके संपादक सिद्धेश्वर ने इसी संपादकीय समझ और दृढ़ता का परिचय दिया है। इनकी यह कोशिश हो रही है कि बीते वर्षो में समय चक्र की अबाध रूप से निकलने वाली प्रवृत्ति पर अंकुश लगाए जाएँ और समर्थ आदमी एवं असमर्थ आदमी का निम्न भिन्नार्थक शोषक न बने। 'विचार दृष्टि' अपने उद्येश्यपूर्ण जीवन और मन तथा आत्मा की तृप्ति के लिए उसी तरह स्वच्छ और सत्साहित्य व अन्य सामग्री पाठकों को मुहैया कर रही है। बिना कोई सरकारी सुविधा और सहयोग के यह पत्रिका अपने उद्येश्यपूर्ण संघर्ष के लिए अग्रसर है यह सोचकर कि-

कहीं न कहीं से, किसी न किसी को,
शुरुआत तो करनी होगी,
भारत की तस्वीर, बदलनी होगी,
अपनी लड़ाई, खुद लड़नी होगी।

सिद्धेश्वर जी एक ऐसे पत्रकार हैं, जो पत्रकारिता के माध्यम से राजनीतिक एवं सामाजिक स्थितियों में बदलाव चाहते हैं। अबतक जो कुछ इन्होंने पत्र-पत्रिकाओं में लिखा है उतना ही सामाजिक एवं राजनीतिक मुद्दों पर लोगों के सामने अपनी बात उसी रूप में रखने की कोशिश की है। सच को सच कहने में इन्होंने कभी कोताही नहीं की। अपनी पत्रिका 'विचार दृष्टि', विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' तथा बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना द्वारा प्रकाशित 'वाग्वन्दना' के जरिए हिंदी पत्रकारिता को सामाजिक परिवर्तन के माध्यम से आगे ले जाने की बात वे करते हैं। यही नहीं, देशज संस्कारों और सामाजिक सरोकारों के प्रति इनके मन में जो भाव हैं वे अनुकरणीय हैं और जिनकी आत्मा में समाजवादी एवं गाँधी विचारधारा रची-बसी है। इनका अभी भी मानना है कि कलम सत्ता को सलाम करने की जगह सरोकार बनती है। वे संपादकीय श्रेष्ठता के मान को भी कम नहीं होने देते हैं। इनके द्वारा लिखे अग्रलेख 'समकालीन संपादकीय' नाम्नी पुस्तक में संकलित हैं। इस पुस्तक की भूमिका पत्रकारिता जगत के शिखर पुरुष प्रभाव जोशी जी

ने लिखी और शुभाशंसा एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के अध्यक्ष तथा नई दुनिया के संपादक आलोक मेहता ने। इस पुस्तक से गुजरने पर ऐसा लगता है कि सिद्धेश्वर जी ने पत्रकारिता की छाया को इतना बड़ा कर दिया है कि सभी विचारधाराएँ और आदर्श उसके भीतर समा जाते हैं। सिद्धेश्वर जी दरअसल, इस पुस्तक के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि वर्तमान व्यवस्था को बदलने की जिम्मेवारी सभी का है, मगर यह सही है कि अगर ऊपरवाले नियामक या व्यवस्था ठीक हो जाए तो सब ठीक हो सकता है, क्योंकि आम आदमी चाह कर भी व्यवस्था को बदल नहीं सकता, व्यवस्था ही उसे बदल देगी। हाँ, इतना जरूर है कि आम आदमी चाहे, तो व्यवस्थापक को बदल सकता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं की आज की नियामक शक्ति राजनीतिक है। देश का संचालन राजनीति के माध्यम से हो रहा है, मगर नियामक शक्ति से आम आदमी की आस्था भंग हो चुकी है, सिद्धेश्वर जी की यह स्पष्ट धारणा है कि पत्रकारिता के माध्यम से राजनीति की दिशा और दशा बदली जा सकती है, क्योंकि वही जनतंत्र का चौथा स्तभ माना गया है। समझा जाता है कि जनतंत्र व्यक्ति की स्वाधीनता का प्रबल पक्षधर है। स्वाधीन पत्रकारिता जनता के हृदय की धड़कन की प्रतिध्वनि को बेबाक अभिव्यक्त करती है। इस अर्थ में सिद्धेश्वर जी द्वारा की जा रही पत्रकारिता जनतंत्र के लिए पूरी कर्त्तव्यनिष्ठा और राष्ट्र निर्माण की पवित्र बौद्धिक ऊर्जा से तालुक रखती है।

सिद्धेश्वर जी ने चाहे दिल्ली से प्रकाशित पत्रिका 'विचार दृष्टि' हो या विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' अथवा संस्कृत बोर्ड से प्रकाशित द्विभाषिक पत्रिका 'वाग्वन्दना' उसे अपने समय के, अपनी परंपरा के स्थापित लेखकों को सम्मिलित करने के साथ समकालीन लेखकों को भी उसी तरजीह के साथ स्थान दिया। संपादक के रूप में उनकी यही इच्छा रही कि हर अंक में किसी न किसी युवा लेखक को उनकी रचनाओं के साथ सामने लाया जाए ताकि उनकी कोई तस्वीर बने, उसका सचित्र परिचय हो और साथ उनकी समीक्षात्मक टिप्पणी भी हो। जाहिर है इतनी सारी चीजों के साथ होने पर ही कोई व्यक्ति 'रेखांकित' हो सकता है।

आज मुझे प्रसन्नता और गहरा संतोष भी है कि संस्कृत बोर्ड की 'वाग्वन्दना' पत्रिका के साथ-साथ 'संस्कृत संजीवनी' स्मारिका में मेरे सुझावों को उन्होंने भरपूर तरजीह दिया और सम्मान भी। दरअसल, सिद्धेश्वर उम्र के लिहाज से बुजुर्ग तो हैं ही, साथ ही वाकई अनुभवी और दूरदर्शी भी हैं।

पाठकों को उन्होंने निरंतर अपनी सकारात्मक और गंभीर राय दी। यह सब मेरे उत्साहवर्द्धन का सबब बना। मैंने देखा सिद्धेश्वर जी ने श्रेष्ठता को ही साहित्य का सर्वोच्च मानक माना और लेखक व कवि की स्पंदनशील संवेदना को सर्वाधिक महत्व दिया।

सिद्धेश्वर जी के संपादकत्व में प्रकाशित प्राय: सभी पत्रिकाओं में विविधताओं का इन्द्रधनुष, स्वप्नबोध और मानवीय मूल्यों के प्रति गहरी आस्था मैंने पाई और इनके समय में आए बदलाव को गहराई से मैंने पहचाना। एक रचनाकार के वास्तविक जीवन और उसकी रचनाओं में आपस में कैसे रिश्ता होता है, अरसे से व्यक्त या अव्यक्त रूप में यह प्रश्न एक लेखक या पाठक के तौर पर मेरे भीतर जिज्ञासा उत्पन्न करता रहा है। मैंने उन्हीं अभिप्रायों को पकड़ा, जिनकी अनुमति सिद्धेश्वर जी का अपना यथार्थ और रचना का रूप-बंध एक साथ हमने पाया। मिथक और यथार्थ, प्रेरणा और संयोग, जीवन और जीवन विरोधी वास्तविकताएँ- ये मिश्रण अक्सर एक अधूरीपूर्णता पा लेते हैं, मगर सिद्धेश्वर जी के जीवन और उनकी रचनाओं में निष्ठा और एकरूपता की वजह से मैं इनकी ओर खींचता चला गया और अपने-आपको भी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और वैचारिक वास्तविकताओं से जोड़ने की कोशिश करता रहा, क्योंकि सिद्धेश्वर जी से संपर्क के दौरान मैंने यह पाया कि ऐसे उत्तरदाई व्यक्तित्व पर किसी को भी भरोसा हो सकता है और अबतक मैं अपने इस आकलन पर कायम हूँ।

(१४) सिद्धेश्वर जी की सादगी

साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में एक से बढ़कर एक दिग्गज साहित्यकार और पत्रकार हुए हैं, मगर जो बात सिद्धेश्वर जी को अन्य साहित्यकारों व पत्रकारों से अलग करती है, वह है उनकी सादगी। किसान-पुत्र के रूप में जन्म लेने वाले सिद्धेश्वर ने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्य मंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष हो जाने के बाद भी अबतक किसान व सामाजिक कार्यकर्ता की तरह सादा जीवन जी रहे हैं। एकदम साधारण कुर्ता-पायजामा और चप्पल पहनते उन्हें आज भी कोई देख सकता है। लेकिन सच्चाई यह है कि ऊपर से सरल स्वभाव और सादगी से भरे जीवन जीने वाले सिद्धेश्वर जी की गहराई और प्रशासनिक क्षमता को आँक पाना इतना आसान भी नहीं है। जो लोग बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में इनके कार्यकलापों को नजदीक से देखा-सुना है, इनकी प्रशासनिक क्षमता और विद्वता से परिचित हो चुके हैं।

दरअसल, सिद्धेश्वर जी द्वारा सादगी से रहने के पीछे प्रमुख कारण यह है कि वे परंपरा को गहराई से मानते हैं। यही कारण है कि प्रयोग करने और नई-नई चीजों को अपनाने की जरूरत उन्हें महसूस नहीं होती है। लेकिन यहीं यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि सिद्धेश्वर जी परंपरा के कट्टर पोषक भी नहीं हैं और न ही वे परंपरा और प्रयोग को एक-दूसरे का विरोधी मानते हैं। कई बार ऐसा मजाक उड़ाते पाए गए हैं और आधुनिकता के साथ प्रयोग करते हैं। यह जरूरी समझा जाना चाहिए कि परंपरा कभी-भी प्रयोग के विरोध में नहीं होती। परंपरा जमा हुआ पानी नहीं, बल्कि बहती हुई नदी है, जो लगातार अपनी नियति तलाशती रहती है। इस प्रकार देखा जाए, तो सिद्धेश्वर जी परंपरा से एकदम चिपके हुए नहीं हैं।

सिद्धेश्वर जी वर्तमान में जीने वाले व्यक्ति हैं। वे न तो अतीत की परछाइयों से घिरे रहते हैं और न ही भविष्य के सपने में डूबे रहते हैं, वे हर वक्त समाज, साहित्य, संगठन और पत्रकारिता के रंग में डूबे रहते हैं। राजनीति भी करते हैं, तो केवल मूल्यों की। किसी और दुनिया से कोई ताल्लुक नहीं है। परिवार और घर-गृहस्थी के सभी कार्य उनकी पत्नी बच्ची प्रसाद करती हैं। साहित्य और पत्रकारिता के सिवाय उनकी जिंदगी में और कुछ भी नहीं। संसार, धर्म, अर्थ, उपार्जन, बच्चों को बड़ा करना, लड़कियाँ ब्याहना ये सारी चीजें उनके लिए मामूली थीं, जो अपने समय से एक के बाद एक होते चले गए। यही कारण है कि उन्हें सादगी भरा जीवन बेहद पसंद है।

साहित्य और पत्रकारिता की दुनियां में सिद्धेश्वर जी खुद को उस तरह सुरक्षित महसूस करते हैं जिस तरह पानी में मछली। अशोक वाजपेयी की पंक्तियों को कुछ हेर-फेर के साथ सिद्धेश्वर जी के बारे में यों कहा जा सकता है-

अपनी रफ्तार से चलते हुए
अपने सामाजिक दायित्व
की राह पर चलते जा रहे हैं
सिद्धेश्वर जी
और समय से आगे निकल जाते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अपनी बहत्तर वर्ष की अभी तक की जीवन यात्रा में सिद्धेश्वर जी ऐसे अनूठे पथिक हैं जिनके पदचिन्हों पर चलकर नई पीढ़ी 'सादा जीवन उच्च विचार' के आदर्शों से प्रेरणा प्राप्त कर सकती है। सादगी भरे जीवन को उच्च शिखर पर स्थापित करने वाले सिद्धेश्वर जी परंपरा, आधुनिकता और वैज्ञानिकता की त्रिवेणी के संगम हैं। उनके सादगी भरे जीवन से यह परिलक्षित होता है कि वह साधारणजनों की दुनिया में प्रवेश करके ऐसी स्थितियों और अनुभवों को देखने की कोशिश करते हैं जो अपने मामूलीपन में भी विलक्षणता का अहसास कराती हैं। साधारण अनुभव अपने भीतर कैसी असाधारणता छिपाए रहता है सिद्धेश्वर जी का जीवन इसका प्रमाण है। सार्वजनिक जीवन में ईमानदारी और सादगी का एक अनोखा चेहरा राष्ट्रीय विचार मंच के राष्ट्रीय महासचिव सिद्धेश्वर जी का है। और तो और बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के राज्य मंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष पद पर विराजमान होते हुए भी इन्हें पटना और दिल्ली की सड़कों पर पैदल घुमते हुए देखा जा सकता था। आए दिन उन्हें मीठापुर सब्जी बाजार से सब्जियाँ खरीदने के बाद थैला लटकाए जाते उन्हें देखा गया है। भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग (Indian Audit & Accounts Department) के वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद उन्होंने राजनीति में कदम रखा, किंतु उन्होंने इस्तेमाल होने की राजनीति से अपने को साफ बचाए रखा है। आज के नेताओं के लिए उनकी सादगी, उनकी जीवनचर्या और दलीय निष्ठा सीखने की चीज है। लेकिन पत्रकार होने की वजह से वे खुद के प्रति भी ईमानदार हैं जो अधिकतर लेखकों व पत्रकारों के जीवन में देखने को नहीं मिलता। वैसे तो राजनीतिक सत्ता की सदैव सुखी और प्रसन्न रहने की कामना नैसर्गिक होती

है, किंतु सिद्धेश्वर जी संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष जैसे पद पर रहते हुए भी इच्छा, चाह, लालसा से परे रहे, पद, पैसे और भोग के प्रबल आकर्षण के बावजूद बड़ा बनने का इन्हें शौक नहीं। आखिर तभी तो संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष पद पर अपने तीन साल के कार्यकाल के बाद तुरंत इस दायित्व से मुक्त करने का अनुरोध इन्होंने मुख्यमंत्री से कर दिया, जबकि तीन साल और इस पद पर उनके कार्यकाल का विस्तार हो सकता था।

दरअसल, सामाजिक जीवन पद्धतियाँ भारतीय संस्कृति की देन है जिसे सिद्धेश्वर जी ने अक्षरसः पालन किया हैं। संस्कृत से ही एक उपयुक्त एवं स्वच्छ समाज का निर्माण होता है, किंतु 21वीं सदी ने हमारी भारतीय संस्कृति को पतन की ओर अग्रसर कर दिया। फैशन के युग में हर कोई विशेष कर युवा वर्ग पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध में अपनी संस्कृति, भाषा, गौरव, रीति-रिवाज, जीवन-यापन, भोजन, पहनावा व अनुशासन को भुलाते जा रहे हैं। ऐसे वक्त भी सिद्धेश्वर जी ने संस्कृति की पहचान के लिए अपनी विरासत को सहेज कर रखा है। अपनी संस्कृति का सम्मान करते हुए गौरव में वृद्धि के लिए वे हर संभव प्रयास कर रहे हैं। इनका मानना है कि विलुप्त होती संस्कृति की रक्षा के लिए हमें अपने कर्त्तव्यों पर ध्यान देना होगा। कुछ इसी ख्याल से वे अपने कर्त्तव्य का पालन बड़ी निष्ठा और ईमानदारी से करते हैं।

(१५) भ्रष्टाचार के खिलाफ एक निडर नायक

राजनीति व प्रशासनिक दबावों और बड़े-बड़े राजनेताओं एवं अधिकारियों की आलोचनाओं की फिक्र किए बिना अपने दायित्व का निर्वहण कर सिद्धेश्वर जी बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का पद संभालते हुए भ्रष्टाचार के खिलाफ एक निडर नायक बन कर उभरे। बोर्ड का प्रमुख बनते ही उन्होंने सबसे पहले उसकी कार्यप्रणाली को बेहतर बनाने तथा मध्यमा परीक्षा में होने वाली गड़बड़ियों को दुरुस्त करने का बीड़ा उठाया। अपनी सीमाओं को ध्यान में रखकर अपने अधिकारों का इस्तेमाल करते हुए भ्रष्ट अधिकारी एवं सहायकों को पहले तो उन्होंने अपने काम में सुधार लाने का मौका दिया, फिर नहीं सुधरने पर उन्हें किनारा किया और अंत में बोर्ड से बाहर का रास्ता दिखाया। कई सहायकों पर वित्तीय अनियममितताओं के आरोप में प्राथमिकी दर्ज करते हुए उन्हें निलंबित किया। इस प्रकार वित्तीय अनियमितताओं एवं गड़बड़ियों को सामने लाकर बोर्ड में भूचाल मचा दिया। वित्तीय घोटाले और राशि के गबन उजागर होने के बाद अध्यक्ष पर आरोप लगाते हुए उनकी भूमिका पर कुछ असामाजिक तत्वों एवं शिक्षा माफियाओं के सहयोग से सवाल उठाया गया तथा पटना उच्च न्यायालय में याचिका दायर कर चुनौती भी दी गई। किंतु माननीय अदालत ने उसे यह कहते हुए खारिज किया कि बोर्ड के एक निष्ठावान अध्यक्ष को ईमानदारी और शांतिपूर्वक अपने दायित्व का निर्वहण नहीं करने देना चाहते।

सिद्धेश्वर जी ने इन आलोचनाओं और आरोपों की बिना कोई परवाह किए अपने काम को अंजाम देने में जुटे रहे। काम के धुनी सिद्धेश्वर जी का काम, यों तो बेहद मुश्किल था, फिर भी उनके कार्यकाल में बोर्ड को पहले की तुलना में कहीं ज्यादा सफलता मिली। अनेक अड़चनों के बावजूद उन्होंने बेहतर काम किया और वित्तीय अनियमितताओं को सामने लाकर लोगों का भरोसा जीता। अध्यक्ष के अधिकार में जो भी काम थे, उसे उन्होंने पूरी निष्ठा और जिम्मेदारीपूर्वक पूरा किया। उन्हे सबसे अच्छे वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के रूप में जाना जाता था तथा अपने कार्यकाल में वहाँ भी वे कठिन से कठिन कार्यो को तय सीमा में करते रहे बावजूद इसके कि उनके जिम्मे विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' का संपादन भी करना था तथा विविध सांस्कृतिक एवं साहित्यिक कार्यक्रमों के वे केन्द्र भी थे।

किसी तरह के दबाव में न आने वाले और किसी की पैरवी न

सुनने वाले सिद्धेश्वर जी न सिर्फ वित्तीय अनियमितताओं को उजागर किया, बल्कि परीक्षा और उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्याँकन तथा परीक्षाफल के प्रकाशन में बड़े पैमाने पर होने वाली गड़बड़ियों को ठीक किया और बोर्ड के कामकाज को निपटाने में लगे अधिकारियों व सहायकों के साथ-साथ संस्कृत शिक्षकों के समक्ष आने वाली चुनौतियों से पार पाने के लिए उन्हें तैयार करते रहे। उनके सहयोगी तथा शिक्षक भी सिद्धेश्वर जी को बेहद विनम्र और मिलनसार मानते रहे। उनका काम दूसरों के लिए मिसाल रहा।

बोर्ड के खर्च में पिछले वर्षो के दौरान होती रही बढ़ोतरी और उसके कार्यो के क्रियान्वयन में गड़बड़ी को सामने लाकर तथा प्रश्नपत्रों एवं प्रपत्रों की छपाई आदि के खर्चो में भारी कमी कर प्रशासन में जवाबदेही लाने की उन्होंने कोशिश की। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि मध्यमा परीक्षा में उपयोग के लिए लाई जाने वाली उत्तर पुस्तिकाओं की छपाई की लागत इनके पूर्व जहाँ पचास-पचपन लाख रुपये आती थी, वहीं इनके समय में वह लागत घटकर पाँच लाख रुपए तक आ गई थी।

बिहार के नालंदा जिलांतर्गत हरनौत प्रखण्ड स्थित बसनियावाँ गाँव में 18मई, 1941 को जन्में सिद्धेश्वर जी ने पटना विश्वविद्यालय से श्रम एवं समाज कल्याण में एम.ए. की डिग्री हासिल की है। 73 वर्षीय सिद्धेश्वर जी बोर्ड ही नहीं, बल्कि सभी सरकारी अथवा गैर-सरकारी कामकाज में पारदर्शिता चाहते हैं, ताकि लोगों को यह पता चल सके कि कोष का इस्तेमाल सही तरीके से हो रहा है या नहीं। भ्रष्टाचारियों एवं शिक्षा माफियाओं की नजर में वे भले ही खटक रहे हों, लेकिन आम लोगों के जेहन में सिद्धेश्वर जी की छवि भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने वाले एक निडर नायक की बन गई है। भ्रष्टाचार के खौफनाक साए और भ्रष्टाचार की वजह से शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं संस्कृत शिक्षा से जुड़े लोगों के दिलों में चुभने वाली आवाजों के बीच पिस्ती जिंदगी सिद्धेश्वर जी के कार्यकलापों में राहत की सांस लेती दिखी। लोगों के चेहरों से बोर्ड के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति नफरत-नाराजगी के भाव मिटते दिखे और सुकून की एक हल्की सी परत जगह बनाने लगी। आमजन की नजर में सिद्धेश्वर जी ने नि:संदेह बोर्ड की छवि बदलने की पहल की। संस्कृत शिक्षा से जुड़े लोगों ने पहले ऐसा अध्यक्ष पहली बार संस्कृत शिक्षकों, विद्यार्थियों और अभिभावकों को यकीन दिलाना शुरू किया था कि वह आपके दोस्त भी हो सकते हैं। प्रारंभ में यह लोगों को वक्ती दिखावा लगा। उन्हें यह समझने में वक्त लगा

कि यह महज सिद्धेश्वर जी के शब्दों का खेल नहीं। उन्होंने शिक्षकों का ध्यान इस बिंदु पर खींचा कि बोर्ड के अध्यक्ष अपने दल के साथ संस्कृत विद्यालयों में औचक निरीक्षण के लिए जाते हैं, तो बेहद तनाव का माहौल रहता है, मगर सिद्धेश्वर जी अध्यक्ष की हैसियत से निरीक्षण के वक्त लोगों के साथ जब नरमी से पेश आए और भवन निर्माण से लेकर पढ़ाई-लिखाई की बात की, तो अध्यक्ष के इस कदम से लोग राहत महसूस करने लगे और उनकी मौजूदगी में लोग अपनी समस्याओं को बेहिचक रखने लगे। सुनवाई के दौरान सिद्धेश्वर जी को पता चला कि पहले जब बोर्ड के अधिकारी निरीक्षण के लिए आते थे, तो उनका मकसद सिर्फ लोगों से उगाही करना रहता था। सिद्धेश्वर जी ने भ्रष्टाचार के उस रास्ते को तुरंत बंद कर दिया जिनकी पहल की बानगी बिहार के प्रायः सभी क्षेत्रों में युद्ध स्तर पर संस्कृत विद्यालयों के भवन निर्माण और निर्मित भवन में पठन-पाठन के रूप में देखी जा सकती थी। बोर्ड और संस्कृत शिक्षा की छवि सुधारने की खातिर अध्यक्ष के द्वारा शुरू की गयी योजनाओं का लाभ अवाम तक पहुँचा। यही नहीं, बोर्ड की पहल पर स्थानीय विद्यालयों के शिक्षकों एवं विद्यालय संचालकों द्वारा आयोजित संस्कृत संगोष्ठियों एवं राष्ट्रीय स्तर पर संस्कृत सम्मेलनों में भी हजारों की संख्या में लोगों की भागीदारी देखने और सुनने को मिला। इससे बोर्ड के प्रति आम आदमी का रवैया बदला। अध्यक्ष का शिक्षकों को संदेश होता था कि उनका काम उन्हें सताना नहीं, बल्कि भ्रष्टाचार मिटाना और संस्कृत शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन लाना है।

संस्कृत बोर्ड के भ्रष्टाचार मिटाने और संस्कृत शिक्षा में सुधार लाने की नीतियाँ स्थानीय प्रशासन एवं शिक्षा से जुड़े पदाधिकारियों को भी रास आई। सिद्धेश्वर जी के दृढ़ संकल्प के आगे उनके समक्ष आई अधिकांश बाधाएँ भी हार गई। हालांकि बोर्ड के अधिकारी एवं कर्मचारी और शिक्षकों के बीच तीस साल से जारी खाई को भरने में अभी वक्त लगेगा, लेकिन इसके लिए एक जोखिम भरे रास्ते पर चलकर भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने में निश्चित रूप से सिद्धेश्वर जी ने एक मिसाल प्रस्तुत किया है।

दरअसल, सिद्धेश्वर जी ने संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष का पद संभालते ही भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने का एक संकल्प ले रखा था। सच तो यह है कि बोर्ड में पिछले तीन दशकों से व्याप्त भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए बिहार के मुख्यमंत्री ने इनका अध्यक्ष पद के लिए चयन किया था। इसीलिए उन्होंने भ्रष्टाचार का संकल्प लिया। संकल्प इसीलिए कि यह ऊर्जा का एक

ऐसा घनीभूत पिंड होता है जिसमें हमारी जिंदगी को कुछ नया देने और यहाँ तक कि उसे नया बना देने की ताकत होती है। सिद्धेश्वर जी की यही इच्छा और ताकत ने बोर्ड का रूख बदल दिया।

सिद्धेश्वर जी ने अबतक की जिंदगी से ईमानदारी का जीवन बिताया है, परंतु वास्तविक जीवन में ईमानदारी बरतने वालों की परेशानियों, मुश्किलों और चुनौतियों से आप पाठक भी भली-भाँति परिचित हैं ही। इस ईमानदार आदमी के साथ भी वही सब हुआ है, जो ईमानदार के साथ आए दिन नित्यक्रम में होती है। सिद्धेश्वर जी एक तरह से कहा जाए, तो जिद्दी आदमी हैं। ईमानदार आदमी जिद्दी ही होता है वरना इतने विरोध के बीच ईमानदारी बने रहना संभव भी नहीं। पर इतना जरूर है कि मैं ही क्या, सभी लोग इनकी बड़ी इज्जत करते हैं, क्योंकि इनकी जैसी ईमानदारी आज के जमाने में दिखती ही कहाँ है?

दरअसल, ईमानदारी एक ऐसी दौड़ है जिसमें प्रतियोगी बहुत कम होते हैं। प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय सब पुरस्कार कुछ ही ईमानदार लोगों को मिल जाते हैं। धीरे दौड़ने पर भी जितते वही हैं। ईमानदारी का यही तो मजा है कि इसमें कभी कोई प्रतिस्पर्धा नहीं रहती है। सिद्धेश्वर जी को आज तक इसीलिए उसी की आदत है जिसके परिणामस्वरूप वे भ्रष्टाचार के खिलाफ एक निडर नायक के रूप में समाज के समक्ष खड़े हैं। सिद्धेश्वर जी में नैतिक साहस है और उनकी निष्ठा देश के आम नागरिक के प्रति है। वे अपना जीवन सामान्य और पारदर्शी तरीके से निर्वाह करते हैं और जिनके आय के स्रोतों की जनता को साफ जानकारी है। इन्हें अपनी सुरक्षा के लिए हथियारों की जरूरत कभी नहीं पड़ी है।

इस प्रकार सिद्धेश्वर जी ने न केवल संस्कृत शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन लाने की दिशा में प्रयास किया, बल्कि भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत धर्म निरपेक्षता के पक्षधर, आदर्श पत्रकार, सच्चे साहित्यकार और सबसे बढ़कर एक बेहतरीन इंसान-ये सब सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व के बहुरंगी रूप हैं। जिन्हें संस्कृत बोर्ड के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष होने का कोई मोह न रहा और जो सबके साथ अपनेपन की भावना से भरपूर हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में जीवन के विभिन्न श्रोतों और विषयों में इनका नजरिया आईने की तरह साफ है और हिंदी-प्रेम अनुकरणीय। उनका कहना है कि हिंदी ही एक मात्र ऐसी भाषा है, जो पूरे हिंदुस्तान को

एक सूत्र में बाँध सकती है। इस प्रकार इनके बहुआयामी व्यक्तित्व पर जब एक नजर डालते हैं, तो पाते हैं कि ऐसे समय में जब नैतिकता का क्षरण हो रहा है, सिद्धेश्वर जी कई क्षेत्र में एक उदाहरण पेश कर रहे हैं।

बिहार में सरकार बदलने के साथ ही बदलाव का जो दौर शुरु हुआ उसमें बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड में भी बहुत कुछ बदला सिद्धेश्वर जी के नेतृत्व में और काफी कुछ बदलने की जरूरत है। केवल पटरी पर से उतरी बोर्ड की गाड़ी को भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाकर पटरी पर लाने से काम नहीं चलेगा। पटरी पर आई गाड़ी को ईमानदारी पूर्वक चलाने की भी जरूरत है। भ्रष्टाचार के खात्मे को लेकर सिद्धेश्वर द्वारा किए गए प्रयास को बरकरार रखने की आवश्यक है।

जीवन के हर मोड़ पर कठिन से कठिन परिस्थितियों के आगे सीना ताने खड़े रहने वाले सिद्धेश्वर जितने जिम्मेदार अपने परिवार के प्रति हैं उतने ही देश के प्रति भी हैं। समाज के प्रति इनकी दूरदर्शिता और राष्ट्र के प्रति दायित्वबोध दोनों गुण इनके जीवन में साफ झलकते हैं। किसी भी राष्ट्र के निर्माण में सर्वांगीण व्यवस्था चलती रहे जिसमें वहाँ के सजग नागरिक की अहम भूमिका होती है। विभिन्न विभागों में काम करने वाले लोग तथा देश के नागरिक ही मिलकर कहीं न कहीं खुशहाली, उसके विकास का सुलेख लिखते हैं। वह लिखावट अगर साफ नहीं है, तो फिर योजनाओं और नीतियों के हवाई पुल बाँधकर हम विकास के कुछ आँकड़े भले इकट्ठा कर लें, जमीनी हकीकत नहीं बदल पाएँगें। सिद्धेश्वर जी ने संस्कृत बोर्ड में रहकर या उसके बाहर जो कुछ लिखा है वह साफ हैं। उनका बेदाग व्यक्तित्व लोगों से आईना दिखाता है। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड को भारतीय लेखा परीक्षा विभाग से स्वैच्छिक सेवानिवृत्त होने के बाद सरकार के आग्रह पर 71 साल की उम्र तक उन्हें अपनी सेवाएँ देनी पड़ीं। स्पष्ट है कि कर्म, कौशल, लगन और ईमानदारी के साथ बोर्ड में व्याप्त भ्रष्टाचार मिटाने के लक्ष्य को हासिल करने की जिद ने एक व्यक्ति को आदर्श बना दिया। इन्होंने बोर्ड में भ्रष्टाचार के खिलाफ ज़ो कार्रवाई की और दंड एवं भय के खतरे बढ़ाकर कामकाज की शैली में चुस्ती ला दी, आदर्श निहारने वालों को यह बात सलीके से गांठ बाँध लेनी चाहिए और बेवजह भ्रम में रहने वालों को उर्मिलेश की निम्न पंक्तियों से सीख लेनी चाहिए–

'बेवजह दिल पे कोई बोझ न भारी रखिए।
जिंदगी जंग है इस जंग को जारी रखिए।'

सिद्धेश्वर जी ने अपनी संघर्ष भरी जिंदगी को जंग समझकर ही अपने कदम आगे बढ़ाए हैं और कामयाबी हासिल की है। इस सच्चे कर्मयोगी की प्रेरणा हमें सन्मार्ग की ओर सदैव अग्रसर रखेगी। आज की नई पीढ़ी को इनके द्वारा स्थापित मूल्यों और आदर्शों का सच्चे अर्थों में अनुकरण करने की जरूरत है।

सिद्धेश्वर जी के संकल्प और उनकी इच्छाशक्ति को देखते हुए उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वह ईमानदारी से लोगों की उम्मीदों को टूटने नहीं देंगे। वैसे भी उनके पास जैसा की वे स्वयं कहते हैं कि खोने के लिए उनके पास कुछ नहीं है और न पाने की लालसा। हाँ, मगर इतना जरूर है कि पाने के लिए उनकी ईमानदारी में लोगों को भरोसा है। आखिर तभी तो सामाजिक कार्यकर्ताओं की संगत में सिद्धेश्वर जी को बेचैनी होती है। इनसे लोगों ने एक उम्मीद के बगीचे की झूंठी चकाचौंध को भलीभाँति समझा है और इसीलिए उससे वे सजग हैं कि संस्कृत बोर्ड में व्याप्त भ्रष्टाचार के सारे केंद्र, सारे चौराहे और सारी नदियों को सूक्ष्म रूप से उन्होंने समझा और उस पर प्रहार किया। भ्रष्टाचार का जो प्रवाह था उन्होंने उसे रोक रखा और बोर्ड के अधिकारियों-कर्मचारियों से लेकर संस्कृत शिक्षकों एवं विद्यार्थियों-अभिभावकों तक की जीवनधारा को गति देकर जगाया। याद रखने की बात है कि बल्ब एक तार के जुड़ने से नहीं जलता। जबतक दोनों तार नहीं जुड़ते, तबतक बल्ब नहीं जलता। सिद्धेश्वर जी ने भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए बोर्ड और शिक्षकों के दोनों तारों को जोड़कर उन्हें जगाया।

हँसमुख स्वभाव के प्रसन्नचित्त तथा साहित्य प्रेमी सिद्धेश्वर जी के आते ही संस्कृत बोर्ड कार्यालय में साहित्यिक दृश्य की अपनी अलग की छटा दिखाने लगी थी। कभी संस्कृत दिवस पर संगोष्ठी, तो कभी संस्कृत सम्मेलन के आयोजन से बोर्ड की अलग ही पहचान बन गई थी। खासतौर पर इनके स्वभाव और व्यवहार सभी शिक्षकों एवं प्रबुद्धजनों को सम्मोहित करने लगे थे। उनके अधीनस्थ अधिकारियों एवं कर्मचारियों की जिह्वा पर उनका ही गुणगान रहता था, क्योंकि वे इस बात के बिल्कुल खिलाफ थे कि अफसरशाही के चक्रव्यूह को तोड़ने के निमित वे सदैव संवेदनशील व चिंतनशील रहते थे। अध्यक्ष की कुर्सी पर रहते हुए वे स्वयं शिक्षकों को कहा करते थे कि वह प्रशासक नहीं सेवक हैं। संस्कृत भाषा व साहित्य की सेवा तथा संस्कृत शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन के लिए ही उनकी नियुक्ति

यहाँ हुई है। कार्यालय के एक-एक कर्मचारी तथा संस्कृत विद्यालय के प्रायः सभी शिक्षकों के लिए उनका दरवाजा हमेशा खुला रहता था और वे सबसे रूबरू होते थे। कार्यालय का कोई भी कर्मचारी या शिक्षक बिना कोई झिझक के साथ उनकी मेज के सामने वाली कुर्सी पर बैठ सकता था। यहाँ तक कि चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को भी उनकी समस्या सुनते वक्त कुर्सी पर बैठने को वे कहते थे। इनके साथ रहे एक चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी राजेन्द्र झा तो उनसे ऐसे घुलमिल गए कि उन्होंने इनके साथ रहकर शराब पीना छोड़ दिया। इनके घर-परिवार की जानकारी लेने के उपरांत सिद्धेश्वर जी अक्सरहा कार्यालय से निकलते वक्त उनके कंधे पर अपना हाथ रख उनकी कठिनाइयों के बारे में पूछते थे कि उन्हें किसी प्रकार की कोई दिक्कत तो नहीं है? यहाँ तक कि मकर संक्रांति के दिन उनके राजापुर-मैनपुरा स्थित आवास में जाकर स्वयं चूड़ा-दही खाते थे। अभी भी कुछ दिनों पूर्व दिसम्बर, 2011 को पौत्र के जन्म लेने पर श्री राजेन्द्र झा पुरन्दरपुर स्थित सिद्धेश्वर जी के 'बसेरा' निवास पर मिठाई का पैकेट लेकर जब पहुँचे, तो थोड़ी देर के लिए तो पैकेट लेने में उन्हें हिचकिचाहट हुई, फिर उस पैकेट की एक मिठाई उन्होंने स्वीकार करते हुए बाक़ी मिठाईयों को वहाँ उपस्थित लोगों को प्रसाद के रूप में बाँट देने की बात कही। इस संदर्भ में यह कहना कदाचित अनुचित नहीं होगा कि जब तक सिद्धेश्वर जी बोर्ड के अध्यक्ष पद पर आसीन रहे किसी भी कर्मचारी अथवा शिक्षक से मिठाई का पैकेट या उपहार के तौर पर कुछ लेना उन्होंने स्वीकार नहीं किया, भले ही किसी सभा-संगोष्ठी में सम्मान के तौर पर उन्हें शॉल आदि से सम्मानित किया जाता रहा हो। बोर्ड के एक चतुर्थ वर्ग कर्मचारी राजेन्द्र झा द्वारा अपने पौत्र के जन्म से आह्लादित होकर बोर्ड के पूर्व अध्यक्ष को उनके आवास पर जाकर मिठाई खिलाना और उनसे आशिर्वाद माँगना इस बात का सूचक है कि उनके प्रति लोगों का कितना सम्मान था। आज के इस भौतिकवादी और अफसरशाही के दौर में इतने स्नेह व सम्मान के साथ अपने पूर्व के अध्यक्ष को याद करना अपने-आप में यह अकल्पनीय-सा लगता है, पर सच तो सच ही होता है। उसे झुठलाया नहीं जा सकता।

मुझे अच्छी तरह याद है सुप्रसिद्ध उपन्यास और कहानी लेखिका मिस फ्लोरेंस डाना मूरहेड ने अपना साक्षात्कार देते हुए एक बार कहा था-'सफलता प्राप्त करने वाले लेखक के लिए सबसे अधिक आवश्यक चीज है- ईमानदारी।' मुझे लगता है साहित्य-साधना में संलग्न रहने वाले

और कभी हार नहीं स्वीकार करने वाले सिद्धेश्वर जी ने मिस फ्लोरेंस डाना के उपर्युक्त विचार को अपने जीवन में ईमानदार बने रहने का संकल्प ले रखा है। आखिर तभी तो सफलता की मंजिल तक पहुँचने में इन्हें कोई परेशानी नहीं होती है और जिन्होंने बोर्ड में रहकर ईमानदारी के मानक स्थापित किए हैं। बेशक सिद्धेश्वर जी ने बोर्ड की रग में पैठ बना चुके भ्रष्टाचार को लोगों की निगाहों में फोकस करने का कारनामा दिखाया जिसके परिणामस्वरूप बोर्ड के अधिकारियों-कर्मचारियों से लेकर संस्कृत शिक्षकों-विद्यार्थियों तक की सोच और कार्यशैली में नजर आया। इनके कारनामें से यह साबित हो गया है कि व्यवस्था में बदलाव केवल ईमानदार आदमी ही ला सकता है। एक स्वस्थ समाज के निर्माण करने के लिए इससे बेहतर कुछ नहीं हो सकता।

सिद्धेश्वर जी द्वारा बोर्ड के अध्यक्ष पद से हटने के बाद ज्यादातर लोगों की पहली प्रतिक्रिया यही थी कि बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने से लेकर मध्यमा परीक्षा को सुचारू ढंग से आयोजित करने और उत्तरपुस्तिकाओं के मूल्यांकन तथा परीक्षाफल के प्रकाशन को व्यवस्थित करने में अब शायद पहले की तरह न हो पाए। यही नहीं बोर्ड में आए अनुशासन और उसकी कार्यशैली में हुए परिवर्तन को लेकर भी आशंकाएँ जताई गईं। पर इन आशंकाओं और चिंताओं से खुद सिद्धेश्वर जी की चिंता और सोच बिल्कुल अलग है। संस्कृत बोर्ड के भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाकर और परीक्षा का संचालन सुचारू ढंग से आयोजित कर इतिहास रचने वाले बोर्ड के सबसे कुशल प्रशासक सिद्धेश्वर जी को नहीं लगता कि बोर्ड में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना और परीक्षा का व्यवस्थित कर देना ही काफी नहीं है। समाज में संस्कार और उसकी संस्कृति को सामने रखकर अगर संस्कृत बोर्ड को कोई दूरगामी नीति बनानी है, तो उसके लिए पारंपरिक लीक बदलने की दरकार है और संस्कृत भाषा के उन्नयन एवं संस्कृत साहित्य में अभिवृद्धि के साथ-साथ संस्कृत शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन जरूरी है। तभी संस्कृत बोर्ड की सार्थकता सिद्ध होगी।

सिद्धेश्वर जी का मानना है कि असल में बाजार ने जो जीवन शैली पिछले दो दशकों में लोगों को दिखाई है उसका सबसे खतरनाक पक्ष यही है कि हम ज्यादा से ज्यादा सुविधा संपन्न होने की ललक से भर उठे हैं, पर समय और समाज की चिंताओं से पूरी तरह कट गए हैं। हमारे इस बिलगाव का खामियाजा भविष्य की पीढ़ियों को चुकाना होगा। ऐसे में

संस्कार और संस्कृति के संरक्षण के लिए संस्कृत को बचाना समय की माँग है। सिद्धेश्वर जी ने अपने नेतृत्व में संस्कृत भाषा, संस्कृत साहित्य और संस्कृत शिक्षा को लेकर दूरदर्शिता की सोच अपनाई थी। बोर्ड से पहली बार इसके लिए 'वाग्वन्दना' जैसी साहित्यिक चेतना की वैचारिक पत्रिका का प्रकाशन, मध्यमा परीक्षा की उत्तरपुस्तिकाओं के मूल्याँकन को राजधानी पटना में केंद्रीकृत कर उन्होंने अपनी योजना को अमल में लाने की पहल शुरू कर दी थी। देखना यह है सिद्धेश्वर जी की क्षमताओं का 71 साल की उम्र तक लाभ उठाने वाली बिहार सरकार उनके द्वारा खींची गई लकीरों पर कितना चल पाती है और उनकी पहल का कितना लाभ उठा पाती है।

(१६) अदम्य जिजीविषा के विनम्र विचारक

सिद्धेश्वर जी की प्रतिष्ठा और आदर हिंदी साहित्य की भयानक गुटबाजी के परे सर्वमान्य है। उनकी ख्याति सिर्फ लेखन की तरफ तो नहीं, बल्कि सधे पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्ताओं और संचालक की भी है। उनके क्षेत्रों में गहरी रुचि रखने वाले सिद्धेश्वर जी अदम्य जिजीविषा के एक विनम्र विचारक भी हैं।

मृत्यु मनुष्य की भयाक्रांत करती है। कुछ लोग मृत्यु से टूट जाते हैं, मगर सिद्धेश्वर जी मृत्यु से कभी डरते नहीं, क्योंकि साहित्य, संगठन और पत्रकारिता मृत्यु के इस भय से निकलने में उन्हें मदद करती है। वह उनके अंदर की जिजीविषा को जगाए रखती है। वह एक जिंदादिल इंसान और सर्जनात्मक रचनाकार हैं जो एक स्वस्थ समाज और सबल राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं जहाँ हर किसी के लिए जगह हो। सिद्धेश्वर जी कहते हैं, आज जब देश और समाज के बारे में सोचता हूँ। तो ऐसा प्रतीत होता है कि समाज रूग्ण हो रहा है और राष्ट्र पुनः विखण्डन की स्थिति में है। इसलिए समाज को स्वस्थ बनाने के लिए लोगों में समाज के प्रति प्रतिबद्धता और राष्ट्र में एकता जरूरी है, ताकि विविधता नष्ट न हो और भारतीय संस्कृति बची रहे। इस प्रकार जब हम इनके जीवन पर एक गहरी नजर डालते हैं, तो पाते हैं कि अपने अंदर अपार जिजीविषा का एक विराट संसार संजोए हमारे बीच सक्रिय हैं, सिद्धेश्वर जी।

बेदाग चरित्र, पूर्ण ईमानदारी और उचित व्यवहारवाले सिद्धेश्वर जी को बिहार के मुख्यमंत्री नीतिश कुमार ने इसीलिए बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद के लिए चयन किया कि वे बोर्ड में व्याप्त भ्रष्टाचार के

खिलाफ लड़ाई लड़ेंगे और भरोसे के मुताबिक बोर्ड को सिद्धेश्वर जी ने भ्रष्टाचार पर बहुत कुछ अंकुश लगाकर एक उदाहरण प्रस्तुत किया। उनके नेतृत्व में बेहतर परीक्षा व्यवस्था, सख्त प्रशासन और अधिकारी-कर्मचारी एवं शिक्षकों की मंनमानी पर उन्होंने लगाम कसने का काम किया। तीन साल पूर्व बोर्ड के अध्यक्ष पद पर आसीन सिद्धेश्वर जी ने उपलब्धियों के जिस पारी की शुरुआत की उसकी फेहरिस्त अगणनीय है। वह बोर्ड के सर्वांगीण विकास के लिए तेजी से फैसले-दर-फैसले किए। उन्होंने बोर्ड में व्याप्त माफियाओं की अराजकता खत्म कर जो भरोसा दिलाया था, वह उसे पूरा करने में बहुत हद तक सफल भी रहे। आम संस्कृत शिक्षकों से सीधा और जीवंत संवाद ही उनकी पूँजी बनी। कर्मचारी वर्ग की जरूरतों और माँगों को वैसे तो कोई भी सरकार कभी भी पूरा नहीं कर सकती, लेकिन सिद्धेश्वर जी ने कर्मचारियों खासतौर से संस्कृत शिक्षा और अध्यापन से जुड़े शिक्षकों को सम्मान देने की पूरी कोशिश की है।

सिद्धेश्वर जी ने अपने तीन साल के कार्यकाल को विगत 14 सितम्बर, 2011 को पूरा कर पुनः राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुख पत्र 'विचार दृष्टि' में लग गए हैं, क्योंकि दूसरी बार विस्तार की अपेक्षा न कर बिहार के मुख्यमंत्री से पहले हीं बोर्ड के अध्यक्ष के दायित्व से मुक्त कर देने का अनुरोध कर रखा था और सरकार की कुछ कारगुजारियों से अपनी नाराजगी जता चुके थे।

राजनीति में कुछ भी अंतिम नहीं होता। न विचार, न व्यक्ति और न ही अवसर। सिद्धेश्वर जी सियासत की इस नजाकत को बखूबी समझते हैं और राजनीतिक गलियारों में उनके कार्यकाल का विस्तार नहीं होने से नेता व कार्यकर्ता भी हतप्रभ रह गए। उनके कार्यकाल का विस्तार होता भी तो कैसे जब सिद्धेश्वर जी स्वयं नहीं चाहते थे और तीन साल पूरा होते ही उसे छोड़ दिया। बोर्ड में सिद्धेश्वर जी की सफलता उनकी ही नहीं, बल्कि उस पार्टी और बिहार के आम लोगों की भी है, क्योंकि भ्रष्टाचार के खिलाफ पहल कर उन्होंने सबको राहत पहुँचाई और शिक्षकों का विश्वास प्राप्त किया। आमजन में उत्सुकता इस बात को लेकर है कि भ्रष्टाचार के मुद्दों को सिद्धेश्वर जी के कदम ने जहाँ पहुँचाया है, उसे बाद के अध्यक्ष किस दिशा में ले जाते हैं।

बहरहाल, सिद्धेश्वर जी पुनः अपनी सृजनात्मकता और प्रयोगों में दत्तचित हो गए हैं और बोर्ड में अपने किए को ज्यादा प्रचारित करने में

उनकी कभी कोई रुचि नहीं रही। यंह उनके भीतर एक उजास है। दरअसल, सिद्धेश्वर जी वर्तमान जीवन से खुश हैं। मुझे ऐसा लगता है कि वे औरों से कुछ अलग़ हटकर करना चाहते हैं। सच तो यह है कि इनकी धर्मपत्नी श्रीमती बी. प्रसाद दुनियादारी महिला हैं जो घर-गृहस्थी के सारे कार्य उन्होंने स्वयं संभाल रखे हैं। इसलिए घर की गाड़ी बिना लड़खड़ाए चलती रहती है और सिद्धेश्वर जी स्वतंत्र होकर लेखन कार्य में तल्लीन रहते हैं। इनके लेखन में बहुत कुछ ऐसा है जो भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरणात्मक और अनुकरणीय है। सभी विचारों से सिद्धेश्वर जी ने मूल्य ग्रहण किए हैं, परंतु उनमें बंधकर वे नहीं रहते। वे अभिव्यक्ति के अधिकार के प्रति सजग हैं। उनके व्यक्तित्व में सब विचारधाराएँ समाहित हैं और निरंतर विकास के पथ पर वे अपना जीवन जी रहे हैं। सिद्धेश्वर जी साफ-सुथरी जिंदगी के शौकीन हैं।

सिद्धेश्वर जी की जिंदगी के बारे में जब मैं सोचता हूँ तो सबसे पहले मुझे समाज ही क्यों याद आता है? इसलिए कि यही वह समाज है जिसकी चिंता सिद्धेश्वर जी को बराबर सताती रहती है। समाज के साथ उनका रिश्ता है, बेहद गहरा रिश्ता। चाहकर भी उन्हें समाज से अलग नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार सेहत और जीवन शैली पर उनके प्रयोग, अध्ययन और विचार अलग हैं। उनके अनुसार स्वस्थ व्यक्ति वह है जो सभी तरह की बीमारियों से मुक्त है, जो अपनी नियमित क्रियाएँ बिना थकावट के पूरी करता है, जो सामान्य भोजन को आसानी से पचा सकता है और जिनके मन और इंद्रियों के व्यवहार में तालमेल है। उन्होंने अपने स्वयं के जीवन में भी स्वच्छता, पैदल चलना न्यूनतम खुराक और शाकाहार को अपनाया है। वे हर उस तंदुरूस्ती बढ़ाने वाले उपाय पर जोर देते हैं जिस पर न पैसा खर्च होता है और न ही किसी विशेष तकनीक को अपनाने की जरूरत होती है।

जब लोगों के मन में देश प्रेम और भाईचारे की भावना खत्म होती जा रही है और हर किसी के नजरिए में स्वार्थ का भाव घर कर गया है सिद्धेश्वर जी के द्वारा लगातार यह प्रयास किया जा रहा है कि लोगों की मानसिकता में बदलाव के लिए उनमें राष्ट्रीय चेतना जागृत की जाए। वे महसूस करते हैं कि अन्ना हजारे जैसे हजारों-लाखों शिक्षकों की जरूरत है जो निस्वार्थ भाव से देश सेवा की शिक्षा दे सकें। बस लोगों को सही-गलत का अहसास कराने की जरूरत है। वैसे समाज को जागरूक करना जरूरी है।

सिद्धेश्वर जी की सादगी भरे और ईमानदारी से जीवन जीने से यह

तथ्य सुदृढ़ हुआ है कि यह देश उन्हीं का सम्मान करता है, जो पारदर्शी और ईमानदारी का जीवन जीते हैं। उनके सामने वैभव, भव्यता, पद, अधिकार इत्यादि कहीं नहीं ठहरते हैं।

उम्र के 73वें पड़ाव पर भी अपनी जिंदगी के फलसफे को नया आयाम दे रहे सिद्धेश्वर जी का जिक्र बुढ़ापे को जिंदगी की शाम मानकर चलने वालों के लिए एक मिसाल है। कहा गया है–

उम्र ढलने से जिंदगी की शाम नहीं होती,
जिंदगी जिंदादिली का नाम है।
तूफां में उतरने का बस जज्बा–ए–अहसास चाहिए।

73 की उम्र में भी दिल बचपन–सा और युवाओं से जोशीले अंदाजवाले सिद्धेश्वर जी प्रेरणा की जगमगाती लौ बने हुए हैं। उनका मानना है कि जिंदगी भोर है। सूरज की तरह निकलते रहिए। सूरज रोज सुबह नई उमंग और ताजगी के साथ निकलता है। वह हमें यही संदेश देता है कि हमें भी जिंदादिली के साथ जीना चाहिए। जवानी उम्र में नहीं कर्म में झलकती है। यह सच है अपने कामों में इंसान हमेशा जवां रहता है। सिद्धेश्वर जी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। सुबह 4 बजे उठने की उनकी आदत बरकरार है। मोबाइल, ए.सी. और यहाँ तक कि कार जैसी चीजों से वे परहेज रखना चाहते हैं, जरूरी होने पर ही उसका इस्तेमाल करते हैं, क्योंकि वह बताते हैं कि ये चीजें आदमी को आरामतलब बनाती हैं और बुढ़ापा लाती हैं। मानसिक रूप से भी सिद्धेश्वर जी संतुष्ट एवं स्वस्थ दिखते हैं। दरअसल, मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति प्रतिकूल स्थितियों, संकटों और तनाव के दौर से उबरने में सक्षम होता है और विपरित स्थितियों में भी वह साकारात्मक दृष्टिकोण रखता है। संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहकर सिद्धेश्वर जी जिन प्रतिकूल स्थितियों, संकटों और तनाव के दौर से वह उबरे वह उनका सकारात्मक दृष्टिकोण का ही परिणाम था। यही कारण है कि वह अपने जीवन में आत्म–विश्वास, आत्म–सम्मान और संतुष्टि हासिल कर स्वस्थ व खुशनुमा जिंदगी जी रहे हैं। इसके अलावा सामाजिक संबंध स्थापित करने की वे योग्यता रखते हैं और इसके साथ इन संबंधों को समुचित रूप से बरकरार रखते हैं। इस प्रकार मानसिक व सामाजिक रूप से पूर्ण स्वस्थ रहकर स्वयं को वे एक जिम्मेदार नागरिक साबित करते हैं।

(१७) इंसानियत के दीवाने

सिद्धेश्वर जी सही मायने में इंसानियत के दीवाने हैं। आखिर तभी तो बदले जमाने की पेचीदा परिस्थितियों और राजनीतिक चुनौतियों से उत्पन्न कुंठा, हताशा, दर्द, घुटन, निराशा और गुस्से को वे अपने लेखन व साहित्य का विषय बनाते हैं तथा अपनी कविता में भी उन्हें एक शक्ल देते हैं। लेखन में उनकी दृष्टि सामाजिक होती है। मेरी ख्वाहिश है कि उन्होंने जिंदगी को अबतक जो जेहन दिए हैं और ये साहित्य में जिस रस को बहाने का काम कर रहे हैं, वह रस कभी न सूखे, क्योंकि उनका कथन सदैव सच्चा और सार्थक रहता है। सिद्धेश्वर जी ने समाज और राष्ट्र के प्रति अपना प्रेम, निष्ठा, प्रतिबद्धता और संवेदना का सागर न्योछावर करने का प्रण ले रखा है। इनके लेखन में प्रगतिवादी चेतना का भी लहर देखा जा सकता है। इनकी काव्यधारा रूपी गाड़ी कभी-कभी गाँधीवादी पटरी की मुख्य धारा से उतर कर उत्पीड़ित लोगों को उनके अधिकार दिलवाने के लिए अहिंसा से इतर पंक्ति पर भी चली जाया करती है।

सिद्धेश्वर जी अध्यात्म और धर्म विशेषत: धर्मांडबरों से पूर्ण उसके रूप से उदासीन और कभी-कभी उनके प्रबल विरोधी होकर भी जीवन और जगत की सच्चाइयों से हम किनारे होते रहते हैं, और इसे स्वीकारने में इन्हें रंचमात्र संकोच भी नहीं होता। इनके लेखन में जमीनी हकीकतों को स्वीकारने वाली अनेक पंक्तियाँ यथार्थवाद के इसी आईने में प्रतिबिंबित होती हैं।

सिद्धेश्वर जी मेरे लिए इसलिए भी वरेण्य हैं कि संस्कृत के विद्वान नहीं रहते हुए भी संस्कृत भाषा के प्रति उनके मन में समर्पण का भाव है। संस्कृत बोर्ड में वे जबतक रहे मैं उनके निकटतम संपर्क में रहा। मुझे तो केवल उन तरंगों को कुछ क्षण तक आत्मसात करने का सौभाग्य मिला जो उनके जीवंत व्यक्तित्व से निस्रत हो रही थीं। वे ही मेरी प्रेरणा की स्रोत बनीं। आखिर तभी तो अपने क्षमतानुसार इस पुस्तक को लिखने का जैसे ही मेरे पास प्रस्ताव आया मैंने सहर्ष सहमति दे दी। देखिए, मेरी मेहनत कहाँ तक सधती है।

सिद्धेश्वर जी अबतक के अपने पूरे जीवन में इतने विरोधी और विरोधियों के निशाने पर रहे हैं कि उन्हें अप्रासंगिक ठहराने के खूब प्रयत्न किए गए, फिर भी वे अजेय रहे। वे बिना विचलित हुए अपने कर्म और रचना-कर्म में लगे रहे और आज भी लिख रहे हैं। उनके इन रचनाकर्म और

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों ने दूसरों को खूब विचलित किया। इनके संदर्भ में एक खास बात यह है कि वे हमेशा साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुर्खियों में रहते हैं, चर्चित रहते हैं और संवादों-विवादों में रहते हैं। इस प्रकार उनके व्यक्तित्व, सोच और रचनाकर्म के विशद-व्यापक के कई छोर हैं। उनकी दृष्टि व्यापक है और अपनी आजानबाहु में सबको समेट लेने की इच्छा भी।

(१८) सोच स्वभाव और व्यक्तित्वों में आंतरिक सामंजस्य

सिद्धेश्वर जी के संदर्भ में जो एक और बात ध्यान खींचती है वह है उनके सोच-स्वभाव और व्यक्तित्व में आंतरिक सामंजस्य। नए से नए लेखक के लिए वे कितना चिंतिंत रहते हैं, उनके द्वारा आयोजित संगोष्ठी, सम्मेलन, शिविर आदि के प्रतिनिधि एवं सहयोगी यह अच्छी तरह जानते हैं। उनके पास अध्ययन, लेखन और यायावरी के संयोग से तरह-तरह की जानकारियों का अकूत भंडार ही नहीं रहता है, बल्कि सर्जनात्मक दृष्टि भी रहती है जिससे पीढ़ियाँ प्रेरणा प्राप्त कर आगे बढ़ सकती हैं।

दरअसल, सिद्धेश्वर जी का अस्तित्व हवा में उड़ते एक पत्ते की तरह या समुद्र में उठती एक लहर की तरह लक्ष्यरहित यात्रा नहीं है, बल्कि उनके जीवन की सार्थकता और उपयोगिता है जिसकी वजह से वे इस मुकाम तक पहुँचे हैं। उन्होंने अपनी जिंदगी के लिए पहले से एक निर्धारित लक्ष्य तय कर रखा है और उसी को साकार रूप देने के लिए वे सदैव प्रयासरत रहते हैं। उनके मुताबिक संपूर्ण जीवन उस प्रणाली का हिस्सा है, जो अपनी प्रतिकृति बनाने में सक्षम हो तथा क्रम विकास की प्रतिक्रिया के अंतर्गत हो। यदि वर्तमान दौर के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में लोगों से उनके जीवन के मकसद के बारे में जानना चाहें, तो पद, पैसा, सत्ता, धन-दौलत आदि से दूर जो कुछ उनके पास है उससे संतुष्ट नजर आते हैं। इसीलिए वे गतिशील और क्रियाशील हैं। समाज के साथ उनका एक रिश्ता है जो उन्हें खुद जीने का अर्थ और मकसद देता है।

मुझे लगता है कि हमारे सामाजिक जीवन से अपने जीवन-कर्म के प्रति समर्पित व्यक्तियों का जिस प्रकार तेजी से लोप होता जा रहा है, सभी कार्यो एवं लक्ष्यों को उनकी व्यावसायिक सफलता के साथ जोड़कर देखना अत्यंत सहज हो गया है और धन, सत्ता व सम्मान प्राप्ति की होड़ सभी नैतिक मूल्यों और आदर्शों को पछाड़ती जा रही है, ऐसे में सिद्धेश्वर जी का

जीवन उस प्रकाश-स्तंभ की भाँति है जिसके माध्यम से लेखकीय स्वायत्तता और अस्मिता के खोजी रचनाकार हो सकते हैं। आत्मसम्मान और सर्जनात्मक मूल्यबोध के प्रतीक सिद्धेश्वर जी से मेरा आत्मीय संबंध भी इसी वजह से हुआ। कितने ही लेखकों और पत्रकारों का जमघट तो उनके यहाँ होता है और उनके साथ चर्चा के केंद्र में साहित्य तो रहता ही है, पर देश की राजनीति भी होती है। जब कभी चर्चा के दौरान लोकतंत्र को खण्डित करने की बात आती है, तो वे असहमत हो जाते हैं और देश में बढ़ते तानाशाही रूझान के प्रति अपनी चिंता और सरोकार जताते हैं, क्योंकि वे धर्मनिरपेक्ष एवं जनतांत्रिक प्रगतिशील मूल्यों के प्रति आस्थाशील हैं। वे सामाजिक एवं साहित्यिक संगठन की सभी गतिविधियों में बड़ी सक्रिय भूमिका निभाते हैं। तीन वर्षो तक बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के अध्यक्ष पद पर रहे। इन वर्षो में मुझे उनके सानिध्य में रहने और संस्कृत से संबंधित कार्यो तथा बोर्ड द्वारा प्रकाशित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैचारिक पत्रिका 'वाग्वन्दना' के लिए काम करने का निरंतर सुयोग प्राप्त होता रहा।

सिद्धेश्वर जी अपने विचारों में बहुत स्पष्ट और सकारात्मक दृष्टिसंपन्न व्यक्ति हैं जिनका अपने मित्रों और परिचितों से संपर्क निरंतर बना रहता है। सात्विक विचार, आहार, व्यवहार, रहन-सहन को धारण करते हुए अपनी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिए तत्पर सिद्धेश्वर जी अपने मित्रों के बीच यह कहते हुए सुने जाते हैं कि आज भौतिकता की अँधी दौड़ और पाश्चात्य संस्कृति के अँधे अनुकरण से आम लोग काफी पीड़ा में हैं और समाज में कई तरह की विकृतियाँ पैदा हुई हैं। भाई-भाई का, पिता-पुत्र का, पति-पत्नी का, दोस्त-दोस्त का, भाई-बहन का और गुरु-शिष्य के आपसी रिश्ते में बढ़ता दरार और आपस में प्रेम का अभाव पाश्चात्य अपसंस्कृति की ही देन है। हमारी पौराणिक भारतीय संस्कृति इस तरह की रही है कि मनुष्य तो मनुष्य, पशु-पक्षी से प्रेम करने की सीख उसने दी है। अपनी जिंदगी के सात दशक से अधिक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में गुजार चुके सिद्धेश्वर जी की विरासत का लोगों पर एक असर पड़ेगा और यह विरासत लोगों की जिंदगी बदल देने में सहायक सिद्ध हो सकती है, अकेले नहीं, बल्कि अपने लोगों के सहयोग से कर रहे हैं। पूछने पर सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि वे भी वही यात्रा कर रहे हैं जो उनके पूर्वजों ने की।

अपेक्षाओं पर खरे उतरने वाले सिद्धेश्वर जी को जहाँ भी किसी

तरह का दायित्व मिला है उन्होंने अपनी भूमिका अच्छी तरह निभाई है। जब वे रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य रहे उन्होंने राजभाषा हिंदी को रेलवे के कार्यालयों में लागू करने का काफी प्रयास किया। वर्ष 2007 में जब न्यूयार्क में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में उन्हें भारतीय प्रतिनिधिमण्डल में शामिल किया गया तब वहाँ एक प्रतिनिधि की हैसियत से न केवल उन्होंने 'वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी' पर एक आलेख प्रस्तुत किया, बल्कि कई अकादमिक सत्रों में भाग लेकर विचारों के आदान-प्रदान में सक्रिय भूमिका अदा की। इसी प्रकार बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के अध्यक्ष पद पर रहकर उन्होंने भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के साथ-साथ मध्यमा परीक्षा का आयोजन, उत्तरपुस्तिकाओं का मूल्याँकन और परीक्षाफल के प्रकाशन में एक उदाहरण प्रस्तुत किया और सारे मिथक चूर-चूर किए।

संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष के दायित्व से मुक्त होने पर सिद्धेश्वर जी का यह प्रयास हो रहा है कि युवाओं को समाज से कैसे जोड़ा जाए, क्योंकि ताकतवर होते हुए भी युवा वर्ग कैसे बेबसी की हालत में पहुँच रहा है इसे उन्होंने बखुबी समझा है। वे जानते हैं कि युवा पीढ़ी आज दिशाहीन है, जो अपनी जड़ नहीं खोज पा रही है, जो बेचैन है, उग्र है। अवसर या रोजगार की तलाश में है। वे इस बात से अवगत हैं कि भोग की इच्छा से ग्रसित युवा पीढ़ी का अपने भविष्य से नाता टूटता जा रहा है। दरअसल, पश्चिम में या यूरोप या अमेरिका अथवा ब्रिटेन में अर्थव्यवस्था से बड़ा संकट है, सामाजिक संकट या सामाजिक ताना-बाना का बिखर जाना। वहाँ घरों में दरारें आ चुकी हैं, बच्चे-परिवार बिखर चुके हैं परिवार टूटने के कारण। और जब घर या परिवार टूट जाए, तो भविष्य से नाता तो टूटना ही है। सच कहा जाए तो पश्चिम के विकास का मॉडल ही ऐसा है, जिसमें ये सारी चीजें अंतर्निहित हैं। जहाँ तक भारत का सवाल है पश्चिम के विकास का मॉडल अपनाने की वजह से यहाँ के बच्चों में भी मूल्य और संस्कार डालने की बात पर समाज में जोरदार चर्चा चल रही है। सिद्धेश्वर जी राष्ट्रीय विचार मंच और विचार दृष्टि के माध्यम से बच्चों में मूल्य और संस्कार डालने की बात निरंतर उठा रहे हैं।

सड़क पर लावारिस लाशों की तरह पड़े लोग, नशें में सड़कों के किनारे नाचते-गाते युवक-युवतियाँ, सार्वजनिक स्थानों पर भावनाओं का फूहड़ प्रदर्शन करते और अश्लील गाने गाते किशोर-किशोरियाँ नशे की वजह से उल्टियाँ करते लोग और मदद में जुटी पुलिस रोते विलखते-चिल्लाते

युवक-युवतियाँ की टोलियाँ यह नजारा किसी पब या बार का नहीं, बल्कि इस देश के हर राहों की गलियों और सड़कों का है, जिसे लोगों के साथ सिद्धेश्वर जी भी देखते हैं।

शहर की ये गलियाँ और चौराहे उच्छृँखल जीवन शैली में डूब युवाओं की आदतों की प्रत्यक्ष गवाह है। रिपोर्टों के अनुसार किशोर व किशोरियों की इन आदतों की वजह से उनके स्वास्थ्य पर तो असर पड़ ही रहा है, साथ ही स्वास्थ्य विभाग का खर्च भी बढ़ गया है। वहीं जीवन को भोगने की चाह युवाओं में इस कदर बढ़ी है कि वे जाने-अनजाने में सभी वर्जनाएँ भी तोड़ रहे हैं। प्रतिदिन अखबारों में यह पढ़ने-सुनने को मिलता है कि अस्पताल में बच्चे को जन्म देने के बाद नवजात को अस्पताल में ही छोड़ कर चली गई। कूड़े की ढेर से नवजात बच्चे मिले। इस तरह की घटनाओं में धीरे-धीरे हो रही वृद्धि राष्ट्रीय समस्या बन सकती है। माँ के आँचल व पिता के स्नेह से वंचित बच्चों की संख्या इस कदर बढ़ती रही, तो देश का भविष्य समझा जा सकता है। जिन्हें औरों का सहारा बनाना था वे खुद ही कंधे तलाश रहे हैं। इस बात को लेकर सिद्धेश्वर जी की चिंता स्वाभाविक है। सामाजिक कार्यकर्ता होने के नाते वे जो कुछ कर सकते हैं, कर रहे हैं। एक तरह जहाँ संकट कैसे-क्यों खड़े हुए, इसके कारणों की तलाश के लिए उनमें बेचैनी है। लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की 136वीं जयंती के अवसर पर राष्ट्रीय विचार मंच और विचार दृष्टि की ओर से विगत 30 एवं 31 अक्टूबर 2011 को नई दिल्ली के राजेन्द्र भवन में आयोजित मंच के पंचम राष्ट्रीय अधिवेशन के खासकर दो अकादमिक सत्रों में 'सामाजिक चेतना जागृत करने में महिलाओं की भूमिका' और 'सांस्कृतिक चेतना के उन्नयन में भारतीय भाषाओं का योगदान' विषयों पर चर्चा कराने के पीछे सिद्धेश्वर जी का यही उद्येश्य रहा है।

जिंदगी में हर व्यक्ति के कई रूप होते हैं। हर रूप में खुद को सफल बनाने के लिए जरूरी है कि उसकी प्राथमिकताएँ साफ होनी चाहिए। सिद्धेश्वर जी अपने को पहले सामाजिक कार्यकर्ता समझते हैं और इस नाते समाज की ओर सबसे पहले उस पर वे ध्यान देते हैं, क्योंकि इससे उन्हें आत्मिक शांति होती है। जिंदगी का हर क्षण जीने वाले सिद्धेश्वर जी में हर समय चुनौतियों को स्वीकार करने की प्रवृत्ति है। उन चुनौतियों को बड़ा रूप देने की बजाय हँस कर उनका सामना करना उन्हें ज्यादा कारगर लगता है। वैसे भी जिंदगी को थकान भरी बनाने की बजाय उसके महत्व को समझते

हुए आसान बनाना ज्यादा जरूरी है। कभी भी परिणाम को लेकर वे परेशान नहीं होते, बस लक्ष्य पर केंद्र बिंदु बनाए रखते हैं। इसी का परिणाम है कि इनपर दवाब कम होता है और काम अच्छे से पूरा होता है। सफल होने की भूख होना जरूरी है, लेकिन इससे व्यक्तित्व नहीं बिगड़ना चाहिए। सिद्धेश्वर जी हार के डर से कभी नहीं डरते। बस! अपना सर्वश्रेष्ठ देने का प्रयास करते हैं।

(१९) उम्र नहीं होती हौसले की

जैसा कि मैंने पहले भी कहा है कि इंसान का सबसे बड़ा भय मौत है। मौत पर जीतने का वह हर मुमकिन प्रयास करता है। वैज्ञानिक मौत पर विजय हासिल करने के लिए प्रयोगशालाओं में जुटे हैं, तो आम इनसान अपने तरीके से अलग-अलग छोटी-छोटी कोशिशें कर रहा है। इसके लिए कुछ लोग धनार्जन करने में जुटा है, इस उम्मीद के साथ कि उसी धन-संपत्ति से उनका जुड़ा नाम, उनके वजूद को बनाकर रखेगा। संतान पैदा करते हैं, ताकि उनका अस्तित्व उनकी मृत्यु के बाद भी बना रहे, लेकिन इस भीड़ में कुछ खास लोग होते हैं, जिनकी जिंदगी का फलसफा अलहद्‌दा होता है। अपने इसी सोच के चलते कोई महान ग्रंथ की रचना कर डालता है, कोई नया आविष्कार, तो कोई विद्यालय से लेकर महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, वृद्धाश्रम, अनाथालय, अस्पताल से ताजमहल तक बना डालता है। इन सबके भीतर काम करती है, व्यक्ति की रचनाशक्ति। इसी रचनाशक्ति से उभार लेता है मौत पर जीत दर्ज करने का जुनून। ऐसे ही प्रयास से रूबरू हुए हम सिद्धेश्वर जी की शक्ल में।

सिद्धेश्वर जी धन-संपत्ति न अर्जित करने की चाह लिए और यह ऐलान करते हुए कि उम्र सिर्फ एक मानसिक अवस्था है रचना-कर्म में लगे हैं। जिंदगी को कभी हार न मानने की चीज समझते हुए उन्हें सिर्फ लक्ष्य की तलाश रहती है। एक बार जब उद्येश्य मिल जाता है, तो बाकी सब बेमानी साबित होने लगता है। दरअसल, जिंदगी में वक्त जितना ही कम रहता है आप उतना ही ज्यादा शिद्दत से अपने लक्ष्य को पाने में जुट जाते हैं। यह याद रखना कि वे मृत्यु के आखिरी कगार पर हैं, जिंदगी के महत्वपूर्ण फैसले लेने में उनके लिए सबसे ज्यादा मददगार साबित हो रहा है। यानी जीवन में अगर लक्ष्य स्पष्ट हो, तो उसे पाने में आप मौत की शक्ल में खिंची वक्त की लकीर बेमानी हो जाती है। सिद्धेश्वर जी ने अपनी अभी तक की जिंदगी में यही साबित किया है।

एक सामाजिक कार्यकर्ता के नाते सिद्धेश्वर जी का कहना है कि अपने काम को और काम करने के तरीकों से उसे व्यक्ति की पहचान मिलती है और यदि कोई दूसरा व्यक्ति उस काम के तरीकों को अपनाना चाहे, तो अपना सकता है। दरअसल, उन्होंने देश भर के अलग-अलग संगठनों-संस्थानों के साथ रहकर उनके काम करने के तरीके को लंबे समय से जानने और समझने की कोशिश की। अपने जीवन के अनुभव से जो कुछ सीखा है, आज वक्त है कि अपने कार्य क्षेत्र में उसे अनुभव का उपयोग कर पा रहे हैं। जो लोग समाज के भीतर रहकर सच्चाई और ईमानदारी से काम कर रहे हैं, वह समाज के लिए काम करते हुए पूरी जिंदगी लगा देते हैं। उनके काम और उनकी प्रतिबद्धता के संबंध में उनके समाज के बाहर के लोग अब जान रहे हैं। मुझे लगता है कि इस तरह का काम करने वालों के मन में पद, पैसा और पुरस्कार के लिए लगाव नहीं रहता है। सिद्धेश्वर जी के साथ यह बात बिल्कुल खरी उतरती है।

जिंदगी वक्त के खिलाफ एक दौड़ ही तो है। हर किसी को लगता है कि अभी भी बहुत कुछ करना बाकी था, लेकिन जीवन चूक गया। जीवन की क्षण-भंगुरता और नश्वरता के गीत बहुत गाए गए हैं। जिस तादाद में ये गीत हमारे मन पर होती है उसी तादाद में ऐसे किस्से भी मौजूद हैं, जहाँ आदमी ने जीवन की नश्वरता की जिद ठानी है और उसे हराता भी है। बूझने के आखिरी पल तक प्राणों की लौ को जगाए रखने की जिद का नाम है। सिद्धेश्वर जी के जीवन की नश्वरता का भय नई रचना और लेखन के लिए प्रेरित करता है। धन-संपत्ति से लेकर अंतरिक्ष में विचरण करके इनसानी उपग्रह तक, पुस्तकालयों में अटे पड़े महान ग्रंथों से लेकर संग्रहालयों में संजोयी दुर्लभ कलाकृतियों तक-ये सब मनुष्य की अपनी रचना-शक्ति से मृत्यु पर जीत दर्ज करने के जुनून का नाम है। यही रचनाशक्ति सिद्धेश्वर जी को जीने के लिए उकसाती है।

सिद्धेश्वर जी बिते 50 साल से अपने लेखन व कार्यकलापों के जरिए समाज में अलग हस्तक्षेप करते रहे हैं आज भी 72 साल की उम्र में लिखने की उनकी बेचैनी बनी हुई है। उनका कहना है, मैं नहीं जानता कि मैं किस तरह से खाली बैठा रहूँ और कुछ न करूँ। निश्चित रूप से सिद्धेश्वर जी हमें मानवीय व सामाजिक जिजीविषा के अलग-अलग रंगों से रूबरू करा रहे हैं और चरम भोग के परम दौर में मानवीय अस्मिता के बढ़ते खतरों के बीच एक खरी और ईमानदार आवाज को गूँज-अनुगूँज में बदलने

वाले सिद्धेश्वर को साधुवाद।

प्रत्येक प्रबुद्धजन व साहित्यकार के लिए अपने उद्येश्य साधन की अलग-अलग कार्य प्रणालियाँ होती हैं। कोई राजनीति, कोई समाज सुधार और कोई दूसरे विषय को अपना प्रधान आधार बनाकर कार्य करते हैं। सिद्धेश्वर जी के लिए समाज और साहित्य के साथ पत्रकारिता की पृष्ठभूमि लेकर कार्य करने की जैसे इन्होंने अपनी आदत बना डाली है। इनके जीवन का मानो यही प्रधान स्वर है और उन्हीं के नष्ट होने की शंका इन्हें हो रही है। सच तो यह है कि समाज और साहित्य ऐसा क्षेत्र है जहाँ इन्हें कई भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं। सबसे पहले तो इन्होंने मानसिक तौर पर खुद को सुदृढ़ कर लिया है और अपनी क्षमताओं का सही तरीके से आकलन किया है, ताकि तैयारी में कहीं से कोई चूक न हो जाए।

कहा जाता है कि अध्यापक और साहित्यकार राष्ट्रीय संस्कृति के वाहक होते हैं और माली की भूमिका निभाते हैं। सिद्धेश्वर जी भी ऐसे ही चतुर माली हैं, जो, साहित्य के माध्यम से संस्कारों की जड़ों में खाद डालते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच-सींच कर महाप्राण शक्तियाँ बनाते हैं। यही कारण है कि इनका लेखन सांस्कृतिक-साहित्यिक मानस को गहरे स्तर तक प्रभावित करता है। पतझड़ की सांझ, सुर नहीं सुरीले, जागरण के स्वर शीर्षक से इनके तीन हाइकु काव्य संग्रह और 'यह सच है' नाम्नी कविता संग्रह ने लोगों को काफी प्रभावित किया।

(२०) जीवंत साहित्यिक एवं सांस्कृतिक धारा के संगम

सिद्धेश्वर जी दृढ़ता की वजह से ही अपने कर्म से विचलित नहीं होते। वे निरंतर कर्मलीन रहते हुए अपना उद्येश्य समय से पूरा करना चाहते हैं। दरअसल, संकल्प वह विकल्प है, जो उन्हें हताशा के गर्त में ढक लेने की बजाय गर्त से निकलने की सीढ़ी प्रदान करता है। उनके संकल्प की यह सीढ़ी उन्हें आशा की उन्नत अट्टालिका तक पहुँचकर लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होने को प्रेरित करती है। उनका संकल्पित मन कभी ध्येय से नहीं डिगता और वह उनको अपने लक्ष्य के प्रति तन-मन-कर्म से निष्ठा बनाए रखता है। इन्हीं संकल्पों के बल पर वे अपनी प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं। इस प्रकार इनके लिए संकल्पों को जीवन शैली का अंग बनाना सिद्धकारक सिद्ध हुआ है।

सिद्धेश्वर जी संस्कृति और साहित्य के बीच एक सेतु के रूप में

काम कर रहे हैं और समाज को संस्कृति की खुराक साहित्य की चाशनी में पिला रहे हैं। साहित्य जगत को समाज और संस्कृति पर अपने लेखन, विचारों के आदान-प्रदान और योगदान से समृद्ध करने वाले सिद्धेश्वर जी हमें हमारी परंपराओं और महापुरुषों को पृथक-पृथक मूल्याँकन करने में सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

साहित्य में आत्मीयता का बड़ा महत्व है। यहाँ स्नेह और संवेदना की सरिता कुल-किनारों को डुबा-डुबाकर बहती है। सिद्धेश्वर जी अपने मन भावों को एकत्र कर साहित्य के आँगन में दो-चार नींबू के पेड़ सदैव लगाते रहते हैं। उनके साहित्य में वैचारिक बनावट का अहसास होता है, जो साहित्य प्रेमियों के लिए बेहद आकर्षक और उपयोगी बनकर उभर रहा है तथा अलग वजूद बनाकर अपनी अद्‌भूत क्षमता का परिचय दे रहे हैं। आज जिस प्रकार लोकतंत्र पर से आम आदमी का विश्वास उठ रहा है, राजनीति आडंबरयुक्त बनती जा रही है, अन्याय और लूट-खसोट जैसे व्याप्त भ्रष्टाचार से उत्पन्न सामाजिक विद्रूपताएँ सिद्धेश्वर जी के दिल-दिमाग को झकझोर रही हैं और उनके भीतर आक्रोश को जन्म दे रही हैं, उसमें इस ज्वलंत मुद्‌दे पर वे कैसे चुप बैठ सकते हैं। उन्होंने पिछले दिनों राष्ट्रीय एकता के प्रतीक लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की 136वीं जयंती के उपलक्ष में राष्ट्रीय विचार मंच और उनके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' की ओर 30 एवं 31 अक्टूबर, 2011 को नई दिल्ली के दीनदयाल उपाध्याय मार्ग स्थित सभागार और सेमिनार हॉल में राष्ट्रीय चेतना के विभिन्न आयाम पर केंद्रित दो-दिवसीय पंचम-राष्ट्रीय अधिवेशन में चार विषयों पर चर्चा करायी जिसमें 'राष्ट्रीय एकता के लिए पारदर्शी एवं जवाबदेह लोकतंत्र' तथा 'जन जागरूकता और अन्ना हजारे आंदोलन' के महत्वपूर्ण विषयों पर जीवंत सेमिनार हुआ और विभिन्न प्रांतों से पधारे मान्य अतिथियों, वक्ताओं एवं प्रतिनिधियों के बीच विचारों का आदान-प्रदान हुआ। संगोष्ठी तथा उसके प्रश्नोत्तर काल में विचार प्रस्तुत करने वालों में उत्तराखण्ड से डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र एवं डॉ. राजकिशोर सक्सेना, बिहार से अलख नारायण झा, आचार्य रामविलास मेहता, श्री शैलेन्द्र कुमार, प्रो. पी. के. झा 'प्रेम', प्रसुन्न झा, उमेश सिंह, डॉ. अमलेश वर्मा, रामचन्द्र प्रसाद सिंह, लखनऊ से डॉ. मिथिलेश दीक्षित, यतीश चतुर्वेदी, दिल्ली से प्रो. अंजुना चौबे, आशीष कंधवे, डॉ. बी. एन. पाण्डेय, डॉ. परमानन्द पंचाल, डॉ. हरि सिंह पाल, सतीश कुमार, संतोष पटेल, जयपुर से डॉ. रमाशंकर श्रीवास्तव, डॉ. अमीता रानी, प्रो. पल्लवीं सिंह चौहाण, पंचशील

जैन, कनाडा से गोपाल मधु, गोरखपुर से सुश्री शैलजा, कानपुर से आजाद कानपुरी, हिसार से डॉ. रामनिवास 'मानव', आजमगढ़ से राजकुमार सचान 'होरी' दरभंगा से डॉ. हीरा लाल सहनी, चंडीगढ़ से डॉ. निशी मोहन, नोयडा से टी.एन. चतुर्वेदी एवं प्रो. अरुण कुमार भगत, जनकपुरी से डॉ. सुंदर लाल कथुरिया, चंद्रशेखर शास्त्री, सुरजीत सिंह जोवन, अरविंद पटेल, प्रो. मनोज कुमार, अजय कुमार, धनंजय श्रोत्रिय एवं सुधीर रंजन का नाम प्रमुख है।

सिद्धेश्वर जी बदलते समय को बारीकी से देख रहे हैं। इसलिए उन्होंने महसूस किया है कि लोगों की साहित्यिक रुचि तेजी से बदल रही है। अब साहित्य केवल मनोरंजन की चीज नहीं है। मन बहलाव के सिवा उसका और भी कुछ उद्येश्य है। अब वह केवल प्रेमी-प्रेमिका के संयोग-वियोग की कथा नहीं सुनता, बल्कि समाज और व्यक्ति के जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उसका निदान निकालता है। अब वे प्रेरणा के लिए अद्‌भुत आश्चर्यजनक घटनाएँ नहीं ढूँढ़ता और न अनुप्रास का अन्वेषण करता है। उसे उन सवालों से दिलचस्पी है, जिनसे समाज या व्यक्ति प्रभावित होते हैं। उसकी उत्कृष्ठता की वर्तमान कसौटी अनुभूति व भावों की वह तीव्रता है, जिसे वह हमारे विचारों में गति पैदा करती है।

सिद्धेश्वर जी साहित्य को प्रयोजनमूलक मानते हैं। साहित्य ने अपने लिए मानसिक अवस्थाओं और भावों का क्षेत्र चुन लिया है। सिद्धेश्वर जी कहना है कि हम जीवन में जो कुछ देखते हैं, या जो कुछ हम पर गुजरती है, वही अनुभव और वही चोट कल्पना में पहुँचकर साहित्य सृजन की प्रेरणा देती है। रचनाकार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है, उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊँचे दर्जे की होती है। जिस साहित्य से हमारी रुचि न जागे, मानसिक तृप्ति न मिले, हममें गति न पैदा हो, जो हममें सच्चा संकल्प और मुश्किलों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए सार्थक नहीं है। इसलिए सिद्धेश्वर जी जोर देकर कहते हैं कि साहित्य समाज के प्रति प्रतिबद्धता, राष्ट्र के प्रति राष्ट्रीयता की भावना और समाज व राजनीति के आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है, जो राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं।

समाजवादी विचारधारा से प्रेरणा प्राप्त करने वाले सिद्धेश्वर जी संकीर्णता का मार्ग छोड़कर ऐसा रास्ता अपनाए हुए हैं, जिसमें उनका साथ मानवता और समतावादी चिंतक-विचारक दे रहे हैं और इसी के बल पर वे मिलेजुले चिंतन एवं संस्कृति की धाराओं के संगमबोध को उजागर करने में

लगे हैं। पिछले एक दशक में उन्होंने इसी से संबंधित अनेक लेख लिखे और रचनाओं की समीक्षा की। उनके लेख जिस विचारधारा पर आधारित हैं, उस पर आधारित आंदोलन की अभी देश और इतिहास को जरूरत है। सबसे बड़ी बात यह है कि जीवंत साहित्यिक और सांस्कृतिक धारा के रूप में अभी वह उस ऊर्जा और आवेग को पैदा करने की स्थिति में हैं, जो आज से एक-दो दशक पहले थी। उम्र के बहत्तरवें साल पर इनकी सक्रियता और लेखन पर जब मैं गौर करता हूँ, तो पाता हूँ कि उनके आगे बढ़ने की राह कभी अवरूद्ध नहीं होगी।

आवाम में क्रांतिकारी चेतना जागृत करने वाले सिद्धेश्वर जी में गुरुर जरा भी नहीं है, लोकप्रियता की ऊँचाई पर होने के बावजूद वे बेहद शालीन रहे। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के अध्यक्ष पर रहकर उन्होंने इनसानियत और मुहब्बत की नुमाइंदी की और संस्कृत जगत में तहजीबी रिश्तों को नए जोश से भर दिया। उनकी दीवानगी बोर्ड और संस्कृत विद्यालयों के लोगों पर इस कदर हावी थी सिर्फ इसलिए कि उनका किसी से नफरत का रिश्ता नहीं था जब भी संस्कृत शिक्षकों तथा बोर्ड के अधिकारियों एवं कर्मचारियों से मिले स्नेह और खुशी जाहिर की। वहाँ का माहौल देखकर कोई भी समझ सकता था कि सिद्धेश्वर जी के दिल में संस्कृत, संस्कार और संस्कृति के प्रति अपार श्रद्धा व सम्मान है। बतौर वक्ता वह हमेशा सीखने की कोशिश करते हैं और दूसरों के हुनर को सराहते भी हैं। यह बड़ी शख्सियत की पहचान है। उनसे मुहब्बत और इनसानियत की जो सीख मिलती है, वह बड़े काम की है। इसीलिए समाज के सभी वर्गो में इनकी अहमियत है। एक ऐसे दौर में जब बाजार हृदय पर, मन पर और कागज पर शब्दों की अस्मिता और उसकी महत्ता को रेखांकित करना एक बड़ी चुनौती है। इस चुनौती ने गाँव-कस्बों की दूसरी जिंदगी को देखने और भोगने की रचनात्मक ईमानदारी की दरकार को हाशिए पर खिसका दिया है।

इस विषम परिस्थिति में सिद्धेश्वर जी सार्वकालिक और सार्वदेशिक महत्व के रचनाकर्म एवं समसामयिक विषय और मूल्य को बरकरार रखने में तत्पर हैं। अच्छी बात यह है कि अपने लेखन और साहित्यिक अवदानों से लोक परंपरा और उनके आगे सबसे बड़ी चुनौती देश को 'देस' की तरह देखने की है। नहीं तो शाइनिंग इंडिया की चकाचौंध में भारत उसके गाँव-कस्बे और पूरा लोक जीवन कहीं पीछे छूट जाएगा। याद रहे कलम की चेतना और कुदाल के संघर्ष को हिंदी साहित्य के इतिहास ने बड़ी ईमानदारी

से जिया है। इस ईमानदारी का अपने साहित्य लेखन में अक्षर निर्वाह करने वाले सिद्धेश्वर नाम की मशाल कलम के हर उस सिपाही का भविष्य का रास्ता दिखा रही है जो गाँव और समाज के साझे को संजोने की साहस दिखाए। हिंदी आज बाकायदा तौर पर बाजार की भाषा नहीं है, तो इसके पीछे एक बड़ी वजह बाजारवादी मूल्यों का हिंदी के सांस्कृतिक तेवर से मेल नहीं रखना भी है। इसी स्थिति में सिद्धेश्वर द्वारा हिंदी के तेवर को जेवर बनाकर रख रहे हैं, यह बड़ी बात है। इसकी तो दाद उन्हें देनी होगी।

इसमें कोई शक नहीं है कि सिद्धेश्वर जी ने अपने लेखन और 'विचार दृष्टि' पत्रिका के माध्यम से प्रबुद्धजनों को एक रचनात्मक और वैचारिक आधार दिया है। उन्होंने जीवन के यथार्थ को व्यापकता दी। मैं यह भी मानता हूँ कि समाज-सापेक्ष विचारों के पीछे सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन का हाथ होता है, मगर साहित्य भी उस आंदोलन का आधार होता है। दुनिया के नक्शे पर जब आज समाजवादी आंदोलन कमजोर पड़ रहा है, तब हर तरह की अराजकता हावी हो गई। समाजवादी नेता सड़कों से हटकर घरों कि ओर चले गए। 'आज अन्ना हजारे ने भ्रष्टाचार के खिलाफ इतना बड़ा आंदोलन छेड़ रखा है, जबकि यह काम समाजवादियों को करना चाहिए था। वैसे आज जितने भी आंदोलन चल रहे हैं समाजवादियों की भागीदारी नहीं दिखाई पड़ रही है। सिर्फ बयान दे देना ही काफी नहीं होता है। नई पीढ़ी के कुछ लोग या तो बंदूक उठा रहे हैं या असंतोष जाहिर कर रहे हैं। ऐसे में सिद्धेश्वर जी के द्वारा साहित्य के जरिए समाजवादी विचारधारा को मजबूत बनाने का प्रयास प्रशंसनीय है। वे हताश-निराश नहीं हैं, परेशान हैं। सोचते हैं कि क्या होता जा रहा है। टी.वी. चैनलों पर करोड़पति का सपना दिखाया जा रहा है, जबकि ऐसे भयावह वक्त में दो जून की रोटी उपलब्ध कराने की बात करनी चाहिए थी। इस प्रकार आज सामाजिक मूल्य और मान-मर्यादा की उपेक्षा की जा रही है। यह नकारात्मक प्रभाव छोड़ रहा हैं और आर्थिक असमानता की नई फसल बो रहा है।

समाज में रोज ऐसी-ऐसी घटनाएँ घट रही है, जिस पर संवेदनशील साहित्य लिखा जा सकता है। सिद्धेश्वर जी इसी साहित्य पर काम कर रहे हैं, लेकिन यह अकेले का काम नहीं है। अगर सामूहिक तौर पर प्रगतिशील और समानधर्मी लोग लगें, तो बेहतर परिणाम मिल सकते हैं। दरअसल प्रगतिशील और सामाजिक विचार को आज बाजार ने अख्तियार कर लिया है। विचार और बाजार के बीच अभी मुश्किल लड़ाई चल रही है। ऐसे वक्त

मुझे याद आती है अकबर इलाहाबादी की निम्नपंक्तियाँ, जो आज के हालात पर सटीक बैठती हैं–

हजारों दिल मसलकर पांवों से झुंझला के फरफराया,
लो पहचानों तुम्हारा इन दिलों में कौन सा दिल है।

जीवन के बहत्तर वसंत पार कर चुके सिद्धेश्वर जी पटना के एक ऐसे शख्स हैं, जो अध्ययन–लेखन के साथ–साथ यहाँ की सांस्कृतिक–साहित्यक गतिविधियों में भी स्वयं को समर्पित कर चुके हैं। इन्होंने 1962 में पटना विश्वविद्यालय से एम.ए. की डिग्री हासिल करने के बाद 1963 से ही रेलवे तथा भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग में अपनी सेवा देने के साथ सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में काम किया और अभी सार्वजनिक जीवन में भी उन्होंने हिस्सा लिया। यानी हर क्षेत्र में सकारात्मक बदलाव के विचार ने इन्हें प्रभावित किया। इनकी जीवन–यात्रा के बारे में जानकर लोगों को जहाँ गर्व होता है, वहीं उन्हें प्रेरणा भी मिलती है।

बड़े पद से सेवानिवृत्त होने वालों की बड़ी तमन्ना होती है। आजादी के बाद वे भी गुलाम की इच्छा रखते हैं। लाल–पीली बत्ती और दाएँ–बाएँ चाहने वालों की पंक्ति किसे अच्छी नहीं लगती। मग़र हर कोई ऐसा नहीं होता। सिद्धेश्वर जी इन्हीं में से एक हैं। भारत सरकार के लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद से स्वैच्छिक अवकाश प्राप्त कर दिल्ली में स्थाई रूप से साहित्य, संगठन और पत्रकारिता की सेवा में रह रहे सिद्धेश्वर जी को बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के अध्यक्ष का दायित्व सौंपने की बात जब दूरभाष पर कही, तो उन्होंने अनिच्छा जाहिर की, किंतु अपनी पत्नी के द्वारा मुख्यमंत्री के अनुरोध का आदर करने की बात सुनकर सिद्धेश्वर जी विवश हो गए और आखिरकार उन्होंने दायित्व संभाला। मगर तीन साल की निर्धारित समय–सीमा समाप्त होने के पंद्रह दिनों पूर्व ही सिद्धेश्वर जी ने लिखित रूप में मुख्यमंत्री से इस दायित्व से मुक्त कर देने का अनुरोध कर लोगों को आश्चर्य में डाल दिया। लोग पहले से ही मान रहे थे कि उनकी कर्त्तव्य निष्ठा और ईमानदारी को देखकर इनकी अवधि का विस्तार पुनः कर दिया जाएगा, मगर सिद्धेश्वर जी ने मुख्यमंत्री एवं शिक्षामंत्री से साफ–साफ कह दिया कि नहीं बहुत काम कर लिया, अब कुछ लिखूँगा।

वैश्वीकरण की वजह से हमारा सांस्कृतिक क्षेत्र काफी प्रभावित हुआ है। सांस्कृतिक क्षेत्र में इसने बहुत तोड़–फोड़ की है। इसलिए इनका

... की कुछ अफरा-तफरी सी मची हुई है, दोनों के संरक्षण का प्रयास इन दिनों साहित्य में चल रहा है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में जिस चीज की हम सबसे अधिक चर्चा कर रहे हैं वह है अपसंस्कृति। इस बीच खान-पान और वेशभूषा की शैली में तेजी से बदलाव आया है। विदेशी गीत-संगीत और नृत्य उनके जीवन के अहम हिस्से बनते जा रहे है। यानी एक नई जीवन शैली हमें दिखाई देती है। यह जीवन शैली भी संस्कृति का ही हिस्सा है। यानी हमारे रहन-सहन और खान-पान के संस्कार बदल रहे हैं। सिद्धेश्वर जी इसे गहराई से महसूस करते हुए कहते हैं कि आजकल की पीढ़ी अपनी ही चिंता अधिक कर रही है और वह न परंपरा का सम्मान करती है और न ही बड़ों का। यानी संस्कारों में यह परिवर्तन एक सांस्कृतिक परिवर्तन है, क्योंकि संस्कार ही संस्कृति है। साहित्य भी संस्कार देता है। सिद्धेश्वर जी साहित्य में संस्कृति देने का प्रयास कर रहे हैं। वे हाशिए पर धकेले गए, तबकों-समुदायों के प्रति इन दिनों अधिक संवेदनशील हैं तथा अन्य अस्मिताओं के विकास की चिंता करने लगे हैं। नष्ट हो रहे लोक के अच्छे पक्षों को उजागर करने के लिए वे अपने साहित्य को सुरक्षित कर रहे हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि स्त्री-विरोधी, दलित विरोधी संस्कृति भी हमारी ही चिंता है और आज भी पुरुष प्रधान और जाति धर्म संचालित मानसिकता की क्रूरता मौजूद है। ये ऐसे संस्कार है, जिनसे संघर्ष जारी है।

(२१) स्वच्छ राजनीति की चाहत

सिद्धेश्वर जी के पास उच्च पार्श्वगत जीवन(High Profile Career) है। इसलिए राजनीति में वे कुछ लेने नहीं, बल्कि देने के लिए आए हैं। वे चाहते हैं कि अपने अनुभव का उपयोग समाज व देश की सेवा के लिए करें। इसीलिए तो वे भारतीय लेखा एवं परीक्षा विभाग के वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद से स्वैच्छिक सेवानिवृत्त होने के लिए उन्होंने अपने आवेदन में लिखा था, ''संभवत: हमारी क्षमता का सदुपयोग इस विभाग में नहीं हो पा रहा है। इसलिए मुझे वृहत्तर व व्यापक समाज व राष्ट्र हित में स्वेच्छा से सेवानिवृत्त होकर अपने जीवन का शेष समय समाज व देश सेवा में लगाना श्रेयष्कर होगा, ताकि मेरे अनुभव का लाभ उसे मिल सके।'' यही सोचकर सेवानिवृत्ति के पश्चात् उन्होंने राजनीति की ओर कदम बढ़ाया।

पटना विश्वविद्यालय से एम.ए. करने के बाद कुछ महीनों तक भारतीय रेल और फिर भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग का 36 साल

का अनुभव तथा स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति के आठ साल बाद बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना में तीन साल तक उसके अध्यक्ष का अनुभव- ये सब हैं उनकी काबिलियत।

जब संस्कृत बोर्ड में तीन साल तक उसके अध्यक्ष रहे, तो उनकी प्रशासनिक क्षमता देखकर संस्कृत जगत के लोग ही नहीं, बल्कि राज्य भर के लोग हैरान हो गए, क्योंकि स्वच्छ प्रशासन की आकांक्षा उनमें थी। आज जब वे राजनीति में हैं, तो यहाँ भी उनकी चाहत स्वच्छ राजनीति की है। जद(यू) के साथ उनका मेल है या यूँ कहा जाए कि बिहार के वर्तमान मुख्यमंत्री नीतीश कुमार की विचारधारा के पोषक होने के नाते स्वच्छ राजनीति की ओर अग्रसर कदम में सहयोग करना चाहते हैं सिद्धेश्वर जी। आखिर तभी तो जब कभी भी नीतीश कुमार के कदम लड़खड़ाते हैं, तो सिद्धेश्वर जी उन्हें आगाह कर देते हैं। लिखित रूप में भी वे उनका ध्यान आकृष्ट करते रहते हैं।

सत्ता पर काबिज होने के लिए अपने राजनीतिक मूल्यों की बलि देकर एक दूसरे के साथ राजनेता जिस प्रकार हाथ मिला रहे हैं सिद्धेश्वर जी उसे लोकतंत्र का दुर्भाग्य मानते हैं। पिछले दिनों 2016 में देश के पाँच राज्यों में आम चुनाव के वक्त कई जगहों पर करोड़ों रुपये के काला धन का जो बंडल पकड़ा गया उससे यह जाहिर होता है कि भारतीय लोकतंत्र पर अर्थतंत्र ने कब्जा कर लिया है। पकड़े गए करोड़ों रुपए ने यह साबित कर दिया कि चुनाव में बड़े पैमाने पर काले धन का उपयोग होगा।

सार्वजनिक जीवन में रहकर भी सिद्धेश्वर जी का ध्यान समाज की समस्याओं पर जाता है, तो वे पाते हैं कि समाज की समस्याओं की असली जड़ पश्चिमी मूल्यों की अवधारणाएँ हैं, जो हमारे सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन की आधार बनी हुई हैं जबकि सच्चाई यह है कि हम व्यक्ति, परिवार और समुदाय के रूप में उन मूल्यों का आज भी स्वीकार नहीं कर पाते, लेकिन हमारे यहाँ बदलाव की दिशा उन्हीं मूल्यों की ओर है। सिद्धेश्वर जी का मानना है कि अगर वैचारिक स्तर हम अपनी सामाजिक समस्याओं को ठीक से समझकर उनके हल की दिशा में आगे बढ़ें, तो उसका समाधान अवश्य निकल सकता है। आज स्थिति यह है कि आर्थिक विकास का लाभ ताकतवर को मिल रहा है और कमजोर को निर्धनता जिसके दुष्परिणाम स्वरूप होने वाला सामाजिक तनाव हमारी आर्थिक प्रणाली के ताने-बाने को तोड़ रहा है। ऐसे वक्त हमें याद आते हैं, एडम स्मिथ के

वे शब्द जिसमें उन्होंने कहा था, ''वह समाज कभी समृद्ध और प्रसन्न नहीं हो सकता जिसका एक बड़ा भाग गरीब और दयनीय हो।' अपने हितों से आगे रखने की जरूरत है और छोटी अवधि के लाभोंवाली मानसिक़ता पर विजय पाने की आवश्यकता है, तभी 'वसुधैव कुटुबंकम' की अवधारणा सार्थक हो सकेगी। इसके लिए हमें समुदाय को मूल्य प्रणाली के अनुसार रहना होगा।

दरिद्रता समाज के लिए अभिशाप है। इस अभिशाप से मुक्त हुए बिना कोई भी समाज आगे नहीं बढ़ सकता। इस तथ्य को सिद्धेश्वर जी स्वीकार करते हैं, फिर भी वे अपरिग्रह को एक महत्वपूर्ण मूल्य और स्वस्थ समाज-निर्माण का प्रमुख अंग मानते हैं। इसी प्रकार भारतीय राजनीति में निरंतर आ रही गिरावट पर चिंता व्यक्त करते हुए सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि पहले चुनाव के समय ही भ्रष्टाचार की बातें नहीं मिल रही हैं, संसद आम आदमी की बजाय पूँजीपतियों का प्रतिनिधित्व कर रहा है और लोकतंत्र चौराहे पर खड़ा है। ऐसी विषम स्थिति में राजनीतिक सोच बदलनी होगी और इसे सकारात्मक रूप में अपनाना होगा। क्योंकि संसदीय लोकतांत्रिक पद्धति में राजनीतिक दल और उसके नेताओं द्वारा ही लोकतंत्र संचालित होता है। मगर हमारे भारतीय संविधान और लोकतंत्र के समक्ष बेरोजगारी, गरीबी और भ्रष्टाचार जैसी चुनौतियाँ हैं जिनका सामना हमें करना है, ताकि व्यवस्था से भरोसा न उठ सके।

राजनीति पर अपनी बात का खुलासा करते हुए सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि राजनीति की निखालिस मौकापरस्ती सियासी सुचिता के लिए शुभ संकेत नहीं हैं, क्योंकि किसी एक राजनीतिक दल का बेईमान नेता यदि दूसरे दल में चला जाता है, तो उसके दाग छिप नहीं जाएँगे। ऐसे में अन्ना हजारे के नेतृत्व में चलाए जा रहे भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन कुछ आस जरूर बँधाते हैं कि अभी प्रतिरोध की क्षमता जनता में बाकी बची है।

आज जिस प्रकार निर्वाचित जनप्रतिनिधियों द्वारा पसंद का अवमूल्यन किया जा रहा है इसका निराकरण चुनाव नियमावली में प्रगतिशील संसोधन कर यदि जनप्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार तथा अस्वीकार करने का हक मतदाताओं को मिले, तो इन सांसदों व विधायकों पर नियंत्रण रह सकता है। आखिर लोकतंत्र में जनता ही तो सर्वोपरि है, किंतु मौजूदा दौर में हमारी राजनीति अपने जनता और लोकतंत्र के विरूद्ध खड़ी होती नजर आ रही है। देश के जनप्रतिनिधियों, राजनेताओं और नौकरशाहों द्वारा लोकतंत्र

को और खोखले नारों से लगातार भरमाते हुए पैंसठ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। यही कारण है कि प्रेमचंद का 'होरी' आज भी एक जून की रोटी के लिए बी.पी.एल. की क़तार में खड़ा अपनी बारी का इंतजार कर रहा है और 'कबीर' अपनी ही खैर मनाते हुए जैसे-तैसे समय काट रहा है। इतिहास इसका भी एक दिन जवाब माँगेगा।

चुनाव में जीत हासिल करने के बाद ज्यादातर जनप्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी न होकर अपने ही प्रति उत्तरदायी दिखते हैं। वे अपने क्षेत्र की जनता के साथ जाति, मजहब, वोट की राजनीति आदि के आधार पर भेदभाव करते देखे जा रहे हैं। विधान सभा चुनावों में काले धन के उपयोग की प्रवृत्ति में दिख रही वृद्धि चिंताजनक है। यह बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है कि राजनीतिक दलों की दृष्टि इतनी संकुचित हो गई है कि वह केवल चुनाव जीतने तक सीमित रह गई है। आखिर तभी तो उम्मीदवार के चयन का आधार उसे जिताऊ होने की संभावनाओं पर आकर टिक गया है। जहाँ तक चुनाव में उपयोग किए जा रहे काले धन पर रोक का सवाल है यह तभी संभव है जब राजनीतिक दलों के वित्तीय मामलों को पारदर्शी बनाया जाए और उनकी जाँच की व्यवस्था की जाए। चुनाव में काले धन का प्रयोग रोकने के लिए समय-समय पर चिंताएँ जरूर जाहिर की गईं, मगर इसे रोकने के लिए गठित इन्द्रजीत गुप्ता समिति की सिफारिशों पर अमल नहीं हो सका। दरअसल, सत्ता पक्ष एवं विपक्षी दलों में राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव के चलते भी काले धन की बढ़ती प्रवृत्ति को सुधारने के लिए कोई कानून आज भी दूर की कौड़ी हैं। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए केंद्र सरकार ने चुनावों में काले धन के इस्तेमाल की गतिविधियों की निगरानी के लिए आनन-फानन में वित्त मंत्रालय एवं भारतीय रिजर्व बैंक तथा जाँच एजेंसियों के अधिकारियों को लेकर एक समिति पुनः गठित कर दी है।

इस देश का यह हाल है कि इधर पिछलें दिनों हुए एक शोध का खुलासा हुआ है कि देश की लगभग एक चौथाई आबादी भुखमरी और कुपोषण के जाल में फँसी है और दूसरी ओर भारतीय राष्ट्र प्रेम से चलकर पुत्र और परिवार-प्रेम में सिमट चुकी है। चुनाव होते रहते हैं सरकारें कायम रहती हैं या बदलती हैं। मुश्किल यह है कि जो बदलना चाहिए, वह नहीं बदलता। बीसवीं सदी के सत्तर के दशक के आरंभ में ही जन कवि नागार्जुन ने चुनाव को 'प्रहसन' बताते हुए कहा था-'अब तो बंद करो, हे देवी, यह चुनाव का प्रहसन' क्या चालीस साल बाद यह चुनाव प्रहसन नहीं रहा?

(२२) शिष्टाचार जीवन का दर्पण

सिद्धेश्वर जी के व्यवहार में शिष्टता और शालीनता है जिसका प्रभाव लोगों पर पड़ता है। उनके संपर्क में आने पर शिष्ट आचरण की झलक देखने को मिलती है। इसी शिष्टाचार और व्यवहार की वजह से घर में हों या बाहर, कार्यालय में हों अथवा दुकान पर और मित्रों, परिचितों के बीच हों अथवा अजनबियों में, हर-क्षण वे बड़े-छोटों से उचित बर्ताव करते हैं और समयानुकूल शिष्टाचार बरतते हैं। शिष्टाचार उनके जीवन का दर्पण है जिसमें उनके व्यक्तित्व का स्वरूप दिखाई देता है। इसी के द्वारा उनका समाज में परिचय होता है। यही कारण है कि शिष्टाचार को अपने लेखन का विषय-वस्तु बनाते हैं और जीवन में समुचित स्थान देने की बात करते हैं। उनका मानना है कि समुचित आचरण और शिष्टाचार से व्यक्ति मानसिक दृष्टि से विकसित करता है। आचरण में शिष्टता और शालीनता मानसिक विकास की परिचायक है।

सिद्धेश्वर जी की शिष्टता और शालीनता के पीछे उनके द्वारा आधुनिक जीवन शैली और आर्थिक सामाजिक सोच नहीं अपनाया जाना प्रमुख कारण है, क्योंकि वे ही व्यक्ति को भावनात्मक रूप से कमजोर बनाते हैं। इसी वजह से टूटते सामाजिक ताने-बाने और अलग-थलग पड़ते बच्चे और युवाओं को जिंदगी से प्यार करना सिखाने की वे बात करते हैं।

आप मानें या न मानें बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का पद भी सिद्धेश्वर जी इनके शिष्टाचार, अपने गुणों और व्यवहार के चलते मिला था। किंतु उन्होंने कभी भी अपने पद के प्रति चिंता नहीं की। दरअसल, जो सम्मान एक व्यक्ति को मिलता है वह अपने गुणों से मिलता है, वह उसके पद की वजह से मिले सम्मान से काफी भिन्न होता है। सच तो यह है कि जो सम्मान किसी व्यक्ति को पद के कारण मिलता है वह कम समय के लिए और अस्थायी होता है। मगर जो सम्मान उसे अपने शिष्टाचार, व्यवहार और गुणों से मिलता है, वह हर समय साथ रहता है। पद अस्थायी और पल भर के लिये होता है। इस बात से सिद्धेश्वर जी हर तरह से वाकिफ थे। आखिर तभी तो उन्होंने पद के लिए कभी परवाह नहीं की, क्योंकि उनके मन में पद के लिए न तो कोई लालसा रही और न तो कुछ खोने का उन्हें भय रहा। इसलिए पद पर रहकर उन्होंने हमेशा अपने दिल और दिमाग दोनों की बातें सुनने का नाजुक संतुलन बनाए रखा, प्रतिबद्ध होकर काम किया और दिमाग की सुने। हजार लोग कहते रहे, पर वे मुख्यमंत्री अथवा मानव

संसाधन विकास मंत्री को लिखने से वे बाज नहीं आए। बातचीत करने के अपने तरीके को शिष्ट और सीधा संपर्क बनाए रखे।

कहा जाता है कि अवसर जीवन का सत्य है। बिना अवसर पाए योग्यता अयोग्यता बनकर मूक रहती है। यह बात सिद्धेश्वर जी के जीवन के साथ शत-प्रतिशत लागू होती है। वैसे सरकारी सेवा में रहकर तो वे अपनी योग्यता और ईमानदारी का लोहा मनवा चुके थे, मगर रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य तथा बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व इनके कंधों पर सौंपे जाने के बाद तो इन्होंने अवसर साकार करके संस्कृत बोर्ड की दिशा बदल दी, क्योंकि समय पर सामने आते के साथ ही अवसर प्रत्यक्ष हो गए। कोई अवसर तलाशता है और किसी को अवसर तलाशता है। सिद्धेश्वर जी को अवसर ने तलाशा और इनके सही मूल्याँकन से नीर-क्षीर की दृष्टि ने अवसर को सार्थक में तब्दील कर दिया तथा अवसर के श्रेष्ठ उपयोग से बोर्ड विशिष्ट बना। इनके धैर्य और निष्ठा से संस्कृत बोर्ड के शाश्वत शिलालेख में नाम अंकित हो गया।

सिद्धेश्वर जी एक ऐसे शिष्टाचारयुक्त साहित्यकार हैं जो अबतक अनैतिक और स्वार्थ लोलुप व्यवसायियों के हाथों नहीं बिके हैं।

(२३) सिद्धेश्वर जी की व्यापक दृष्टि

सामाजिक कार्यकर्ता और संपादक होने के साथ-साथ सिद्धेश्वर जी भारतीय भाषाओं और साहित्य एवं संस्कृति की रक्षा के लिए सतत् संघर्षरत हैं। आज जब 72 के पड़ाव पर रहकर साहित्य, समाज, संस्कृति और पत्रकारिता पर जो प्रश्न उन्होंने उठाए हैं, हमारी-आपकी जिम्मेदारी बनती है कि उन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार-विमर्श करें, क्योंकि वास्तव में अपनी रचनाओं के माध्यम से जो प्रश्न उन्होंने उठाए हैं, उनसे हमारा देश और समाज पहले की अपेक्षा आज कहीं अधिक जूझ रहा है।

सिद्धेश्वर जी की डेढ़ दर्जन पुस्तकों एवं सैकड़ों लेख-निबंधों के विपुल भंडार पर एक नजर डालने से ही उनके काम की विविधता और विस्तार समझ में आ जाता है। उन्होंने हिंदी जगत को अबतक भाषा और समाज, राष्ट्रभाषा की समस्या, राष्ट्रीय एकता की समस्या आदि पर अपनी पुस्तकों में विस्तार से चर्चा की है। सिद्धेश्वर जी प्रगतिशील विचारों के होते हुए भी अपनी दृष्टि उससे परे ले जाते हैं। चिंतन की सभी दिशाओं में वैचारिक चहलकदमी करती हुई सिद्धेश्वर जी की रचनाएँ अनेक हैं जो कर्म

के प्रति उनकी गहन प्रतिबद्धता दर्शाती हैं। उनका मत है कि संस्कृति और सभ्यता के क्षेत्र को या उनकी समस्याओं को रूढ़िवादियों के भरोसे छोड़ देना उचित नहीं है। बल्कि प्रगतिवादी एवं आधुनिक नजरिए से उनपर विमर्श किया जाना आवश्यक है।

दरअसल, सिद्धेश्वर जी की आस्था और आत्मविश्वास का उत्स उस परिवेश में है, जिसने उन्हें स्वाभिमान और खुद्दारी का पाठ पढ़ाया और जीवन जीने की सीख दी। बिहार के नालन्दा जिलांतर्गत पावन गाँव बसनियावाँ के एक किसान परिवार में जन्में सिद्धेश्वर जी के बचपन में उनके व्यक्तित्व का निर्माण करने में दादी एवं बुजुर्ग भाभी के मुँह से सुनी हुई कहानियों का बड़ा हाथ रहा है। उन दिनों गाँवों में रहकर उन्होंने किसान एवं मजदूरों के जीवन को बहुत निकटता से देखा था और ग्रामीणों की समस्याओं से भी रूबरू हुए थे।

सिद्धेश्वर जी को बचपन से ही किताबों से बहुत लगाव रहा है। इसलिए आज भी उनका पटना के पुरन्दरपुर स्थित 'बसेरा' और ए. जी. कॉलोनी के 'संस्कृति' निवास के अधिकतर कमरे किताबों एवं पत्र-पत्रिकाओं से भरे पड़े हैं। यही कारण है कि साहित्य को वे इतना संजीव कर देते हैं कि उनके खुद सहित उनके सान्निध्य में आने वाले मित्र एवं शुभेच्छु थोड़ी देर के लिए अपने विद्यालय, महाविद्यालय अथवा कार्यालय सभी को भूल जाते हैं। आखिर तभी तो उनलोगों के साथ सिद्धेश्वर जी का एक अपनत्ववाला संबंध विकसित हुआ है।

सिद्धेश्वर जी की लेखन-यात्रा में वक्त बीतने के साथ बहुत बदलाव आए। उन्होंने काफी कविताएँ लिखीं, खासतौर पर हाइकु में। अबतक हाइकु में उनकी पतझड़ की सांझ, सुर नहीं सुरीले, जागरण के स्वर शीर्षक से काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। सामान्य कविताओं का संग्रह 'यह सच है' भी प्रकाशित हो चुका है। इसके बाद उन्हें लगने लगा कि कविताएँ लिखना ही काफी नहीं है। इसलिए अपने से पूर्व एवं अपने समय के जिन साहित्यकारों, कलाकारों, पत्रकारों, राजनीतिज्ञों और समाज-सेवियों पर सहृदयता के साथ संस्मरणात्मक निबंध प्रस्तुत किए उनमें डॉ. राम विलास शर्मा, गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर, स्वामी विवेकानंद, प्रेमचंद, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', पं. रविशंकर, अमीर खुसरो, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर', रामवृक्ष बेनीपुरी, गोपाल सिंह नेपाली, सुब्रह्मण्य भारती, फादर कामिल बुल्के, आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री, राही मासूम

रजा, डॉ. निर्मल वर्मा, अमृता प्रीतम, कुर्तुल ऐन हैदर, डॉ. जगदीश गुप्त, काका हाथरसी, फणीश्वर नाथ रेणु, कथाकार कमलेश्वर, शंकर दयाल सिंह, डॉ. शैलेन्द्र नाथ श्रीवास्तव, डॉ. बैद्यनाथ शर्मा, परमानंद दोषी, देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, लोकनायक जयप्रकाश नारायण, लाल बहादुर शास्त्री, लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल, डॉ. भीमराव अम्बेदकर, मधु दण्डवते, किशन पटनायक, जननायक कर्पूरी ठाकुर, भागवत झा आजाद, डॉ. धर्मवीर भारती, प्रकाश जोशी, नरेन्द्र मोहन, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', विस्मिल्ला खाँ, मनोहर श्याम जोशी, मकबूल फिदा हुसैन, विन्ध्यवासिनी देवी, डा. भूपेन हजारिका, जगजीत सिंह, गुरुगोविन्द सिंह, बाबा आम्टे, छत्रपति सिंह, साहूजी महाराज, डॉ. लक्ष्मीमल सिंधवी, डॉ. (कैप्टन) लक्ष्मी सहगल, देवेन्द्र कुमार कर्णावट तथा न्यायमूर्ति बी.एल यादव के नाम उल्लेखनीय हैं।

यह सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व की सर्वसमावेशी प्रकृति और व्यापक दृष्टि ही है कि उन्होंने उपर्युक्त महापुरुषों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विश्लेषण करते हुए संस्मरण लिखा जो सारगर्भित और हृदय-स्पर्शी लगता है। वास्तव में सिद्धेश्वर जी का जीवन का एक साहित्य साधना की निरंतर विकसित होती संघर्ष-यात्रा का पर्याय है जिससे समस्त साहित्य जगत प्राण ले सकता है।

'हमें अलविदा ना कहें' नाम्नी यह संस्मरणात्मक निबंध संग्रह पुस्तक लिखकर सिद्धेश्वर जी ने इतिहास को कथा की तरह देखने, लिखने और बरतने वाले लेखक के रूप में अपने को प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक से यह प्रमाणित होता है कि इन महापुरुषों के जीवन में भी उनकी गहरी अभिरुचि है और उन महापुरुषों के जीवन को नजदीक से देखने और उनके जीवन की कथा कहने की ख्वाहिश उनमें है। इससे सिद्धेश्वर जी के लेखन और अध्ययन के व्यापक दायरे और दृष्टि का पता चलता है। पुस्तक में सम्मिलित महापुरुष वे लोग हैं, जो अपने-अपने ढंग से धर्मनिरपेक्षता, उदारवाद, व्यक्तिगत ईमानदारी, सार्वजनिक जीवन में निष्ठा, सामाजिक एवं साहित्यिक प्रतिबद्धता की मिसाल हैं। सिद्धेश्वर जी उन व्यक्तित्वों के ऐसे आयामों को पकड़ने का प्रयास किया है, जिसके बारे में आमूमन कम लिखा और जाना गया है। पूछने पर सिद्धेश्वर जी बताते हैं कि 'महापुरुषों के निधन पर श्रद्धांजलि की औपचारिकता निभाना तो लोग जानते हैं, पर यह नहीं जानते कि उनका सम्मान या मूल्याँकन कैसे किया जाए और उनके बताए रास्ते पर कैसे चला जाए।'

इस पुस्तक के प्राक्कंथन में सिद्धेश्वर जी लिखते हैं, "इस संस्मरणात्मक कृति के माध्यम से रचनात्मक व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू सामने आए हैं। हो सकता है इनमें से किसी व्यक्तित्व का ज़िस तरह मूल्याँकन किया जाना चाहिए उस तरह हमने नहीं किया। बेशक उनकी कमजोरियों पर चर्चा होनी चाहिए, लेकिन निश्चय ही उनकी ताकत कमजोरियों से कई-कई गुणा अधिक है। फिर भी यह कहना चाहूँगा कि जिस तीव्र संवेदनशीलता के साथ हमने उनके जीवन को खंगाला है उससे निश्चित रूप से पाठकों की समझ विकसित होगी और संस्मरणीय व्यक्तित्व के बारे में जो संशय और विभ्रम की स्थिति रही है, वह भी साफ होगी, क्योंकि वह संस्मरण उनके असली रूप में देखने की तलाश है।"

सिद्धेश्वर जी की यह किताब ऐसी कई टिप्पणियों से भरी है। सबसे बड़ी बात यह है कि यह शख्सियतों को सिर्फ ऐतिहासिक घटनाओं के सहारे नहीं देखती, बल्कि ऐसे दस्तावेजों, निजी टिप्पणियों-विश्लेषणों के सहारे भी देखती है, जिनका इस्तेमाल मुख्यधारा के लेखन में कम होता है। यह एक पठनीय किताब तो है ही संग्रहणीय भी। इस पुस्तक से यह साबित होता है कि सामाजिक सरोकार के साथ-साथ सिद्धेश्वर जी का साहित्यिक सरोकार पुख्ता है। क्योंकि यह संस्मरणीय व्यक्तियों के जीवन और रचना संसार के सर्वांग को प्रस्तुत करती है।

साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में सिद्धेश्वर जी एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें हम एक व्यक्ति नहीं, बल्कि पूरी संस्था कह सकते हैं। सिद्धेश्वर जी प्रारंभ से ही एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में जाने जाते रहे हैं, पर मेरा मानना है कि उनके व्यक्तित्व का एक अंशमात्र है। कारण कि वे सामाजिक कार्यकर्ता के साथ-साथ कवि, साहित्यकार, संपादक, संगठनकर्ता, गद्य की अनेक विधाओं के रचनाकार और राजनीतिक कार्यकर्ता भी हैं। इससे इतर वह एक अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, भारतीय संस्कृति के विचारक तथा सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियों को भारत के भूत-वर्तमान-भविष्य के द्रष्टा भी हैं। सिद्धेश्वर जी को समाज के वे लोग ज्यादा आकर्षित करते हैं जो रूढ़िवादी संस्कृति, सामंती प्रथा, पाखंड और अँधविश्वास के विरोधी रहे हैं। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व संभालने के बाद सिद्धेश्वर जी ने विश्व भाषाओं की जननी संस्कृत और संस्कृति की नई पहचान स्थापित की है। उन्होंने संस्कृत और संस्कृति के सवाल पर दूसरों की अपेक्षाओं का सिर्फ जवाब ही नहीं दिया, अपितु अपने विचारों पर भी निरंतर

मंथन किया। इन सभी पर वह तथ्य ही नहीं प्रस्तुत करते हैं, बल्कि प्रश्नों के उत्तर भी ढूँढ़ते हैं और संस्कृत से जुड़े लोगों को उत्तर ढूँढ़ने के लिए प्रेरित भी करते हैं। वैचारिक दृढ़तावाला सिद्धेश्वर जी जैसा व्यक्ति आज विरल ही मिलता है। निबंधकार के रूप में सिद्धेश्वर जी ने जो मौलिक स्थापनाएँ दी हैं वह केवल साहित्य ही नहीं, अपितु समाजशास्त्र को भी महत्वपूर्ण देन है, क्योंकि उनके विवेचना की आधारशिला लोकहित है। वह हर मनोविकार अथवा दुष्प्रवृत्तियों का आधार सामाजिक बताते हैं। दृढ़ता, आत्मविश्वास, निर्भीकता और सच को सामने रखने की आदत इनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ हैं। साहित्य, समाज, राजनीति और पत्रकारिता की सेवा में तत्पर रचनाओं के संदर्भ में उन्होंने जो दृष्टि दी है हमारा आपका कर्त्तव्य बनता है कि उस दृष्टि से हम विचार करें कारण कि अक्षरों से खेलते हुए उन्होंने समसामयिक विषयों को भावनात्मक रूप से अभिव्यक्त किया है। इनकी रचनाएँ, जहाँ एक ओर मौजूदा समाज की सच्चाई के प्रमाण हैं, वहीं दूसरी ओर पाठक के जीवन-संघर्ष के प्रति प्रेरित भी करती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिद्धेश्वर जी में जहाँ प्रेमचंद एवं रेणु की सामाजिक संवेदनशीलता है, वहीं प्रगतिवाद की राजनीतिक चेतना भी है। वे चाहते हैं कि देश व समाज की उन समस्याओं एवं सवालों का हल निकाला जाए जिनसे हमारा देश आज जूझ रहा है। इनका मानना है कि अँग्रेजों ने जाति-संप्रदाय को बढ़ावा देकर आपस में भेदभाव और फूट पैदा किया, सामंती अवशेषों को मजबूत किया, भारतीय शहरों का देहातीकरण किया तथा अभ्युदयशील पूँजी को नष्ट किया। ब्रिटिश सम्राज्यवाद ने शिक्षण संस्थाओं को भी बर्बाद किया, किंतु सिद्धेश्वर जी को इस बात की चिंता है कि आजादी के बाद इस देश में विकास का जो रास्ता दिखाया जा रहा है और जो विचार परोसा जा रहा है, वह राष्ट्रीय संप्रभुता के खिलाफ है। इस दृष्टि से देखा जाए, तो सिद्धेश्वर जी के सांस्कृतिक एवं सामाजिक कार्यक्रमों का एक बहुत बड़ा दायरा है जिसमें भाषा, समाज, इतिहास, तरफदारी और दोरंगी राजनीति के विरोध को सिद्धेश्वर जी ने साहित्य की कसौटी माना है। इनकी जिंदगी खुली किताब है जिसे पढ़कर ही नहीं उन्हें देखकर भी प्रेरणा ग्रहण की जा सकती है।

भारत-भारतीयता से गहरा अनुराग रखने वाले सिद्धेश्वर जी के लेखन को पढ़ते हुए न बोझिलता आती है और न ही निरसता। उन्हें न तो साहित्यकार होने का दंभ है और न ही पत्रकार होने का, फिर भी इन क्षेत्रों

में इनके ज्ञान का जहाँ असीम भंडार चेतना संबंधी प्रचलित भ्रमों को तोड़ते हैं, वहीं वैकल्पिक रूपरेखा भी प्रस्तुत करते हैं। इनकी रचनाएँ इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं कि वे समाज, भाषा और साहित्य-संस्कृति के संबंध में नई, मौलिक और विचारोत्तेजक अवधारणाएँ, प्रस्तुत करती हैं और वे हमें नए सिरे से सोचने के लिए, संवाद के लिए, वाद-विवाद और बहस के लिए प्रेरित करती हैं। भारतीय जनता के हितैषी, कवि, संपादक, जीवनी-लेखक और भारतीय संस्कृति के प्रति आस्थावान सिद्धेश्वर जी एक नई लोककल्याणकारी समाजवादी व्यवस्था के आकांक्षी हैं। इन्होंने सदैव अलगाववादी आंदोलनों को अशक्त और समाप्त करने के लिए राष्ट्रीय चेतना का विकास आवश्यक समझा है तथा कभी समझौतों को महत्व नहीं दिया और सदैव संघर्ष के साथ रहे। इनके अबतक के जीवन का हर पन्ना पढ़ने लायक है, क्योंकि सभ्यता, संस्कृति, खान-पान, रहन-सहन, सहिष्णुता, धैर्य जैसे मानवीय मूल्यों को उन्होंने अपने जीवन में ढाला है। व्यापक दृष्टिवाले सिद्धेश्वर जी बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड और भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के क्रमशः अध्यक्ष एवं वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर रहकर जो जिम्मेदारी उन्होंने निभाई है उसे जब मैं याद करता हूँ, तो पाता हूँ कि उन्होंने अपनी कर्त्तव्यपरायणता से यह सिद्ध किया कि ईमानदार अधिकारी मुश्किल परिस्थितियों का भी कैसे डट कर मुकाबला करते हैं। ईमानदार और कर्त्तव्यनिष्ठ होने के साथ-साथ निडर और निर्भय रहने का जो गुण सिद्धेश्वर जी में है, वह उन्हें दूसरे अधिकारियों से अलग करता है।

संस्कृत बोर्ड में रहकर उन्होंने एक गहरी छाप छोड़ी है। इस नायक की जो कार्यशैली रही है वह सेवा की भूल भावना से पूरी तरह अपने कर्त्तव्य का निर्वह्ण करना, किसी चुनौती से कम नहीं है। कई बार ऐसा होता है कि उन्हें अपना जीवन भी दाव पर लगाना पड़ता है, पर फिर भी ऐसे नायक धारा के विपरीत जाना पसंद करते हैं। किसी दबाव या प्रलोभन में भी ये मूल्य बने रहते हैं। सिद्धेश्वर जी एक ऐसे ही नायक हैं जिनकी दो खास विशेषता रही है- पहला एक विचार या मकसद के प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता और दूसरा अदम्य साहस। वह जिसे ऊँचे चरित्र बल के होते हैं वहीं उनके लिए नाम, पैसा यश सब निरर्थक हो जाते हैं। ऐसे ही नायक हैं सिद्धेश्वर जी।

दरअसल, प्रशासन में मात्र ईमानदारी से काम नहीं चलता, कार्य क्षमता भी चाहिए। फैसले किए जाने चाहिए और फैसले होते हुए दिखने

चाहिए। सिद्धेश्वर जी जहाँ कभी रहे हैं ईमानदारी के साथ-साथ अपनी कार्यक्षमता का तो परिचय उन्होंने दिया ही है, फैसले भी लिए हैं जो स्पष्ट दिखे हैं। संस्कृत बोर्ड में रहकर अदालती अवमानना की तलवार लटकते हुए भी उन्होंने अपने समय में 2010-11 की मध्यमा परीक्षा लेकर परीक्षाफल भी प्रकाशित किए। दरअसल, अपने मन की कहने और सही समझने पर वैसा ही करने की तीव्र इच्छा के कारण भी सिद्धेश्वर जी को अपने काम में कामयाबी मिली।

सिद्धेश्वर जी की ईमानदारी पूरे समाज की अनमोल थाती है, धरोहर है और अँधेरे में प्रकाश की तरह है। प्रकाश के अभाव में समाज अँधेरे में जाकर भटक सकता है। वैसे भी कोई भी समाज या देश ईमानदारी से ही निखरता है। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री की ईमानदारी और निष्ठा के चलते ही 1965 में भारतीय सेना ने पाकिस्तानी सेना और वहाँ के हुक्मरान के हौसले पस्त हुए और भारत-पाक युद्ध में पाक को पराजीत होना पड़ा। आखिर तभी तो बेईमान, अपराधी या गलत लोग भी अपनी भावी पीढ़ी के लिए, अपने बच्चों के लिए, अपने परिवार के लिए एक ईमानदार, विश्वास भरा और बेहतर माहौल ही चाहते हैं। यही वजह है कि प्राचीन भारत में एक बेईमान, अपराधी या गलत इंसान भी सामने के ईमानदार इंसान को सम्मान देता था, भले ही आज माहौल बदल गया है। सन् 1972 में चंबल के डाकूओं ने जयप्रकाश नारायण के सामने आत्मसमर्पण किया था। इसके पहले 1960 में, तब के खूंखार चंबल डकैतों ने बिनोवा के आगे आत्मसमर्पण किया था। बाबा भारती और डाकू खड़ग सिंह से संबंधित 'हार की जीत' कहानी एक कालजयी कहानी बन गई, क्योंकि संत बाबा भारती की यह चिंता कि खड़ग सिंह के अपंग होने के छल को जानकर लोग कहीं गरीबों और अपंग पर विश्वास करना न बंद कर दें, डकैत बेचैन हो चुपचाप वह घोड़ा बाबा भारती को लौटा देता है।

जहाँ तक भारतीय राजनीति का सवाल है आजादी के तकरीबन दो दशक बाद तक आजादी की लड़ाई के मूल्य जीवित थे। राजनीति में या नौकरशाही में ईमानदारी, सादगी, कर्त्तव्यनिष्ठ, प्रतिबद्धता, मूल्य एवं संस्कार को भारत की जनता पूजती थी। राजनीति ही प्रेरित और अगुवाई करती थी, दिशा देती थी। दुर्भाग्य से आज राजनीति का मूल स्रोत गंदे तत्वों से भर गया है। राजनीति अब समाज के लिए आदर्श नहीं रही, क्योंकि वही अब नफरत पैदा करती है। इस बदलाव ने समाज के सारे मूल्यों और वसूलों को पटल

दिया है। ऐसे माहौल में भी सिद्धेश्वर जी ने खासतौर पर बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर मात्र तीन साल रहकर वहाँ का माहौल बदल दिया और संस्कृत से जुड़े शिक्षक-कर्मचारी-अधिकारी, संस्कृत और संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए सोचने पर विवश हो गए थे। यह सिद्धेश्वर जी की ईमानदारी और निष्ठा का ही परिणाम था।

लेखक के प्रति सिद्धेश्वर जी की निष्ठा स्वागतयोग्य है। इधर तीन वर्षो से लगातार इनकी कलम दिवंगत, साहित्यकारों, कलाकारों, पत्रकारों, राजनेताओं एवं समाजसेवियों के संस्मरण लिखने में चल रही है। 'हमें अलविदा ना कहें' नाम्नी इस संस्मरणात्मक निबंध संग्रह की उपयोगिता लेखकों और शोधकर्ताओं के लिए असंदिग्ध है। रचनात्मक अभिव्यक्ति के साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रों के जिन महापुरुषों की शोधपूर्ण परिचय सामग्री इस ग्रंथ में प्रस्तुत की गई है उससे यह ग्रंथ संग्रहणीय ही नहीं, पठनीय बन गया है। दिवंगत महापुरुषों का ऐसा तथ्यपूर्ण प्रामाणिक इतिहास सभी दृष्टियों से अद्‌भुत कार्य है। यह भी इनकी व्यापक दृष्टि का परिचायक है। सिद्धेश्वर जी की अन्य पुस्तकों की तरह इस ग्रंथ का भी साहित्य-जगत में स्वागत किया जाएगा, ऐसा मेरा विश्वास है। दिवंगत महापुरुषों के संस्मरण लिखने का काम यहीं नहीं रूका है, बल्कि इस संस्मरणात्मक निबंध संग्रह का दूसरा भाग 'जो जीवित हैं हमारे जेहन में' नाम्नी पुस्तक पर भी इनकी कलम चल रही है।

(२४) राष्ट्रीयता के विविध आयाम का संपादन

सिद्धेश्वर जी की साहित्यिक-यात्रा यहीं खत्म नहीं होती है, बल्कि वह निरंतर जारी है। आखिर तभी तो इनके सम्पादकत्व में राष्ट्रीय विचार मंच की ओर से 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' नामक प्रकाशनाधीन पुस्तक की पांडुलिपियों का कंप्यूटर पर शब्द-संयोजन जारी है। 'राष्ट्रचेतना के कर्णधार', 'साहित्य और राष्ट्रीयता', 'भारतीय संस्कृति और राष्ट्र चेतना', 'राष्ट्र निर्माण और राष्ट्रीयता' और 'विविधा' नामक पाँच खंडों में विभक्त इस पुस्तक में देश के पन्द्रह राज्यों के प्रतिनिधि रचनाकारों की रचनाएँ शामिल की गई हैं। यह एक ऐसी पुस्तक पाठकों के बीच आने वाली है जिसका उद्येश्य साहित्य और इसके माध्यम से साहित्यिक-सांस्कृतिक चेतना के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने हेतु एक आवश्यक वातावरण तैयार करना है। इस पुस्तक के प्रकाशन के पीछे इसके प्रधान संपादक सिद्धेश्वर जी की दृष्टि स्पष्ट, पूर्वाग्रहमुक्त और राष्ट्रीयता की सांस्कृतिक अवधारणा से विनिर्मित है, क्योंकि ये मानवीय एवं राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति अडिग और आस्थावान हैं जिसकी समसामयिकता तेजी से लोप होता जा रहा है और बाजारवादी आयातित सभ्यता व संस्कृति जिसे तिरस्कृत कर रही है। व्यावसायिकता की इस मरूभूमि में यह पुस्तक साहित्य की मूल्यपरक कसौटी पर उन गिने-चुने नखलिस्तानों की तरह है, जो हाँफती-भागती मनुष्यता के लिए थोड़ा पानी बचाकर रखेगी।

इस पुस्तक की भूमिका लिखी है भारत के पूर्व नियंत्रक-महालेखा परीक्षक तथा कर्नाटक के पूर्व राज्यपाल श्री टी. एन. चतुर्वेदी ने। श्री चतुर्वेदी ने अपनी भूमिका में यह स्पष्ट किया है कि किसी भी राष्ट्र की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने में वहाँ के नागरिकों की राष्ट्रीय चेतना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और इस राष्ट्रीय चेतना को बाँधे रखने के लिए वहाँ के नागरिकों में सांस्कृतिक और भावनात्मक एकता के सूत्र होने चाहिए। राष्ट्रीयता की भावना अपने राष्ट्र के गौरवमय अतीत पर गर्व और स्वाभिमान की शक्ति, एकता पर बल- इन सबकी चेतना फैलाने में नागरिकों का योगदान होता है।

श्री टी. एन. चतुर्वेदी का सान्निध्य सिद्धेश्वर जी को एक लंबे अरसे से मिलता रहा है, क्योंकि सिद्धेश्वर जी ने भी तो उन्हीं के भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग(Indian Audit & Accounts Department) जहाँ श्री चतुर्वेदी जी भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक(Comptroller &

Auditor General of India) के पद पर आसीन रहे, में छत्तीस वर्षों तक अपनी सेवा प्रदान की है। श्री चतुर्वेदी जी ने अपनी भूमिका में इस बात की खुशी जाहिर की है कि राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था जिसके सिद्धेश्वर जी पिछले कई दशक से राष्ट्रीय महासचिव के पद को सुशोभित कर रहे हैं और उन्हीं के सबल नेतृत्व में मंच के राष्ट्रभर में फैले सदस्यों के साथ यह साहस और विवेक है जिसकी वजह से ऐसी पुस्तक प्रकाशित करने के लिए वे प्रेरित हुए। श्री चतुर्वेदी जी इसीलिए तो अपनी भूमिका में उद्गार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यह इस बात का परिचायक है कि यह देश पृथ्वी पर ऐसी संस्कृति का संवाहक है जो प्रेम, करुणा और संवेदना से भरा है। ऐसे ही संवाहकों के बल पर गुलामी के लंबे कालखंड और विदेशी विचारों द्वारा हमारे गौरव ग्रथों व मान बिंदुओं पर डाली गई गर्द की चादर हटाई जा सकती है और अपने गौरव का, मान का, ज्ञान का आदर किया जा सकता है और सोते हुए को जगाने और झकझोरने का काम किया जा सकता है। श्री चतुर्वेदी जी को यह भरोसा है कि राष्ट्रीय विचार मंच से जुड़े लोग राष्ट्र के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर इसकी समग्ररूपता को फिर से बलवती बना सकेंगे। उन्हें विश्वास है कि मंच की ओर से प्रकाशित की जा रही यह पुस्तक 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' अपनी पठनीय सामग्रियों के जरिए सबल राष्ट्र के निर्माण में सहयोगी साबित होगी।

इस अर्थ में मैं भी सौभाग्यवान हूँ कि इस पुस्तक पर अपनी शुभाशंसा लिखने का मुझे भी अवसर मिला जिसमें मैंने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा है कि सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने को विखण्डन से बचाने के लिए राष्ट्रीय अस्मिता के विविध आयामों के सन्दर्भ में चिंतन अनिवार्य हो उठा है। इसकी पूर्ति प्रस्तुत ग्रंथ के प्रचार-प्रसार से निःसन्देह होगी। इसके आलेखों द्वारा परम्परा और परिवर्तन के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध की विकृति तो होती ही है, बाजारवाद से उत्पन्न सामाजिक-सांस्कृतिक-शैक्षिक-राजनैतिक आस्था-विहीनता, जो धनलिप्सा के अतिरेक से उद्भूत हुई है, के निराकरण में महत्वपूर्ण योगदान होगा, इसमें सन्देह नहीं।

इस पुस्तक के संपादकीय में भी सिद्धेश्वर जी ने कहा है कि 'हमारे देश की एकता व अखंडता के लिए सबसे बड़ा खतरा हमारे अपने स्वार्थी, पदलोलूप व भ्रष्टाचारी नेता ही बनते जा रहे हैं। निश्चित रूप से ऐसी विषम परिस्थिति में आज राष्ट्र विरोधी शक्तियों एवं शत्रुओं को कमजोर करने की जरूरत है। कुछ इन्हीं भावों से प्रेरित होकर हमारी राष्ट्रीय चेतना की

वैचारिक संस्था राष्ट्रीय विचार मंच द्वारा राष्ट्र की सामूहिक उन्नति, प्रगति एवं समृद्धि हेतु सर्वसाधारण के हृदय में तीव्र ज्वाला प्रज्ज्वलित करने के ध्येय से राष्ट्रीयता पर आधारित इस पुस्तक के प्रकाशन का निर्णय लिया गया है। विश्वास है कि इस पुस्तक के माध्यम से भारत के स्वर्णिम अतीत के गौरवमय चित्रों की सुंदर झांकियाँ व समृद्ध बनाने की प्रेरणा प्रदान की जाएगी, क्योंकि अतीत को केवल वर्तमान के दुःख को भुलाने के लिए सुखद स्वप्न की भाँति ही चित्रित नहीं किया जाता, वरन् यह भविष्य की प्रेरणा बनकर भी सक्षम रूप में उपस्थित होता है। इसी को मद्देनजर रखते हुए इसकी अधिकतर रचनाएँ पौराणिक अथवा ऐतिहासिक राष्ट्रीय गाथाओं के चित्र एवं घटनाओं से समन्वित एवं प्रेरित हैं। साहित्य, समाज, संस्कृति, धर्म, राजनीति, शिक्षा, पत्रकारिता, भाषा तथा महापुरुषों से संबंधित शोधपूर्ण आलेखों में जहाँ उनकी गाथाएँ अंकित हैं, वहीं प्रत्यक रचना के माध्यम से रचनाकार मानों यह संदेश देता हुआ प्रतीत होता है कि देश के पुरातन युग में मानवता के जिन उच्च मूल्यों की स्थापना हुई और दानदाता की जिस हिंसक प्रवृत्ति को हमारे ऐतिहासिक पराक्रमी पुरुषों ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी पराभूत बनाने का प्रयास किया उनसे निश्चित ही भारत के अतीत का एक उच्च आदर्श झलकता है।'

(२५) यात्रा-संस्मरण

सिद्धेश्वर जी जो यात्रा अंकों से शुरू कर आज अक्षरों के बीच कर रहे हैं वह अभी पूरी नहीं हो पाई है, क्योंकि अपने सेवाकाल के दौरान अवकाश यात्रा रियायत (Leave Travel Consession) का उपयोग कर पूरे भारत की यात्रा वे सपरिवार के साथ कर चुके हैं और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पश्चात् रेलवे हिंदी सलाहकार समिति तथा बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहने से लेकर अमेरिका के न्यूयॉर्क तक की जो यात्रा इन्होंने की है उसके यात्रा-वृतांत एवं संस्मरण को भी पुस्तक में सहेजने की योजना भी इन्होंने बनाई है। यही नहीं, अबतक के अपने जीवन में समाज, साहित्य, संस्कृति, राजनीति, भाषा तथा राष्ट्र से जुड़े मुद्दों पर जो इन्होंने अपनी कलम चलाई है तथा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के विभिन्न केंद्रों से इनकी जो बातचीत प्रसारित हुई है और देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में जो आलेख प्रकाशित हुए हैं उन्हें भी पुस्तकों में संजोने का इन्होंने अपना मन बनाया है ताकि वर्तमान तथा आने वाली पीढ़ी के पाठकों तक इनके विचार पहुँच सकें और जिसका लाभ उन्हें मिल सके।

इसी प्रकार संस्कृत उन्नयन के लिए सिद्धेश्वर जी ने कई चरणों में जो संस्कृत उन्नयन यात्रा कर बिहार के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित संस्कृत विद्यालयों का बोर्ड में प्रतिनियुक्त प्रधानाध्यापक अखिलेश्वर प्रसाद तथा लेखाकार सुरेश कुमार सिन्हा बोर्ड के साथ ही यात्रा के दौरान सुरक्षा प्रहरी की भूमिका निभाने वाले लखन सिंह को साथ लेकर जो औचक निरीक्षण किया था उसे भी अपने यात्रा-संस्मरण में सिद्धेश्वर जी संजोना चाहते हैं, ताकि बोर्ड में आने वाले अध्यक्ष एवं सचिव के लिए एक मिसाल प्रस्तुत हो सके।

दरअसल, यात्रा के दौरान सिद्धेश्वर जी के मन में आए भावों को शब्दबद्ध करने के पीछे कुछ उद्येश्य निहित रहे हैं। सच तो यह है कि इनके मन में पनप रहे विचार जब शब्दों के रूप में कागज के पन्नों पर उतरते हैं तो वे महज विचार नहीं, बल्कि पीढ़ियों को प्रेरित करने वाले महत्वपूर्ण दस्तावेज बन जाते हैं। ये वे दस्तावेज हो जाते हैं जिसे यदि सहेज कर रखे जाएँ, तो आने वाली पीढ़ी भी हमारे आज से रूबरू हो सकती है। अतीत में अनेक ऐसे लोगों की महानता का सांचा इन्हीं शब्दों ने खींचा। वस्तुतः यात्रा-संस्मरण के ये शब्द न केवल निराशा के गर्त में डूबे लोगों की जिंदगी की नई रोशनी प्रदान करने वाले होते हैं, बल्कि वास्तव में वे पतवार हैं, जो व्यक्ति को उनके हर गम में राह दिखाती नजर आती हैं। इसलिए उन शब्दों

को सिर्फ शब्द भर ही कहना मुनासिब नहीं होगा, बल्कि शब्दों से निर्मित यह लेखन एक जिम्मेदारी भरा काम है, जहाँ आप कई किरदारों को एक साथ जीते हैं, लोगों के दिमाग पर राज करते हैं और अनेक जज़्बातों पर अपनी सोच को मोहर लगाते हैं। यह कलम का जादू ही है जो आपके साथ आपके पाठक को हर पल रूलाता, गुदगुदाता और सोचने को मजबूर करता है।

कुछ इसी विचार को मद्देनजर रखते हुए सिद्धेश्वर जी ने लोगों के नजरिए को अपने विचारों से बदलने की जिम्मेदारी उठाई है। अतीत में कई ऐसे लोग हुए, जिन्होंने दुनिया को अपनी लेखनी से नए विचार देने का काम किया है और इसी के सहारे अपने जीवन की सुनहरी कथा लिखी है। मौजूदा दौर में इस काम का दायरा बहुत बड़ा होता जा रहा है और इसकी उपादेयता के मद्देनजर यह यात्रा-संस्मरण आप पाठकों के समक्ष सिद्धेश्वर जी प्रस्तुत करने में लगे हैं।

(२६) काशी की धर्मयात्रा

जब सिद्धेश्वर जी के यात्रा-संस्मरण की चर्चा हमने शुरू की है, तो काशी की इनकी धर्मयात्रा की पृष्ठभूमि और संस्कृत बोर्ड की ओर से प्रकाशित 'वाग्वन्दना' पत्रिका में उनके यात्रा-वृतांत के हवाले से मैं आप पाठकों को बता दूँ कि अखिल भारतीय विद्वत् परिषद् के महासचिव तथा वाराणसी के ख्यातिप्राप्त ज्योतिषाचार्य प्रो. कामेश्वर उपाध्याय द्वारा परिषद के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर आयोजित सम्मान समारोह के विशिष्ट अतिथि के रूप में आमंत्रित कर सिद्धेश्वर जी को भी संस्कृत के उन्नयन के लिए किए जा रहे योगदान के लिए इन्हें भी सम्मानित कर सम्मान-पत्र ग्रहण करने का आमंत्रण मिला, तो विगत 29 अगस्त, 2010 को वाराणसी पहुँचकर अपना सम्मान-पत्र ग्रहण तो इन्होंने किया ही, साथ ही बनारस की गंगा, काशी के घाट, काशी के मंदिर, बनारसी पान, बनारस की गलियों, बनारस घराने की गायकी तथा बनारसी बाबू के बारे में इन्होंने जो संस्मरण लिखे हैं उसे आप पाठकों को बताने के लोभ का संवरण मैं नहीं कर पा रहा हूँ। सिद्धेश्वर जी ने अपने यात्रा-वृतांत में लिखा है कि 'बनारस में जितनी परंपराएँ विद्यमान हैं शायद ही दुनिया के किसी अन्य शहरों में उतनी परंपराएँ हों। जहाँ इतनी चीचें हों, भला उस शहर को कौन नहीं देखना चाहेगा?'

सिद्धेश्वर जी पुन: कहते हैं कि बनारस के कई और नामों में एक है-'महाश्मशान' और सही में देखा जाए, तो यह मृत्यु की नगरी है। जो भी हो, यह बात अवश्य सही है कि बनारस में कोई भी विचारशील व्यक्ति मृत्यु

की भावना से दूर नहीं रह सकता। आप शहर में कहीं भी निकल जाइए मृत्यु को अपने करीब पाएँगे। आखिर तभी तो श्रीकांत वर्मा ने लिखा है-

तुमने देखी है काशी?
जहाँ, जिस रास्ते
जाता है शव
उसी रास्ते
आता है शव!

और यह बनारस के सभी रास्तों पर लागू होता है। कहा जाता है कि मृत्यु मानव के सभी धर्मो और दर्शन का आधार है। यदि मृत्यु नहीं होती, तो वह न तो किसी धर्म का आविष्कार करता और न ही उसे किसी दर्शनशास्त्र की आवश्यकता होती। यदि ऐसा है तो बनारस अपने आप ही धर्म और दर्शन का सर्वोच्च स्थान हो जाता है, क्योंकि यहाँ मृत्यु चहुँदिक और आठों पहर आपके आस-पास रहती है।'

इसी के साथ सिद्धेश्वर जी ने यह भी कहा है कि 'बनारस की इस धर्म-यात्रा में जो कुछ मैंने देखा और सुना उससे तो ऐसा लगता है कि बनारस मृत्यु का शहर होने के साथ-साथ यह जीवंतता का शहर भी है। यहाँ जीवन का हर रंग देखने को मिला। अतः यहाँ जितनी शाश्वत मृत्यु है, उतना ही शाश्वत है जीवन। तभी तो विद्यानिवास मिश्र जी ने 'जहाँ बसे संभुभवानी' नाम्नी अपने लेख में कहा है, काशी के बारे में प्रसिद्ध है कि ऐसा कोई भी समय नहीं आएगा कि काशी में कोई मूर्धन्य साधक न हो, मूर्धन्य कलाकार न हो, मूर्धन्य रचनाकार न हो, मूर्धन्य जौहरी न हो, यह हो सकता है कि वह काफी समय तक प्रकट न हो छिपा ही यह हो सकता है कि उसकी कीमत लोग उसके समय में न आंक सकें, पर ऐसे मूर्धन्य व्यक्तियों की शृंखला ही वस्तुतः काशी है।

काशी के धार्मिक महत्व पर चर्चा करते हुए सिद्धेश्वर जी ने लिखा है-'वेदो नारायणः साक्षात, वेदाभ्यासी सदा ह्यहम्। धर्म के सम्बन्ध में एक उक्ति है: 'त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोध्ययनं दानं(छान्दोग्यापनिषद) अर्थात अध्ययन धर्म का स्कन्ध है। अतः धर्मक्षेत्र काशी में वेदाध्ययन की सुदीर्घ कालीन परम्परा है।' सिद्धेश्वर जी ने यह भी बताया है कि 'काशी के कबीरचौरा से ही कबीर ने वर्गभेद रहित समाज-व्यवस्था का पावन संदेश दिया था, धार्मिक पाखंडवाद से दूर समता की साधना और श्रम का मार्ग सद्गुरु कबीर की देन है, जिस राह पर कबीर पंथ चल पड़ा। इसी प्रकार मध्ययुग में देश के अन्य

प्रांतों से, खासकर महाराष्ट्र से ज्योतिषियों के कई परिवार काशी में आकर बसे, काशी के कई ज्योतिषियों को दिल्ली दरबार में सम्मान का स्थान मिला। सवाई मानसिंह ने यहाँ मान मंदिर की छत पर अपनी एक वेधशाला स्थापित की। कहना नहीं होगा कि हिंदी प्रदेशों में काशी हिंदी पत्रकारिता की जन्म स्थली है। यहाँ से हिंदी प्रदेश की प्रथम साप्ताहिक पत्रिका 'बनारस अखबार' का प्रकाशन 1985 ई. में हुआ था।'

इसी प्रकार काशी की अनूठी संगीत साधना के विषय में लिखते हैं कि 'संगीत के क्षेत्र में काशी की अनूठी परंपराएँ हैं। यहाँ के गायक, वादक और नृत्य कलाकार पूरे देश में कला-प्रदर्शन के लिए आमंत्रित होते हैं, वे 'कथक' कहे जाते हैं। तबले का 'बनारसी घराना' इसी मुहल्ले में जन्मा। सुप्रसिद्ध तबला वादक किशन महाराज इसी मुहल्ले की देन है। शक्तिपीठ होने से काशी में मुख्य रूप से धार्मिक कार्य होते रहे हैं। वेदों की ऋचाओं का गायन होता रहा है। उपासना स्थानों तथा मंदिरों में भजन और कीर्तन होते रहे हैं। रामलीला, कृष्ण लीला और वामन लीला का प्रचलन रहा है जिसके प्रयास से संगीत होता है। लय और स्वरबद्ध गायन-वादन से काशी नगरी का लोक जीवन में प्रशंसनीय स्थान माना जाता है। इस प्रकार प्राचीन काल से काशी संगीतज्ञों, साहित्यकारों और कलाकारों का मान्य केंद्र बना रहा। बनारस की शान विस्मिल्ला खां गंगा तट पर नियमित रूप से शहनाई वादन किया करते थे।'

सिद्धेश्वर जी ने धर्म और संस्कृति की नगरी काशी को वहाँ के समाज और व्यक्ति के अंतरंग जीवन का महाकाव्य माना है। अनेकता में एकता, सहिष्णुता एवं समावेशित काशी की संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ हैं। अंत में सिद्धेश्वर जी लिखते हैं कि 'मैंने भी अखिल भारतीय विद्वत् परिषद के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर संपन्न समारोह में विद्वत्जनों के उद्गार सुनकर अपने भीतर एक नई रोशनी महसूस की। खासतौर पर परिषद के महासचिव प्रो. कामेश्वर उपाध्याय की ऊर्जा और धर्म एवं संस्कृति के प्रति उनकी सकारात्मक प्रवृत्ति का मैं कायल हूँ। मैं भी मानता हूँ कि धर्म जीवन का संचालन एवं नियमन करता है, क्योंकि कर्त्तव्य-बोध, सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों का परिपालन, जीवन में मनसा, वाचा, कर्मणा शुचिता भाव धारण कर वह आंतरिक अनुशासन पर बल देता है।' सिद्धेश्वर जी ने माना कि प्रो. उपाध्याय के नेतृत्व में संचालित अ.भा.विद्वत् परिषद राष्ट्र की गरिमा को अभिवृद्ध करने का एक सारस्वत उपक्रम है। इस प्रकार काशी नगर अपने कलात्मक धरोहर को भी संजोए है यह अपने-आप में अनूठा है।'

(२७) राष्ट्रभाषा हिंदी और सिद्धेश्वर जी की अमेरिकी-यात्रा

विचार दृष्टि के अंक 33 में अमेरिकी यात्रा के संदर्भ में सिद्धेश्वर ज़ी का कहना है कि 'राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति मेरी निष्ठा और ईमानदारी से इसकी सेवा ने सचमुच मुझे अमेरिका पहुँचा दिया वरना आज के इस आपाधापी, पहुँच-पैरवी और राजनीति में पनपी चमचागिरि के दौर में मुझ सरीखे एक साधारण सामाजिक कार्यकर्ता व साहित्य सेवी न्यूयॉर्क में विगत 13-15 जुलाई, 2007 को आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेने के लिए बिहार सरकार की ओर से भारतीय प्रतिनिधिमंडल में शामिल होने की मात्र कल्पना ही कर सकता था।'

इस संदर्भ में सिद्धेश्वर जी एक छोटी-सी घटना को अपनी इसी पत्रिका की एक रचना में प्रस्तुत किया जिसे उन्हीं के शब्दों में आप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के लोभ का संवरण मैं नहीं कर पा रहा हूँ। 'बात सन् 2002 की है जब नई दिल्ली के राजेन्द्र भवन में राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' का दो-दिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन विगत 16 एवं 17 नवम्बर, 2002 को 'आजादी के बाद वैचारिक क्रांति के नए आयाम और हमारा दायित्व' को केंद्र में रखकर आयोजित किया जाना था। हुआ यूँ कि दिल्ली के एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार ने दूरभाष पर मुझसे अनुरोध किया कि 'अमेरिका के एक प्रवासी भारतीय, जो पेशे से चिकित्सक हैं के द्वारा उक्त अधिवेशन के किसी एक शैक्षिक सत्र की अध्यक्षता इसलिए कराऊँ ताकि वह आने वाले दिनों में मुझे अपने सौजन्य से अमेरिका का भ्रमण करा सकें। मुझे यह गंवारा न हुआ, कारण कि इससे निश्चित रूप से मेरे आत्मसम्मान को आघात पहुँचता। बड़ी विनम्रता से दूरभाष पर ही उनसे कहा, मैं एक साधारण किसान का बेटा हूँ और किसान का बेटा आत्मसम्मान से समझौता करना नहीं जानता। यदि कभी मुझे अमेरिका भ्रमण करने की लालसा भी हो जाए, तो मेरे पिताजी एक बिगहा जमीन बेच देंगे जिससे मुझे इतनी राशि मिल जाएगी जितने से पूरे अमेरिका का भ्रमण इतमिनान से किया जा सकता है।' फिर सिद्धेश्वर जी अपनी रचना में कहते हैं, 'बिहार सरकार मेरी वह कल्पना इतनी जल्द साकार कर देगी, इसकी उम्मीद आखिर मैं किस दम पर करता?'

'खैर जो हो, बिहार सरकार से पत्र प्राप्त होने के पश्चात् काफी जद्दोजहद के बाद पासपोर्ट और अमेरिकन विजा मैंने हासिल किया और अमेरिका के न्यूयार्क के लिए चल पड़ा।...'

नई दिल्ली के इंदिरा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा से जब ब्रिटिश एयरवेज के फ्लाइट से हमलोग उड़े तो सच बताऊँ यह हमारी अबतक जिंदगी की पहली विदेश हवाई यात्रा होने की वजह से मेरे मन में एक अजीब-सा कौतुहल था और मानस-पटल षर अनेक रोमांचित भाव उमड़-घुमड़ रहे थे। उड़ान भरने के बाद देखते-देखते जहाज बादलों को चिरता हुआ हजारो फिट की ऊँचाई पर जा पहुँचा, जहाज में प्रो. रामबुझावन बाबू के समीप ही मेरी कुर्सी लगी थी, सो बातचीत करने में सुविधा तो थी ही। हमलोग अपने-अपने अनुभवों को आपस में बाँटते चले जा रहे थे। उड़ान के दौरान विमान सेविका भावना द्वारा जलपान और खान-पान की सेवा से तो हमलोग गदगद थे ही बीच-बीच में विमान सेविका के केबिन के पासवाली खिड़की के समीप जाकर खिड़की का पल्ला उठाते और पृथ्वरी पर स्थित शहरों और सागरों को झांक लिया करते थे, पर भला बादल क्यों शहर और सागरों को देखने दें। वह तो चाहते थे कि हमलोग उसकी और केवल उसकी अठखेलियाँ देखें और उसका आनंद लें, क्योंकि बादलों को यह पता था कि हम शहरी लोग शहर के प्रदूषण से पूरी तरह परिचित ही नहीं भोक्ता भी हैं।........ टी.वी. पर हिंदी की 'बाबूल' और 'गुरु' फिल्में देखकर मेरा भारतीय मन बड़ा आह्लादित हुआ और नौ घंटों की उड़ान के बाद लंदन पहुँचा।

'लंदन के हिथ्रो हवाई अड्डा देखकर मैं इसलिए अचंभित हुआ कि उसकी लम्बाई-चौड़ाई का कोई ओर-छोर नहीं था, इसलिए लंदन शहर की एक झलक मुझे तब देखने को मिली जब दो घंटे की चेकिंग प्रक्रिया से गुजरने के बाद ब्रिटिश एयरवेज के ही दूसरे फ्लाइट से हमलोग न्यूयॉर्क के लिए रवाना हुए। पुनः तकरीबन नौ घंटे की उड़ान के बाद न्यूयॉर्क स्थित जॉन एफ केनेडी हवाई अड्डा पहुँचे। रात और दिन कब हुआ इसका पता मुझे कभी न चला, हाँ टी.वी. पर समय अवश्य पता चल जाता था। जॉन एफ. केनेडी हवाई अड्डा के प्रत्येक टर्मिनल से मेट्रो ट्रेन पर निःशुल्क गुजरना और उसके कई तल्ले पर से मेट्रो ट्रेन की यात्रा से अमेरिका की साधन-संपन्नता का पता चल रहा था।'

फिर सिद्धेश्वर जी ने अमेरिका के न्यूयॉर्क में 13-15 जुलाई 2007 को भारतीय विद्या भवन के सहयोग से विदेश मंत्रालय द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्यालय स्थित सभागार में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन सत्र में बिहार सरकार की ओर से भारतीय प्रतिनिधिमंडल में बिहार के प्रो.

रामबुझावन सिंह, प्रो. वीणा रानी श्रीवास्तव, प्रो. सुखदा पाण्डेय, प्रो. उषा किरण खान, श्री जिया लाल आर्य तथा प्रो. किरण घई–हम सात प्रतिनिधियों ने भाग लेकर राष्ट्रभाषा हिंदी को विश्व मंच पर रूपायित करने के प्रयास को गति प्रदान की।

सिद्धेश्वर जी अपनी रचना में पुनः लिखते हैं कि 'न्यूयॉर्क में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन का यह आठवाँ पड़ाव है जिसमें पहली बार संयुक्त राष्ट्र संघ मुख्यालय मं हिंदी की गूँज सुनाई पड़ी है और संयुक्त के महासचिव बना की मून ने अपने भाषण का अधिकांश वाक्य हिंदी में बोलकर यह संकेत दिया है कि हिंदी को अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। जरूरत केवल इस बात की है कि भारत सरकार सभी समर्थ देशों से संपर्क स्थापित कर एक सघन अभियान चलाए और संयुक्त राष्ट्र की अगली बैठक में मान्यता दिलाने हेतु सभी प्रक्रिया को पूरा करे। भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व कर रहे विदेश मंत्री श्री आनन्द शर्मा, जो उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता कर रहे थे, के ओजस्वी भाषण से ही इसी आशय के संकेत मिले।'

जहाँ तक उक्त विश्व हिंदी सम्मेलन में बिहार से प्रतिनिधित्व कर रहे प्रतिनिधियों में से सिद्धेश्वर जी को यह अवसर जरूर मिला कि सम्मेलन के प्रथम दिन यानी 13 जुलाई, 2007 के अपराह्ण सत्र में फैशन इंस्टीच्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के ऑडोटोरियम में श्रीमति मृणाल पाण्डेय की अध्यक्षता तथा जनमत चैनल के श्री राहुल देव के संचालन में 'वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी' विषय पर आयोजित परिचर्चा में न केवल आलेख प्रस्तुत करने का सिद्धेश्वर जी को मौका मिला, बल्कि इन्होंने परिचर्चा के दौरान संवाद और विचार-विमर्श में सक्रिय रूप से भाग भी लिया।

सच तो यह है कि जैसा सिद्धेश्वर जी ने बताया कि सरकारी खर्च पर दुनिया के कल्पना-लोक उड़ान का आनन्द प्राप्त करना ही ऐसे सम्मेलनों में प्रतिनिधियों की भागीदारी को विशेष बना देता है और जिन लोगों ने जुगाड–तुगाड़, सिफारिश और ऊँची पहुँच–पैरवी के बल पर यात्रा का टिकट पा लिया वे उद्येश्यों को भूल गए और उद्घाटन सत्र में तस्वीर आदि खिंचवाने के बाद ही भारत से जाने वाले अधिकतर प्रतिनिधि न्यूयॉर्क और उसके आसपास के दर्शनीय स्थलों में हिंदी तलाशने निकल गए। यह तो कहिए कि अमेरिका और अन्य करीबी देशों के प्रवासी भारतीय प्रतिनिधि और हिंदी प्रेमियों ने ही सभागार में अपनी उपस्थिति दर्ज कर भारतीय

प्रतिनिधियों को जलालत से बचा लिया कारण कि आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में प्रवासी भारतीय प्रतिनिधियों की संख्या करीब पाँच सौ से अधिक थी।

इसी संदर्भ में सिद्धेश्वर जी से मैंने संस्मरण सुना कि न्यूयॉर्क में विश्व भर के हिंदी प्रेमियों ने एकत्रित होकर इस आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन को भारतवासियों के ललाट पर आत्मगौरव के प्रतीक चिन्ह के रूप में देख गया और यह आयोजन हिंदी को समृद्ध बनाने की दिशा में बढ़ाया गया एक संकल्पवान कदम माना जाएगा। सिद्धेश्वर जी को यह विश्वास है कि परायी भाषा और अँग्रेजी के वर्चस्व के नीचे दबी हमारी समस्त भारतीय भाषाओं के लिए मुक्ति का एक प्रकाश भी होगा यह सम्मेलन, मगर उन्हें निराशा यह देखकर हुई कि संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्यालय तथा अमेरिका के अन्य स्थलों में जाकर जहाँ अलग-अलग समूह में तस्वीर खिंचवाने की होड़ लगी थी, वहीं परिसर के आगे लगे एक प्रसिद्ध मूर्तिशिल्प के हाथ में एक पिस्तौल था जिसकी नाल में गांठ लगी थी जिससे इस बात का संकेत मिल रहा था कि हिंसा अब नहीं चाहिए। सिद्धेश्वर जी का भी मानना है कि हिंसा सचमुच नहीं चाहिए, किंतु शर्त यह है कि पिस्तौल के नाल की गांठ कभी न खुले मगर वह फिर कहते हैं कि फिर भी वही गांठ कभी अफगानिस्तान में खुल जाती है तो कभी इराक में। हाँ एक गाँठ उन्हें वहाँ जरूर खुलती नजर आई, जो हिंदी को लेकर अबतक बंधी हुई थी। मगर जब न्यूयॉर्क से वापस अपने देश भारत में आने के बाद भारतीय लोकतंत्र के मंदिर-संसद तथा विधानमंडलों में बैठने वाले जनप्रतिनिधियों पर जब उनकी नजर जाती है और केंद्र सरकार के मंत्रालयों व विभागों में हिंदी की बदहाली को जब वे देखते हैं तो उन्हें निराशा होना स्वाभाविक है, क्योंकि नागपुर के प्रथम सम्मेलन से न्यूयॉर्क के आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन तक आते-आते इसका सफर 32 वर्ष का हो गया है फिर भी देशवासियों और खासकर यहाँ के नेताओं व नौकरशाहों की अँग्रेजियत मानसिकता जस की तस दिखती है। यह तो कहिए की जिस राज्य का इन्होंने प्रतिनिधित्व किया वहाँ के मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार न केवल अपने बात-व्यवहार में शुद्ध हिंदी का प्रयोग करते हैं और सभा-संगोष्ठियों में कभी अँग्रेजी का प्रयोग करते उन्हें कभी आज तक किसी ने नहीं देखा सुना होगा, बल्कि अपनी सरकार के कार्यो का निपटारा भी हिंदी में करते हैं जिसके लिए सिद्धेश्वर जी गर्व का अनुभव करते हुए इसे दूसरे प्रांतों व नेताओं के प्रेरणा के स्रोत मानते है। उनका

अनुमान है कि केंद्र सरकार के मंत्रालयों व विभागों में हिंदी की बदहाली देखकर ही विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजकों के मन में यह ख्याल आया होगा कि सात समुन्दर पार विदेशों में जहाँ हिंदी बोली और समझी जाती है वहाँ इसके आयोजन से शायद स्वदेश में भी हिंदी की दशा सुधर जाए।

सिद्धेश्वर जी के द्वारा अपने अनुभव के आधार पर दी गई टिप्पणियाँ मुझे सुनने को मिलीं कि इन दिनों कला व साहित्य में पनप रही राजनीति का ही परिणाम है कि हिंदी की यह दुर्दशा देखी जा रही है। आखिर तभी तो भारत की आजादी के छह दशक से अधिक बीत जाने के बाद भी यहाँ हिंदी दिवस, हिंदी सप्ताह, हिंदी पखवाड़ा और हिंदी माह मनाने की पीड़ादायी आवश्यकता महसूस की जा रही है। आपने कभी सुना कि जापान में जापानी दिवस, इंग्लैंड में अँग्रेजी दिवस, फ्रांस में फ्रेंच दिवस अथवा रूस में रूसी दिवस मनाया जाता हो? सिद्धेश्वर जी ने ठीक ही कहा है कि दरअसल, भारत में वर्षो की गुलामी और अँग्रेजियत मानसिकता का ही परिणाम है कि यहाँ पर स्वदेशी समस्या का विदेशी समाधान खोजा जाता है। विश्व हिंदी सम्मेलन में हिंदी के भविष्य और भविष्य में हिंदी पर परिचर्चा भी ऐसी ही कवायद है जिसमें बीमारी जाने बिना चिकित्सा की कोशिशें जारी हैं। सच तो यह है कि अपने मिथ्याभिमान में हम भारत के लोग यह भूल बैठे हैं कि जब हम भी अपनी भाषा का तिरस्कार करेंगे तो उसे गैर कहाँ तक सम्मान दे पाएँगे। संयुक्त राष्ट्र के कपाल पर कल हिंदी का तिलक हो भी जाए, तो क्या उसके अपने घर में माथे की बिंदी बनने में अभी बहुत वक्त नहीं लगेगा?

सिद्धेश्वर जी का एक यात्रा-संस्मरण पढ़ने का मुझे मौका मिला है जिसमें वे लिखते हैं कि 'कोई भी संस्था तभी प्रभावशाली ढंग से काम करती है, जब उसमें सर्वोच्च पद पर आसीन व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी को समझे, उसकी निष्ठा सवालों के घेरे में न हो, यह बहुत आवश्यक है। सार्वजनिक जीवन में या किसी संस्था में महत्वपूर्ण पद संभाल रहे व्यक्ति के ऊपर काफी जिम्मेदारी होती है और उसकी व्यक्तिगत ईमानदारी अतिआवश्यक है। मैंने इसी जवाबदेही की अहमियत को समझते हुए संस्कृत विद्यालयों के औचक निरीक्षण का कार्य प्रारंभ किया।'

इसी संदर्भ में सिद्धेश्वर जी ने पुन: कहा है कि 'तकरीबन तीस वर्षो से भ्रष्टाचार में लिप्त संस्कृत शिक्षा बोर्ड की गरिमा क्षीण हो गई थी और संस्कृत विद्यालयों के शिक्षकों की छवि भी धूल-धूसरित हो चुकी थी

इसलिए यह हमारी जिम्मेवारी बनती थी कि उसकी खोई प्रतिष्ठा को वापस लाने के प्रयास में हम लग जाएँ। इसी प्रयास की एक कड़ी रही यह औचक निरीक्षण।' आखिर तभी तो सिद्धेश्वर जी के संपादकत्व में बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड से प्रकाशित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैचारिक पत्रिका 'वाग्वन्दना' के प्रवेशांक पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए केरल स्थित राष्ट्रभाषा संस्थान के संस्थापक डॉ. एच. परमेश्वरन ने सिद्धेश्वर जी द्वारा संस्कृत के उन्नयन हेत किए जा रहे प्रयास पर अपने उद्‌गार छह पंक्तियों में इस प्रकार व्यक्त किए-

'दिनेश करे वन्दना की वन्दना 'वाग्वन्दना'
सिद्धेश्वर के प्रयास की वन्दना
सांस्कृतिक चेतना के मन की वन्दना
सफलता की ऊँचाईयाँ पाए 'वाग्वन्दना'
जले हिंदी भाषा की ज्योति अखण्ड
दिनेश भू पर बचे न कोई खण्ड।'

इसी प्रकार कई दशक से अमेरिका जैसे सर्वशक्तिशाली देश के एक आधुनिक नगर में राष्ट्रभाषा हिंदी और संस्कृत के प्रति पूर्णरूप से समर्पित और सात समुन्दर पार अमेरिका की ऊर्जा संबंधी परियोजनाओं के प्रबंधन से जुड़े अभियंता और भारतवंशी अमेरिकी कवि श्री सुरेन्द्रनाथ तिवारी के काव्य-संग्रह 'उठो पार्थ! गांडीव उठाओ' का विगत 14 नवम्बर, 2010 को गाँधी संग्रहालय पटना के सभागार में बाल दिवस के अवसर पर लोकार्पित करते हुए सात समुन्दर पार अपना जीविकोपार्जन में व्यस्त रहकर भी अपने भारत का सर ऊँचा रखने तथा राष्ट्रीयता पर आधारित काव्य संग्रह में कविताओं के माध्यम से भारत की एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखने के लिए आम भारतीयों को प्रेरित करने का इनके सराहनीय प्रयास की सराहना सिद्धेश्वर जी ने अपनी इन छह पंक्तियों में की है-

'प्रतिज्ञा बस एक होनी चाहिए,
इस महान राष्ट्र की अखंडता।
उद्येश्य बस एक होना चाहिए,
इस महान राष्ट्र की अखंडता।
धर्म बस एक होना होना चाहिए,
इस महान राष्ट्र की अखंडता।'

दरअसल, सिद्धेश्वर जी को शुरू से ही संस्कृत के उन्नयन की दृढ़

इच्छाशक्ति रही है, जिंसकी वजह से वह हर बाधा को पार करते गए और फिर लोगों ने भी इनका साथ दिया। प्रारंभ में कुछ महीनों तक इनकी कड़ाई लोगों को रास नहीं आई, लेकिन धीरे-धीरे सभी इन्हें और इनकी कार्यशैली को स्वीकार करने लगे। बोर्ड परिवार के सदस्यों के सहयोग के बिना ये इस मुकाम तक नहीं पहुँच सकते थे। फिर बहुत कुछ बदल गया तब लोग इनकी कार्यशैली की सराहना करने लगे और संस्कृत के प्रति नजरिया भी बदला। सच तो यह है कि सिद्धेश्वर जी का सारा जीवन राष्ट्रभाषा के साथ-साथ भारतीयों भाषाओं के प्रति समर्पित रहा है। यही कारण है कि इन्होंने अपनी यादों को शब्द देने का प्रयास किया है और इस पर ये लगातार काम कर रहे हैं। आज यदि इनके और इनकी गतिविधियों की ओर लोग आकर्षित हैं, तो इसलिए कि सिद्धेश्वर जी सहज है और सरल जीवन जीते हैं। ईश्वर से मेरी कामना है कि आगे भी स्वस्थ-प्रसन्न रहते हुए इनका जीवन साहित्य-साधना में ही बीते।

सिद्धेश्वर जी के लेखन में मुझे एक और विशेषता यह दिखती है कि अपने रूतबा को सुरक्षित रखने के लिए सत्ता प्रतिष्ठान से समझौता करने की बजाय निर्भीक होकर अपनी राजनीतिक विचारधारा को ये जाहिर करते रहे हैं। मुझे लगता है कि इनकी इसी विशेषता की वजह से इनके लिए आमजन की चिंताओं से खुद को जोड़ना आसान बना देती है। इतने बरसों में इन्होंने जागरूक होकर अपने रचना-कर्म को ऐसी गति प्रदान करने का प्रयास किया है जो गहरी सामाजिक व राजनीतिक आस्था प्रतिध्वनित करता है। यही कारण है कि इन्होंने अबतक ऐसी-ऐसी चीजें लिखी हैं जो गलत करने वालों के खिलाफ खड़ी होती हैं। इसी लेखन के बल पर सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक दुनिया में इनकी एक अलग पहचान बन गई है। इसके विपरीत साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक जगत के अधिकतर लोग आम आदमी से कटते जा रहे हैं। आखिर तभी तो इस बुलबुले को फोड़ने की जरूरत आज सिद्धेश्वर जी के साथ इनके सरीखे कुछ लोग महसूस कर रहे हैं।

उन्होंने पुन: कहा है कि 'महत्व व्यक्ति का नहीं संस्था का होता है। संस्था ढहेगी, तो शासन कमजोर होगा और शासन कमजोर होगा, तो व्यवस्था खुद-व-खुद कमजोर होती जाएगी। शासन खुशफहमी का मामला नहीं है और न ही यह कोई राजनीतिक बाजीगरी है। इसके लिए एक स्वच्छ पारदर्शी प्रशासन न्यूनतम शर्त है। मुझे ऐसा लगता है कि शासन अपने हित में

जानबूझकर संस्थाओं को कमजोर करता है, ताकि उनका दबाव संस्थाओं के ऊपर चले। संस्था अगर कमजोर होती है, तो वह दबाव सह लेती है, लेकिन संस्था अग़र मजबूत हो, तो व्यक्ति विशेष के दबाव में आए बिना अपना काम बराबर करती जाती है। व्यक्ति आते जाते रहते हैं संस्थाएँ बदस्तुर बनी रहती हैं।' बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के साथ भी यही हुआ। इसके जो भी अध्यक्ष आए अपने हित में जान-बूझकर बोर्ड की व्यवस्था पर हावी हुए तथा अपने मन मुताबिक काम करवाते चले गए।

सिद्धेश्वर जी ने इसी बात को बखूबी महसूस किया और बोर्ड को मजबूत करने की दिशा में प्रयत्न किया जिसके परिणामस्वरूप माफिया जैसे लोग कमजोर पड़े और उनके मनमुताबिक काम होना बंद हुआ। वैसे ही माफिया के बौखलाए लोगों ने उन्हें अदालत तक घसीटा, मगर यह शुक्र है कि वहाँ भी उन्हें मुँह की खानी पड़ी और अदालत ने सिद्धेश्वर जी के कार्यों की सराहना की। वैसे भी देखा जाए तो बोर्ड में व्यवस्था परिवर्तन में इन्होंने अपने दृढ़ संकल्प का प्रदर्शन किया है। इनकी इसी प्रतिबद्धता की वजह से इनकी ताकत बढ़ी। जिस प्रमुखता से वह व्यवस्था की खामियों को मीडिया के माध्यम से प्रकाशित करते रहे है उसी प्रमुखता से उसे उजागर कर उसपर चोट भी करते रहे हैं। आखिर तभी तो इनके बराबर प्रयास की चर्चा न केवल बिहार में, अपितु पूरे देश भर में हो रही है।

मगर मुझे अफसोस इस बात को लेकर है कि सिद्धेश्वर जी के बोर्ड छोड़ने के बाद वही 'ढाक के तीन पात'। कहा जाता है कि समझदारी इसी में है कि जब ओले गिरते है, तो आप हेलमेट लगाएँ, मगर संस्कृत बोर्ड के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की आदत है यह देखने की कि सर मुड़ाते ही ओले पड़ते है या नहीं। ऐसे बार-बार सर मुड़ाते हैं और ओले से आहत हो चिल्लाते हैं, फिर भी पुरानी आदत का त्याग नहीं करते, दरअसल करें भी तो कैसे? आदत है न, जल्दी आ तो जाती है, मगर जाती है बहुत विलंब से या जाती ही नहीं है। अँग्रेजी में एक कहावत है- 'बैड हैविट्स सेल्डम डाई(Bad habits seldom die)'। ऐसे ही लोगों के लिए दुष्यंत कुमार ने लिखा है-

'ये जुबा हमसे सी नहीं जाती और आदत कभी नहीं जाती।
जिंदगी है कि जी नहीं जाती।
एक आदत-सी बन गई है तू।'

इस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में सिद्धेश्वर जी जैसा कर्मठ एवं मेधावी

व्यक्ति अपनी जितनी भूमिका निभा सकता है निभा रहा है। सामाजिक जागरूकता की जो अलख उन्होंने जगाई है वह जलती रहेगी और जो नारे, विमर्श और व्याख्यानों क़ी आवाज वे बुलंद कर रहे हैं, वह देर तक गुँजती रहेगी, क्योंकि वे कोई नासमझ और कोरी भावुकतावाले इंसान नहीं हैं, वे मानवता के पक्ष में लिखने और बोलने वाले एक ऐसे इंसान हैं जो जनविरोधी नीतियों का विरोध तो करते ही हैं उसके विकल्प की एक लंबी और जुझारू विरासत भी प्रस्तुत कर रहे हैं। निश्चित रूप से उनके अथक संघर्ष की थाती को आगे बढ़ाने की जरूरत है, क्योंकि वे जिस सुबह का सपना देख रहे हैं उसे आने में देर नहीं है। भले ही सिद्धेश्वर जी अपने जीवन में वो मंजर नहीं देख पाएँ, पर उनके साथियों व शुभेच्छुओं को वह ज्यादा दिन तक नहीं सुनने पड़ेंगे। यही सिद्धेश्वर जी की ताकत है और यहीं उनकी सफलता भी।

सिद्धेश्वर जी के अंदर साहित्य, समाज और पत्रकारिता के लिए जो उत्साह और जोश पहले था, वह आज भी बरकरार है। दरअसल, प्रतिभा उम्र की मोहताज नहीं होती। अगर मन में दृढ़ इच्छाशक्ति हो, तो कठिन से कठिन डगर भी तय करना भी आसान हो जाती है। ऐसा ही कुछ प्रयास किया है सिद्धेश्वर जी ने विभिन्न क्षेत्रों में। इनकी सृजनशीलता का संरक्षण एवं उसका पोषण इनके सेवाकाल से ही होता रहा है। यदि प्रतिभाव व लगन हो तो रास्ता खुद ब खुद बनता जाता है। सिद्धेश्वर जी ने अपना हर कदम संभल-संभल कर बढ़ाया है। जीवन की सच्ची सफलता बड़ी प्रसिद्धि और शानों-शौकत भरी जिंदगी को हासिल कर लेना नहीं हैं, बल्कि छोटी-छोटी खुशियाँ ही जीवन की सच्ची सफलता है।

सिद्धेश्वर जी का कृतित्व और वैचारिक क्षेत्र व्यापक होने की वजह से ही वे हमेशा जन सरोकारों को आगे रखकर ही अपनी बातें तार्किक कसौटियों के साथ कहते हैं। ऐसा मेरे जैसे हिमायती ही नहीं उनके प्रतिपक्षी भी मानते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि सिद्धेश्वर जी वाद-विवाद के साथ संवाद भी करते हैं। उनकी स्थापनाओं से कुछ लोगों को असहमति हो सकती है, लेकिन उनका क्षेत्र इतना व्यापक और उनके सरोकार इतने बड़े हैं कि उनके प्रति विनय भाव को समेटने के लिए लोग विवश हो जाते हैं। मौजूदा दौर में धार्मिक असहिष्णुता, सांप्रदायिक विद्वेष और जातीय हिंसा जिस कदर बढ़ रही है सिद्धेश्वर जी इन सबके विरूद्ध सन्नद्ध एक प्रखर बुद्धिजीवी नजर आते हैं। इनकी रचनाओं में सामयिक समस्याओं से लेकर सांप्रदायिकता तक से प्रभावित होने वाली जिंदगियों और संबंधों का यथार्थ झलकता है।

वैसे कॉलेज के दिनों में तो अर्थशास्त्र एवं श्रम एवं समाज्ञ कल्याण विषयों से इनका संबंध रहा, पर इनके भीतर लंबे समय से ऐसा कुछ था जो इन्हें लेखन की ओर लेकर आया। हालांकि शुरू में वे ग्रामीण परिवेश में रहे, फिर पटना विश्वविद्यालय का माहौल मिला। बाद में कार्यजगत की चीजें मिलीं। इन सबने इन्हें जो भाषा और अनुभव दिए वो सब कहीं न कहीं खुद इनके लेखन में शामिल होते गए। ऐसा लगता है कि वे कुछ भी सोचते हैं, तो उसमें कहीं न कहीं इनके खुद का परिवेश चला जाता है।

कल्पनाशीलता हर व्यक्ति का स्वभाव है। अगर कोई लेखक यह कहे कि वह केवल वास्तविक चीजें लिख रहा है, तो वह असंभव-सा लगेगा। अगर ऐसा हो तो संचार-माध्यमों में काम करने वाले और लेखक में कोई अंतर ही नहीं रहेगा। इसीलिए साहित्य-लेखन में वास्तविकता के साथ कल्पनाशीलता स्वाभाविक तौर पर शामिल होती है।

प्रगतिशील जीवन-दृष्टि से संपन्न साहित्यकार सिद्धेश्वर जी में असाधारण को साधारण रूप से अभिव्यक्त करने की अद्भुत क्षमता है। उन्होंने साहित्यकारों के बीच अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बनाकर यह सिद्ध कर दिया है कि सिर्फ लेखन की गुणवत्ता ही महत्वपूर्ण होती है और उसी से उसे शोहरत मिलती है। और फिर रचनात्मक लेखन तो घोर तपस्या है जिसे सिद्धेश्वर जी जैसा प्रतिबद्ध और ईमानदार लेखक घर और समाज में रहते हुए भी अपने आसपास बीहड़ जंगल और निरस्वर एकांत उगाकर करता है।

यह बात ठीक है कि बढ़ती उम्र का दुष्प्रभाव लेखक की लेखन क्षमता उसकी मानसिकता को प्रभावित करता है, पर मुझे ऐसा नहीं लगता है कि 72 की आयु प्राप्त करने के बाद भी सिद्धेश्वर जी की लेखन क्षमता में कमी आई है। सच तो यह है कि उनकी कलम अभी भी जिंदा है और सृजनरत रहना उनके लिए जरूरी-सा हो गया है। दरअसल, लेखन के प्रति इनकी गहरी साधना और अपने लक्ष्य के प्रति जाग्रत जुनून की वजह से सृजनात्मक लेखन के प्रति ही नहीं, बल्कि जीवन कार्य के हर क्षेत्र में इनकी सफलता तेज बुखार की तरह बढ़ रही है। कलम के प्रति ईमानदार रहने में सुख का अनुभव होता है। इसलिए अंतिम सांस तक वे सृजनरत रहना चाहते हैं। इन सबके पीछे कहा जाए, तो इनका स्वास्थ्य और साहस ही इनकी पूँजी है और दूसरी बात यह है कि सिद्धेश्वर जी अत्यंत आत्मविश्वासी और धुन के पक्के हैं। आखिर तभी तो वे अपनी सुदीर्घ साहित्यिक यात्रा में अर्जित

की गई अनेकानेक प्रासंगिक अनुभूतियों को अपने लेखन के माध्यम से साझा करते हैं।

जन-गण-मन के कवि आशीष कंघवे के काव्य-संग्रह 'जिंदगी फूल है, सांस महक' शीर्षक कविता पर सिद्धेश्वर जी ने संवेदना के क्षरण पर अपनी चिंता जताते हुए उस कविता पर अपने भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है-

''यांत्रिकता के मौजूदा दौर में जिस प्रकार संवेदन का क्षय होता चला जा रहा है, वह मनुष्य के लिए बड़ा अभिशाप बन गया है। आज का मनुष्य आधुनिकता की मृग-मरीचिका कस्तूरी की खोज में।....ऐसी स्थिति में कवि कंघवे की कवितारूपी कस्तूरी अपनी गंध की वजह से मनुष्य को बरबस अपनी ओर आकर्षित करती है। इनकी कविताएँ मनुष्य को मनुष्य होने का बोध कराती हैं।'' उनकी कविता की इन पंक्तियों को देखें-

'जिंदगी फूल है, सांसें महक
कोई न कोई रहेगी कसक
जब तक जवानी है खून में दहक
फिर बचेगी सिर्फ बातें और सबक
जिंदगी फूल है, सांसें महक।
हँसकर, जो जीया, जो जीवन स्वर्ग
रोने में क्या रखा है जीते जी नरक
चाँदी सी चाँदनी सूरज सा दमक
फिर बचेगा सिर्फ बातें और सबक
जिंदगी फूल है, सासें महक।'

सिद्धेश्वर जी के लेखन में क्रूर स्थितियों से घिरे होने की तड़प और अंतर्वेदना है। उनमें इन स्थितियों के प्रति एक कारगर विद्रोही रवैया भी है। वे हमारी चेतना में सुसंस्कारों की भावना विकसित करने का भाव लिए शांत भाव से अपना विरोध दर्ज करते हैं। प्रधान महालेखाकार(लेखा परीक्षा), बिहार, पटना से प्रकाशित विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' के संयुक्तांक 14-15 के अपने संपादकीय में सिद्धेश्वर जी लिखते हैं-

'पश्चिमी उपभोक्तावादी संस्कृति की नित नई चकाचौंध से मुग्ध होकर हम भारतीय भी आकांक्षाओं के मुक्त आकाश का स्वप्न देखने लगे। विकास और प्रगति का आयातित स्वप्न हमारी आँखों में समा गया और तब प्रारंभ हुआ आत्मछलना का एक घातक दौर, क्योंकि हमें परंपरा अवरोध-सी

प्रतीत होने लगी। इस नई सभ्यता और संस्कृति की आँधी में हम अपने जड़ों को संभालकर रखना भूल गए। लंगड़े समाज की यह आत्म-विस्मृति अंततः उसे अँध-विश्वासों की भूल-भूलैया में न जाने कहाँ ले जाकर छोड़ेगी।' मुझे लगता है कि सिद्धेश्वर जी जिन सरोकारों के लिए प्रतिबद्ध हैं तथा जिन अभीष्टों के लिए सर्जनरत हैं केवल उनसे ही सर्जनात्मक तादात्म्य और अभिन्नता बनी रहे, तो उनका वैशिष्ट्य बना रहेगा।

रिश्वतखोरी जैसे बहुव्यापी समस्या एवं उससे जुड़े नैतिक अंतर्विरोध के बीच सिद्धेश्वर जी द्वारा अपने काव्य-संग्रह 'यह सच है' के 'पिता-पुत्र संवाद' शीर्षक कविता के माध्यम से पिता की आदर्श हिदायतें किस प्रकार व्यावहारिक जीवन में दिखलाई गई हैं, उसे आप उनकी पंक्तियों में देखें-

'पिता बोला-
बेटा! तू तो समझदार है
इस देश में खिलाड़ी बनने का
ज्यादा अर्थ नहीं है
इससे तो अच्छा
तू पुलिस में भर्ती हो जा
राजनीति में घुस जा।
बेटा बोला-
पिताजी! अब राजनीति, पुलिस में
उन्हीं के लड़कों को चांस मिलता है
पिता ने लंबी सांस लेकर कहा-
बेटा! कई जगह तो पूरा का पूरा खानदान ही
खेल संघों में घुसा पड़ा है।'

सिद्धेश्वर जी के लेखन के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि वे भौतिक दृष्टिकोण से रचना नहीं करते हैं, बल्कि वह सामाजिक व्यवस्था में सार्थक परिवर्तन करने की दिशा में अग्रसर हैं। यह सौभाग्य है कि भौतिकता से परे रचनाकार की एक सबल जमात में सिद्धेश्वर जी एक ऐसे रचनाकार हैं जो साम्माजिक व्यवस्था में अपनी रचनाधर्मिता का विकास और योगदान कर रहे हैं।

दरअसल, हर रचनाकार का अपना रंग होता है, होना भी चाहिए और वह रंग उसके संस्कार, स्वभाव, अनुभव और तप-जप से निकलता है। सिद्धेश्वर जी के रंग में अंतर के अँधेरे की छटा अधिक है जिसे वे निरंतर

दूर करने का प्रयास अपनी रचनाओं के माध्यम से कर रहे हैं। जीवंत रहने की जद्दोजहद को नगरीय एवं महानगरीय जीवन में संघर्षरत मनुष्यों की जिजीविषा और अंतर्विरोधों के संदर्भ से जोड़कर कवि सिद्धेश्वर जी ने 'शहरी जिंदगी' कविता में कुछ इस तरह देखा है-

'किसे नहीं पता
बद से बदतर होती
शहरी जिंदगी के बावजूद
जो यहाँ आ रहा है
रह जाता यहीं का होकर
इस अँध व अंतहीन
शहरी विकास में
जो नारकीय जिंदगी जीने के लिए
विवश हो रहे हैं
लोग यहाँ के अधिकतर।'

संगीत भारत की वह कला है जो अन्य ललित कलाओं की तरह 'सत्यम शिवम् सुंदरम्' के भाव को जीवन दृष्टि बनाती है और मानवीय अनुभूतियों की विविधताओं का समन्वय करती हुई विश्वजनीन बन जाती है। संगीत को मनुष्य के जीवन के कोणों में सार्थक संवाद बताते हुए लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की जयंती पर वर्ष 2007 में दिल्ली से प्रकाशित स्मारिका -'राष्ट्रचेता' के संपादकीय में सिद्धेश्वर जी आधुनिक संगीत पर इस प्रकार कटाक्ष करते हैं-

'हमने तो उन गीतों को विस्मृत कर दिया जिन्होंने हमें आजादी के पथ पर अग्रसर किया था। हममें से कितने अपने बच्चों को भारतीय गौरव गाथा के उन गीतों को सिखाते हैं, जिसे स्वतंत्रता संग्राम के दौरान किस मस्ती से आजादी के दीवाने गाते थे-'मेरा रंग दे बसंती चोला..।' कहाँ गई वह 'सरफरोशी की तमन्ना...' जिससे वातावरण गुँजरित हो जाता था। पंजाबी गीत- 'नई रखनी सरकार जालिम नई रखनी' का अन्याय से जूझने का वह दृढ़विश्वास आज लुप्त हो गया, जबकि आज़ अन्याय का सबसे ज्यादा बोलबाला है। कितनी पीड़ा होती है जब 'वंदेमातरम्' जैसे गीत की पवित्रता, सौम्यता, भक्ति भावना किसी आधुनिकता के दीवाने संगीत निदेशक की चमक-दमक, रंग-बिरंगी रोशनी की चकाचौंध उछल-कूद अंदाज में नृत्य और तरल की धमा-चौकड़ी की भेंट चढ़ जाती है।' सिद्धेश्वर जी आधुनिक

संगीत को हमारी सांस्कृतिक सोच को विकृत मानते हुए पुनः कहते हैं- 'क्या अधिकार है हमें उन गीतों के साथ मजाक करने का? यह हमारी दौलत है जिसके साथ छेड़छाड़ करने का न तो किसी को हक है और न ही इज़ाजत। क्या हम इसे सांस्कृतिक सोच में आई हमारी मौजूदा विपन्नता के दौर का परिचायक नहीं कहेंगे?'

सिद्धेश्वर जी चाहे महालेखाकार कार्यालय में रहे हों या बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर आसीन रहे हों, खुद को कभी उन्होंने कमजोर नहीं समझा। यही कारण है कि हमेशा उन्होंने अपनी शर्तो पर जिया और जीना भी चाहते हैं। जीवन की अर्थवत्ता के संघर्ष, जिजीविषा, कर्म संवेदना और आमजन के साथ एकजुट होकर चलना- ये सभी तत्व समग्र रूप से सिद्धेश्वर जी के जीवन की सार्थकता के परिचायक हैं। आखिर तभी तो वे कहते हैं कि आमजन की जिंदगी एक ओर कैद है रूढ़ियों अँधविश्वासों और अत्याचारों में तथा दूसरी ओर आजादी पूर्व गुलामी की बेड़ियों में। इसी संदर्भ में वे पुनः कहते हैं कि इस देश में प्रजातंत्र तभी जीवित रह सकेगा जब आमजन की गुलामी की बेड़ियाँ टूटेंगी। आज देश और समाज के समक्ष सबसे बड़ा सवाल यही है जिसे सिद्धेश्वर जी ने अपने लेखन में रचनात्मक ऊर्जा प्रदान कर अर्थवान करता है।

समाजवादी अवधारणा और कार्यक्रम क्रियान्वयन के प्रति समर्पित सिद्धेश्वर जी प्रारंभ से ही स्वर्ग-नरक, जादू-टोना, भूत-प्रेत, जंतर-मंतर आदि अँधविश्वासों के प्रबल विरोधी रहे हैं और इन्हें साहित्य से लगाव रहा है। साहित्य-लेखन में रहकर वे बहुत प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, क्योंकि इससे उन्हें जहाँ संतुष्टी मिलती है वहीं प्रतिष्ठा व सम्मान भी। पारिवारिक जीवन के प्रारंभिक दौर की याद्द दिलाने पर वे कहते हैं कि सामाजिक सेवा का कार्य इन्हें विरासत में मिला है। एक तो अपने पिताजी से और दूसरे कि इन्हें दो माताओं का आशीर्वाद प्राप्त था। जन्म देने वाली माँ फूलझार प्रसाद और इनकी देख-रेख, खान-पान और पढ़ाई-लिखाई पर ध्यान देने वाली भाभी गुलाबी देवी, उन्हीं के कारण ही मैं जीवन में सफल हो सका और हमारे लेखन पर भी माँ, पिताजी और भाभी ने ही इनके जीवन में गुरुजी भूमिका निभाई है, क्योंकि इन लोगों ने बिना किसी आशा के इनके लिए कुछ किया है। सिद्धेश्वर जी को इनसे सही सलाह मिली, मार्गदर्शन मिला, प्रेम दिया और देखभाल की। बदले में सिद्धेश्वर जी ने उन्हें अपेक्षित श्रद्धा व सम्मान दिया। मुखिया का दायित्व संभालते हुए इनके पिताजी भी न

केवल अपने पंचायत क्षेत्र में, वरन् उसके आसपास के हरनौत, रहुई तथा आमावाँ प्रखंड में आदर्श के रूप में स्थापित हुए अपने आचरण, ईमानदारी और कर्म के बल पर।

प्रख्यात साहित्यकार ममता कालिया कहती हैं कि साहित्य की रफ्तार पत्रिकाएँ हैं। इस दृष्टि से देखा जाए, तो सिद्धेश्वर जी के संपादन में दिल्ली से 'विचार दृष्टि' पत्रिका पिछले 14-15 वर्षो से प्रकाशित हो रही है और इसके माध्यम से साहित्य की निर्मलता प्रदान की जा रही है और समाज के लोगों तक निराले अंदाज पहुँचाती है। पत्रिका के जरिए, विशालता का संदेश भी लोगों तक जाता है। साहित्य में सिद्धेश्वर जी एक ऐसे संपादक हैं जो बड़े साफ दृष्टि से संपादन करते हैं। यही कारण है कि इनकी पत्रिका के माध्यम से लेखकों की बातें, उनकी जीवनी, दिवंगत साहित्यकारों के संस्मरण, साक्षात्कार, कविता, कहानी आदि साहित्य की तमाम विधाएँ एक साथ कम खर्च में पाठकों को उपलब्ध हो जाती हैं। दुर्लभ साहित्य को सुलभ बना देने का नाम यदि 'विचार दृष्टि' को समझ लिया जाए, तो इस समझ में मेरी समझ से कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसलिए ऐसा लगता है कि यह पत्रिका वैचारिक सोच रखने वाले लोगों की जरूरत है।

पत्रिका के संस्मरण स्तंभ में संपादक सिद्धेश्वर जी स्वयं दिवंगत साहित्यकारों, पत्रकारों, कलाकारों, राजनीतिज्ञों तथा समाजसेवियों पर निरंतर संस्मरण लिख रहे हैं। यही नहीं 'समीक्षा' स्तंभ में प्रायः नए लेखकों की पुस्तकों की समीक्षा प्रस्तुत की जाती है। समीक्षात्मक लेखन व विश्लेषणों से परिचित होते हुए एक नई आशा व उम्मीद की किरण जगती है और नए लेखकों को आकर्षित करती है। वस्तुतः यह पत्रिका सिद्धेश्वर जी के गरिमामय व्यक्तित्व को पारदर्शिता प्रदान करती है, क्योंकि उनके व्यक्तित्व का ज्योतिपुंज-संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, समाज सब एक साथ झलकता है। इसके साथ ही इस पत्रिका के आलेख गंभीर विवेचन एवं तर्कशीलता के द्वारा अपनी वैचारिकता प्रस्तुत करते हैं। इस पत्रिका को समग्र रूप से देखा जाए, तो इसके सहयोगी रचनाकार समाज से संवेदन के स्तर पर बहुत कुछ ग्रहण कर समाज को विचार और संवेदना के रूप में बहुत कुछ देते रहते हैं। वैसे भी साहित्यकार की भूमिका समाज व राजनीतिकों को सही दिशा देने की है और यह काम वह अपनी रचनाओं के माध्यम से ही कर सकता है।

सिद्धेश्वर जी जीवट के आदमी तो हैं ही, साथ ही संबंधों का निर्वाह करना भी जानते हैं। जब कभी किसी शुभेच्छु, पत्रकार या साहित्यकार मित्र

की बेटी या बेटा की शादी में इन्हें आमंत्रण मिलता है, तो वह विवाह में अवश्य पहुँच जाते हैं। यहाँ तक कि पटना या दिल्ली से दूर दूसरे शहर में भी इन्हें आमंत्रण मिलता है, तो वहाँ जाने का प्रयास वे अवश्य करते हैं। अभी-अभी पिछले दिसंबर, 2012 की बात है, प. बंगाल के कोलकाता के भाई जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव 'धीर' की लाड़ली बिटिया की शादी जब बिहार के आरा (भोजपुर) में हुई, तो मैं यह सुनकर दंग रह गया कि वह विवाह में अपनी गाड़ी से पहुँचे थे। इतनी दूर और उस ठंढे मौसम में श्री धीर जी के यहाँ जाने की उन्होंने परेशानी इसलिए उठाई, क्योंकि वे इनके नेतृत्व में संचालित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था-राष्ट्रीय विचार मंच की प. बंगाल इकाई के संयोजक हैं। इसी प्रकार जब कभी मैंने उन्हें पाटलीपुत्र स्थित अपने निवास पर चाय के लिए आमंत्रित किया तो उन्होंने सहज रूप से स्वीकार किया, यह है उनकी सदाशयता और संबंधों को निर्वाह करने की विशेषता, जबकि मौजूदा दौर के समाज में सारे रिश्ते-नाते में तेजी से दरारें पड़ती जा रही हैं और संबंध टूट रहे हैं।

सिद्धेश्वर जी अक्सर कहते हैं कि रचनाकार कभी भी घाटे में नहीं रहता है, चाहे उसका सम्मान हो रहा हो या अपमान, उसे ठगा जा रहा हो या उसके साथ ऐसी ईमानदारी बरती जा रही हो। दरअसल, उनके इसी गुण ने उनमें किसी के प्रति कटूता पैदा होने नहीं दी है। आप उनके लेखन में एक शब्द भी ऐसा नहीं देख सकते जो किसी को गिराने या बदला लेने के लिए लिखा गया हो। वह हिंदी साहित्य के तिकड़मी और षड्यंत्रकारी की माहौल से जरा भी प्रभावित नहीं रहे हैं। हर तरह की गुटबाजी से दूर और अक्सर इसका शिकार होने के बावजूद वे कभी कटु नहीं हुए। उनकी इस बात का भी मैं प्रशंसक हूँ कि वैचारिक और व्यावहारिक-दोनों स्तर पर उनकी उदारता समान रूप से देखी जा सकती है।

आप मानें या न मानें, पर मुझे लगता है कि रचनाकार के व्यक्तित्व का प्रभाव रचना पर अवश्य पड़ता है। वह उससे पाठक को प्रभावित भी करता है। सिद्धेश्वर जी बताते हैं कि प. बंगाल में जब महत्वपूर्ण रचनाकार अपनी पुस्तकों को अपना हस्ताक्षर करके बेचता है, तो लोग पंक्तिबद्ध होकर उसे खरीद लेते हैं। इसलिए रचनाओं को उनका सम्मानजनक स्थान मिलना चाहिए। यह रचनाकार को रेखांकित और स्थापित करने के लिए जरूरी है।

मौजूदा दौर में रचनाकार की जो स्थिति है उसमें रचनाकार को अपने रूझान के अनुसार एकल कौशल और वैयक्तिक संघर्षो पर ही निर्भर करना

पड़ता है। यही कारण है कि आज से पाँच दशक पूर्व सुने या पढ़े गए रचनाकारों के नाम वही के वही दुहराए आ रहे हैं और उसके बाद आने वाली दो पीढ़ियाँ आकलन के अभाव में अपना कोई स्वरूप निर्धारित नहीं कर पाई। ऐसी स्थिति में सिद्धेश्वर जी का मूल्याँकन हुआ या नहीं इसका उन्हें कोई गम नहीं है और न उन्हें खेद। वे मानते हैं कि यदि उनका मूल्याँकन हो भी जाता तो क्या फर्क पड़ता। उनका कौन मूल्याँकन करता है और कौन नहीं, इसे देखना भी वे उचित नहीं समझते हैं। वह तो अपना कर्म करते जा रहे हैं और साहित्य के प्रति अपना दायित्व निभाए जा रहे हैं जिस निष्ठा से वह लिख रहे हैं, उसी निष्ठा से आगे भी लिखते जाएगें। वह जीवन के अनुभवों और यथार्थ को बिना किसी लाग-लपेट और कल्पना की चाशनी के, सीधे-सीधे व्यक्त करते जा रहे हैं, क्योंकि पाठक भी चाहते हैं कि रचनाकार के अनुभवों को सीधे-सीधे जाना जाए। इन्हें लगता है कि जीवन जीने की चीज है और वह सार्थकता की तलाश करते हुए जिया जाना चाहिए। यही रचनात्मकता है और इसी से रचनाकार वृहत समुदाय से जुड़ते हैं। सिद्धेश्वर जी की सृजन-चेतना के प्रसंग में मुझे याद आती हैं ओमप्रकाश चतुर्वेदी 'पराग' की निम्न पंक्तियाँ-

'रहूँ या न रहूँ मैं, पर तुम्हें मिटने नहीं दूँगा
सृजन की चेतना हूँ, ध्वंस की धारा नहीं हूँ मैं।'

ग्रामीण समाज की स्थितियों पर जब सिद्धेश्वर जी की नजर जाती है तो वह कहते हैं सड़क निर्माण में खटते स्त्री-पुरुष, भयंकर शीत में नंगे बदन रहने के लिए मजबूर ग्रामीण अब भी आजादी के 65 साल बाद वैसी ही हालत में हैं। आज नेताओं के मोटे पेट और चमकते चेहरे, लाल बत्तियों की चमक-दमक में फुर्तीले षड्यंत्रकारी ये सब नहीं जानते कि इस देश के खजाने को लोकोपयोगी बनाने के लिए किस किस्म की नियोजनाओं की जरूरत है। गाँव के मुखिया, पटवारी, जिला परिषद के अध्यक्ष, तहसीलदार, प्रखंड विकास पदाधिकारी से लेकर जिलाधिकारी और जनप्रतिनिधि सीधे-सीधे इसके लिए जिम्मेदार हैं, क्योंकि समय रहते न वे ग्रामवासियों को सचेत करते हैं, न छोटे-छोटे नालों के खतरनाक क्षेत्रों में बाड़बंदी करते हैं और न इसकी सूचनाएँ आपदा प्रबंधन जैसे महकमों को दी जाती है।

तमाम नकारात्मक स्थितियों के बावजूद सिद्धेश्वर जी यह स्वीकार करते हैं कि भूमंडलीकरण आधुनिक युग की सच्चाई है। इससे बचा नहीं जा सकता। भूमंडलीकरण चुनौतियों का सामना करने के लिए जरूरी

उपकरण हंमें इसी के बीच के आहूत करने होंगे। ऐसी वैकल्पिक संस्थाओं का सृजन करना होगा जो नई चुनौतियों से निपटने में सक्षम हो सकें। हमें ध्यान रखना होगा कि ग्रामीणों की बात करना देश के करोड़ों नागरिकों से जुड़े कुछ बेहद जरूरी मसलों को कारगर संवाद की जद में लाना है। इस काम को राजनीतिक तरीके से हल किया जा सकता है। ऐसे में साहित्यकारों तथा सामाजिक सरोकार रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका अनायास बढ़ जाती है। साहित्यकार होने के नाते सिद्धेश्वर जी अपने इसी दायित्व का निर्वाह कर रहे हैं लेखन के माध्यम से संवाद स्थापित करके।

जब संवाद स्थापित करने की बात चली है, तो इस संदर्भ में साहित्यकार और बुद्धिजीवियों के सिलसिले में 26 जनवरी 2013 में जयपुर साहित्य सम्मेलन में आशीष नंदी जैसे समाजशास्त्री, राजनीतिक विश्लेषक और कथित रूप से समाज की नब्ज पहचाने वाले बुद्धिजीवी ने दलित, पिछड़े और आदिवासी समुदाय के लोगों पर जो टिप्पणी की उसे सिद्धेश्वर जी ने दुर्भाग्यपूर्ण होने के साथ-साथ सामाजिक ताने-बाने को क्षति पहुँचाने वाली बताया। उन्होंने कहा कि आशीष नंदी बतौर समाजशास्त्री इस नतीजे पर पहुँच गए कि भारत में भ्रष्टाचार के लिए दलित, पिछड़े और आदिवासी समुदाय के लोग जिम्मेदार हैं। उनके यह विचार दलित, पिछड़े और आदिवासी समुदाय के लोगों को कचोटने वाले हैं। सिद्धेश्वर जी ने कहा कि यदि आशीष नंदी जैसे प्रखर और प्रमुख बुद्धिजीवी किन्हीं वर्गो-समुदायों के संदर्भ में इस तरह के विचार रखते हैं तो इससे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण और कुछ नहीं हो सकता। नंदी की यह सोच निश्चित रूप से गंदी कही जाएगी मगर उनके विरूद्ध मुकदमा रूका नहीं।

लगन और प्रतिभा का सारस्वत योग सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में स्पष्ट देखने को मिलता है और जिस व्यक्ति में इन दोनों का योग हो, वह कम अफलित नहीं रह सकता। इनके जीवन में इस प्रेरक आदर्श को पुष्ट करने वाली मिसाल है इनकी रचना-धर्मिता। लोग समझते हैं कि पैसा और सहुलियत ही जीवन में आई चुनौती का हल कर सकती है, परंतु यह अर्द्ध सत्य है। सिद्धेश्वर जी के पास न तो पैसा अधिक है और न सहुलियत। हाँ, उनके पास उच्च जीवन मूल्य, परिवार और संस्कार का साझा और एक धवल आदर्श है जो उन्हें सन्मार्ग पर बढ़ने का नैतिक साहस देता है। ऐसा आज दुर्लभ ही देखने को मिलता है। ऐसे वक्त हमें मैथिलीशरण गुप्त की निम्न पंक्तियों का स्मरण हो आता है-

'राम तुम्हारा जीवन ही तो काव्य है,
कोई कवि बन जाए, सहज संभाव्य है।'

'साकेत' महाकाव्य की रचना के क्रम में श्री गुप्त जी द्वारा लिखी ये पंक्तियाँ सिद्धेश्वर जी के जीवन पर चरितार्थ होती है, क्योंकि इनके व्यक्तित्व के सरलीकरण और साधारणीकरण की वजह से आम लोग और आम रचनाकार, सामाजिक कार्यकर्ता उनमें अपना चेहरा देखते हैं। इनका जीवन ही सहजता का पर्याय है। बोलचाल, भाषाशैली, खान-पान, रहन-सहन और रीतिनीति आदि सभी क्षेत्रों में उन्होंने ग्रामीण संस्कार और संस्कृति को अपना रखा है। इनके द्वारा अभिव्यक्त विचार आडंबरहीन, ओजस्वी, उत्साहवर्द्धक और चिंतनपरक होता है। कड़वा से कड़वा सच बोलने के वे आदि हैं।

सिद्धेश्वर जी में नेतृत्व की पूरी क्षमता है। वह संस्कारों में पले-बढ़े हैं जिसके कारण उनके रग-पग में भारतीय संस्कृति रची बसी है। अब तक का उनका सामाजिक, साहित्यिक और राजनीतिक जीवन बेदाग रहा है। मैं विश्वास के साथ कहता हूँ कि आगे भी उनकी ईमानदार व साफ सुथरी छवि पर कोई अँगुली नहीं उठा सकेगा। वैसे भी वे बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर तीन साल और भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग में वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर 36 साल रहकर अपनी ईमानदार साफ छवि का लोहा मनवा चुके हैं। लगभग चार दशक की साफ छवि किसी व्यक्ति के लिए एक माने रखती है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जो ठान लेते हैं उसे पूरा करके ही चैन लेते हैं आखिर तभी तो इन्होंने मान लिया है कि लेखन ही इनकी वास्तविक दुनिया है और इसे लेखन की दुनिया में भी भारतीय संस्कृति के मूल चिंतन एवं जीवन पद्धतियों को ही भूल जाना सिद्धेश्वर जी राष्ट्र के लिए आत्मघाती मानते हैं। अपनी पत्रिका 'विचार दृष्टि' के 48वें अंक के संपादकीय में वे लिखते हैं कि 'पश्चिमी षड्यंत्र के तहत युवा पीढ़ी को सुनियोजित ढंग से खुलेपन के नाम पर अश्लीलता को बढ़ावा देकर भारतीय संस्कृति से दूर किया जा रहा है। सिर्फ क्रिकेट मैच में संगठित राष्ट्रीय भावना प्रदर्शित करने से राष्ट्रीय एकता मजबूत नहीं होगी। सच तो यह है कि भारतीय मिट्टी एवं चिंतन से लगाव, भारतीय पुरुष को आदर्श मानना एवं राष्ट्र के प्रति समर्पण ही सच्ची राष्ट्रभक्ति है।'

देश व समाज की विषम परिस्थिति में प्रबुद्धजनों एवं लेखकों के

दायित्व के सवाल पर वे पुनः कहते हैं कि 'मूल्यों के प्रति उपेक्षा की वजह से आदर्शों की रेखा धूमिल होती जा रही है, जिसे बचाना समाज के प्रबुद्ध वर्ग यानी लेखक साहित्यकार, पत्रकार, अध्यापक तथा चिकित्सक का धर्म हो जाता है। अन्यथा मानवता की परिभाषा ही बदल जाएगी।'

इसी प्रकार देश में बढ़ते भ्रष्टाचार को रोकने के सवाल पर सिद्धेश्वर जी ने अपना मत स्पष्ट रूप से 'विचार दृष्टि' के 48वें अंक में 'भ्रष्टाचार के खिलाफ अन्ना हजारे आंदोलन' शीर्षक अपने लेख में व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि 'मेरे ख्याल से भ्रष्टाचार और आर्थिक अपराधों से निपटने वाली तमाम एजेंसियों को पूरी तरह सरकार व कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त कर दिया जाना चाहिए। एक बात और मुझे विचित्र लगती है कि एक ओर जहाँ अन्ना हजारे ने भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन छेड़ रखा है, वहीं दूसरी ओर सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों मिलकर संसद की सर्वोच्चता और पवित्रता का बखान करने में लगे हैं बजाय इसके कि संसद ऐसी कोई राय नहीं सुझा पा रही जिससे लोकपाल को लेकर जारी गतिरोध दूर हो सके। यदि संसद जन आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली सर्वोच्च संवैधानिक संस्था है, तो फिर वह देश को संतुष्ट करने में सक्षम क्यों नहीं? आखिर संसद ऐसा कोई प्रस्ताव क्यों नहीं पारित कर सकती जिससे जनता को यह भरोसा हो सके कि उसके भावनाओं की परवाह की जा रही है? यदि संसद इन विषम परिस्थितियों में भी सरकार को घेरने तक सीमित रही, तो उसकी गरिमा भी प्रभावित हो सकती है।'

सत्तापक्ष एवं प्रतिपक्ष के किसी राष्ट्रीय मुद्दे पर संसद में सहमति नहीं हो पाने के संदर्भ में सिद्धेश्वर जी द्वारा लिखित हाइकु काव्यसंग्रह 'सुर नहीं सुरीले' के प्राक्कथन में अभिव्यक्त विचारों को यहाँ मैं उद्धृत करना चाहूँगा। वह लिखते हैं, 'आज भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, पक्षपात, ईर्ष्या, द्वेष, बेईमानी, घृणा, अनैतिकता आदि दुर्गुण हमारे भारतीय समाज के खून में इस तरह रच-बस गये हैं कि हम स्वार्थ से परे कुछ सोच ही नहीं पा रहे हैं। आधुनिकता के दौर में हम अपने आप में सिमटते चले जा रहे हैं। अपने स्वार्थ हित में हमसब अलग-अलग राग अलाप रहे हैं। इसलिए हमारे सुर सुरीले नहीं है। सुर तो सुरीले तब होंगे जब हम सब मिलकर अपने समाज और देश के लिए सोचेंगे, करेंगे। कुछ इसी भाव से प्रभावित होकर इस संग्रह का नाम भी 'सुर नहीं सुरीले' रखा गया है।'

उल्लेख्य है कि 5-7-5 के क्रम में 17 वर्णो का हाइकु तीन

पंक्तियों की एक ऐसी कविता है, जिसमें एक-एक अक्षर की उपादेयता तो होती ही है, सभी पंक्तियों के बीच एक सामंजस्य भी होता है तथा प्रत्येक पंक्ति की अलग-अलग अपनी सार्थकता होती है। इसके साथ ही इसमें गहन भावों की अभिव्यक्ति की क्षमता भी होती है।

इस संग्रह के अपने प्राक्कथन में सिद्धेश्वर जी ने हाइकु की प्रासंगिकता के बारे में कहते हैं कि 'कंप्यूटरीकरण और इलेक्ट्रानिकीकरण के इस युग में कम समय में ही अनंत आकांक्षाओं की 'पूर्ति' के लिए व्यग्र मनुष्य को साहित्य में हाइकु जैसी विधा ही उसे सबसे ज्यादा उपयुक्त विधा लग रही है और इस शताब्दी में दुनिया की सबसे छोटी काव्य विधा के रूप में संभवतः हाइकु की सबसे बड़ी प्रासंगिकता होगी। तब यह हाइकुकारों पर निर्भर करता है कि इतनी बड़ी चुनौती का सामना सिलिकॉन की तरह 17 वर्णो में कविता के कितने आयाम समाहित कर सकते हैं, क्योंकि किसी भी हाइकु में कविता के जितने भी अधिक आयाम समाहित होंगे, हाइकु उतना ही महत्वपूर्ण होगा। सिद्धेश्वर जी का मानना है कि हाइकु विधा के सर्वश्रेष्ठ कवि जापान के बाशों रहस्यवादी कविता के सबसे सजीव प्रतीक हैं। जापान में उनकी पंक्तियाँ लोकोक्तियों में सम्मिलित हो चुकी हैं। बाशो के अनुसार इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप क्या काम कर रहे हैं, लेकिन अगर आप उसमें डुबे हुए नहीं हैं तो उसे आप कभी भी श्रेष्ठ तरीके से नहीं कर सकते। इन्हीं के बताए रास्ते पर चल रहे हैं सिद्धेश्वर जी। इन्होंने हाइकु और सेन्र्यु काव्य लिखने में विशिष्टता प्राप्त की है।

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के जापानी भाषा विभाग के अध्यक्ष तथा जापानी भाषा मर्मज्ञ और हिंदी हाइकु कविता के सृजन के लिए उर्वर भूमि तैयार करने वाले डॉ. सत्यभूषण वर्मा की प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त कर सिद्धेश्वर जी ने हाइकु कविता लिखने की ओर कदम बढ़ाया। 'सुर नहीं सुरीले' काव्य-संग्रह के कथ्य और तथ्य के बारे में वह पुनः कहते हैं, 'हमारा यह प्रयास रहा है कि इस सेन्रयू काव्य-संग्रह में व्यापक मानवीय संबंधों की पीड़ा-आह्लाद, हास-रूदन, उतार-चढ़ाव, संगति-विसंगति, निष्ठुरता-संवेदना तथा समाज, धर्म एवं राजनीति की विद्रूपताओं-विडंबनाओं को संयुक्त रूप से समाहित करें तथा वे कविताएँ हँसती-बोलनी-सी बतियाती-सी मालूम पड़ें और साथ ही पाठक-मन को आंदोलित भी करें।'

सिद्धेश्वर जी के अनुसार हाइकु के दो रूप हैं-हाइकु और सेन्र्यू। वह कहते हैं कि जहाँ हाइकु जीवन और प्रकृति के कार्य व्यापारों की

भावात्मक अभिव्यक्ति की कविता है, वहीं सेनर्‌यू मनुष्य की दुर्बलताओं अथवा दुर्बल क्षणों पर व्यंग्य अथवा पैरोडी है। कहने का तात्पर्य यह है कि हाइकु में प्रकृति महत्वपूर्ण है और सेनर्‌यू में मनुष्य।'

इस लिहाज से देखा जाए, तो हाइकु में 'पतझर की सांझ' इनका प्रथम काव्य संग्रह है और उसके बाद सेनर्‌यू में 'सुर नहीं सुरीले' और 'जागरण के स्वर' इनके दो काव्य-संग्रह वर्ष 2004 में प्रकाशित हुए।

जापानी विधा के सेनर्‌यू काव्य संकलन 'जागरण के स्वर' में महावीर के दर्शन और अहिंसा पर काव्य सृजन जगाने की प्रेरणा सिद्धेश्वर जी को तब मिली जब 'दिल्ली प्रवास के दौरान वे अणुव्रत महासमिति के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. धमेन्द्र नाथ 'अमन' और उनके सौजन्य से अहिंसा यात्रा के प्रवर्तक आचार्यश्री महाप्रज्ञ तथा मुनिश्री सुखलाल जैसे संतों के सान्निध्य में आने का उन्हें अवसर मिला। उसके बाद से भगवान महावीर, बुद्ध तथा महात्मा गाँधी के विचारों पर चलने के लिए वे प्रतिबद्ध हुए और आत्मसम्मान खोकर कुछ पाना इन्हें कभी गंवारा नहीं हुआ तथा अपने विचारों और साहित्य, सर्जना से लोगों को कुछ देने के रास्ते पर चल पड़े। ऐसे वक्त रहीम के दोहे को मैं स्मरण कर रहा हूँ जो इन पर सटीक बैठते हैं-

आब गई, आदर गया, नैनन गया सनेहि।
ये तीनों तब ही गए, जबहिं कहा कछु देही।।

जहाँ तक सिद्धेश्वर जी को मैं समझ पाया हूँ इनके द्वारा किए जा रहे लेखन साहित्य, संगठन तथा पत्रकारिता के कार्यो से उनमें संतुष्टता का भाव है। उनके दिल में यह कचोट नहीं है कि राजनीति में आकर उन्हें कोई और बड़ा पद क्यों नहीं मिला। भारतीय राजनीतिज्ञों से अक्सर यह शिकायत रहती है कि वे अगली पीढ़ी के लिए जगह नहीं छोड़ना चाहते, किंतु बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष पद को भी स्वेच्छा से इन्होंने छोड़ दिया। यदि वे चाहते, तो तीन साल के एक और कार्यकाल तक उस पद पर रह सकते थे। इसी प्रकार सन् 2000 में ही इन्होंने भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद से भी स्वेच्छा से सेवानिवृत्ति ले ली थी। हालांकि सत्ता का मद इतनी आसानी से छूटता नहीं है। भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में तो यह नामुमकिन-सा दिखता है। दरअसल सिद्धेश्वर जी का कहना है कि समाज सेवा के लिए कई रास्ते खुले हैं जैसे साहित्य, संगठन और सामाजिक सरोकार से जुड़ी, पत्रकारिता। जब आपकी पहचान ही इसी प्रासंगिकता से जुड़ी है, तो आप

आखिर अप्रासंगिक क्यों होना चाहेंगे?

साहित्य लेखन के संदर्भ में हिंदी की सार्थकता पर सिद्धेश्वर जी ने एक सवाल के जवाब में कहा कि हमारे सार्वजनिक जीवन और व्यवहार में अँग्रेजी का बहुत तेजी से विस्तार हुआ है। राजभाषा घोषित किए जाने के बावजूद हिंदी सत्ता की भाषा नहीं बन पा रही है। उन्होंने इस बात पर खेद व्यक्त किया कि प्रारंभ से ही हिंदी को लेकर एक संवैधानिक भ्रम फैल गया कि हिंदी राष्ट्रभाषा है, जबकि सच तो यह है कि इस शब्द का कोई उल्लेख हमारे संविधान में नहीं किया गया है। हिंदी की अपनी एक परंपरा है, भाषिक एवं धार्मिक बहुलता है और किसी को भी यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह प्राणदायी बहुलता को नुकसान पहुँचाए। सिद्धेश्वर जी इस बात को और आगे बढ़ाते हुए अज्ञेय जी द्वारा हिंदी के संबंध में कही गई बात को स्मरण कर कहते हैं कि उन्होंने दशकों पहले कहा था-दरअसल शुरू से ही हिंदी प्रतिरोध या विरोध की भाषा थी और सत्ता की भाषा हो पाना उसकी ऐतिहासिक आकांक्षा का हिस्सा नहीं रहा है। सत्ता से उसका संबंध अटपटा ही है और उसके नाम पर बड़ा और खर्चीला सरकारी पाखण्ड, जो बरसों से लगातार हो रहा है, उसे किसी तरह की शक्ति नहीं दिला सका है। दूसरी ओर उसका विस्तार किसी नियोजित प्रयत्न से नहीं, बाजार, मनोरंजन और टेलीविजन आदि के स्वाभाविक विकास से अधिक हुआ है। हिंदी की अपनी परंपरा ने ही उसे भारत की सबसे अतिथेय भाषाओं में एक बनाया है।

प्रधान महालेखाकार (लेखा परीक्षा), बिहार, पटना से प्रकाशित विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' के मार्च-अक्टूबर 1992 के अंक:2 में 'राजभाषा के प्रति हमारी अटूट निष्ठा' शीर्षक संपादकीय में सिद्धेश्वर जी लिखते हैं- 'आन भ्रदा कतवो यन्तु विश्वतः 'अर्थात सभी दिशाओं से हममें सद्विचारों का प्रवेश हो। राजभाषा के प्रति अटूट निष्ठा इन्हीं सद्विचारों में से एक है और उसे कार्यान्वित करना पुनीत राष्ट्रीय कर्त्तव्य।'

इसी प्रकार आज से सात दशक पूर्व हिंदी को राजभाषा घोषित किए जाने के बाद भी उसके क्रियान्वयन नहीं होने का कारण बताते हुए सिद्धेश्वर जी 'विचार दृष्टि' के 36वें अंक के संपादकीय में पुनः कहते हैं-'हम स्मरण' कर लॉर्ड मैकाले को, जिसने अपनी भाषा, अपनी नीतियाँ और अपनी संस्कृति थोपकर एक ऐसा वफादार वर्ग तैयार किया, जो रक्त और वर्ण से भले ही हिंदुस्तानी हो, किंतु सोच, रुचियों और आदतों से वह अँग्रेज

था। मैकाले की अँग्रेजियत वाले वे संतानें आज हिंदी को राजभाषा घोषित किए जाने के साठ साल बाद भी हमारे बीच किसी न किसी रूप में मौजूद हैं जो राष्ट्रभाषा हिंदी को अपना वाजिब हक देने से वंचित कर रहे हैं और हमारे राजनेता वोट बैंक के चक्कर में अपने तात्कालिक लाभ के लिए भाषानीति को राजनीति रंग देने का प्रयास करते हैं। मगर अब परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। हमें चौकन्ना होने की जरूरत है, क्योंकि आज भी साम्राज्यवादी ताकतें हमारी ही भाषा का उपयोग, अपने उत्पाद और अपनी विचारधाराओं को बेचने में करती हैं कभी धर्म के नाम पर तो कभी जातीय विद्वेष को हवा देकर और हमारे देश के हिंदी की रोटी खाने वाले साहित्यकार भी वही कर रहे हैं जो साम्राज्यवादी ताकतें चाहती हैं।' इस संदर्भ में वे पुनः देशवासियों को इस चुनौती का सामना करने का सुझाव उसी जुलाई–सितंबर, 2006 के 31.11.2003 को प्रस्तुत करते हुए संदेश भी देते हैं–'इसीलिए हमारे सामने आज चुनौतियाँ एकायामी नहीं, बहुआयामी हैं जिनसे मुकाबला हमें डटकर करना है, क्योंकि हिंदी जीवन का संदेश देती है और यह देशवासियों को जोड़ने का काम करती है। यह हमें उम्मीद जगाती है कि रात कितनी ही अँधकारमय क्यों न हो उसका जाना अवश्यंभावी है।'

साहित्य सृजन की भाषा क्या हो? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए सुप्रसिद्ध साहित्यकार महाश्वेता देवी ने जनवरी 2013 में आयोजित जयपुर साहित्योत्वसव में कहा–'वहीं, जिसमें आप स्वप्न देखते हों।' वो स्वप्न क्यों हो? उत्तर था, 'अत्याचार, बर्बरता, विशेषतः स्त्रियों पर बर्बरता का विरोध हर नागरिक करे।' मुझे लगता है सिद्धेश्वर जी भी अपने साहित्य लेखन में इसी भाषा यानी, अत्याचार, लालच घृणाविहीन समाज का स्वप्न देखते हैं और उसी के अनुरूप अपनी कलम चलाते हैं। वे बड़ी सहजता और ईमानदारी से अपने ऊपर बीती बातें कह जाते हैं अपने लेखन में। यह सहजता और ईमानदारी ही तो इनकी विरासत है। बड़ी सहजता से सिद्धेश्वर जी पुनः कहते हैं कि अगर समाज अनैतिकता, मूल्यों का हनन, छद्म व्यवहार और स्वार्थपूर्ण राजनीति से घिरा हो, तब विकृति को सुंदर और सृजनात्मक रूप से प्रस्तुत करके सकारात्मक सोच की ओर समाज को मोड़ना हर साहित्यकार का नैतिक दायित्व हो जाता है। अपने लेखन में सिद्धेश्वर जी का यही प्रयास रहा है। अपने निबंध, व लेखों में उन्होंने यह बात साबित कर दी है कि बात करने की कला ही लेखन को महत्वपूर्ण बनाती है। इसी संदर्भ में वे यह भी

कहते हैं कि आजकल के दौर में ईमानदार होना ही काफी नहीं है, ईमानदारी दिखनी चाहिए। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर इनकी ईमानदारी निश्चित रूप से दिख गयी। इस माने में सिद्धेश्वर जी एक ऐसे लेखक हैं जिनमें समाज में दिखावे की प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि हमेशा कार्य की ओर वे प्रवृत्त हैं। सच्चाई नहीं है, बल्कि उनके रोजमर्रे की जिंदगी में भी उनकी यह सच्चाई परिलक्षित होती है। आने वाली पीढ़ियों को अपनी साहित्यिक, सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारियों से वे अगाह करते रहे हैं और आज भी कर रहे हैं। अपनी इन विशेषताओं से जहाँ सद्चितवाले साहित्यकार, पत्रकार तथा बुद्धिजीवी प्रभावित हैं, वहीं अपनी साफगोई से बहुत सारे लोगों को नाखुश भी करते हैं।

सच के सदैव हिमायती सिद्धेश्वर जी का साहित्यिक जीवन काफी उदार और स्पष्ट है। वे स्वयं में एक साहित्य हैं और उनके रोम-रोम में, व्यक्तित्व एवं व्यवहार में रचा-बसा है। जो व्यक्ति सामान्यजनों की भावनाओं, विचारों की इतनी कद्र करता हो, तरजीह देता हो, उसके लेखन पर कुछ सीखना मेरा दायित्व बनता है। इसीलिए अंकों से अक्षर तक की उपलब्धियों की इस पुस्तक में समेटने के लिए हम विवश हुए और हमने अपनी यादों को यहाँ वर्णित किया है। सिद्धेश्वर जी के द्वारा लिखी पुस्तक 'हमें अलविदा ना कहें', जो दिवंगत साहित्यकारों, पत्रकारों, कलाकारों, राजनीतिज्ञों और समाज सेवियों के जीवन पर आधारित है, को लिखने में सिद्धेश्वर जी ने बहुत श्रम और समय खर्च किया है। उनके कृतित्व तथा जीवन पर इनके संस्मरण पुस्तक को इन्होंने बड़े ही कौशल से सजाया-संवारा है। यह पुस्तक मानवीय मूल्यों की पहचान कराती है। सच कहा जाए, तो संस्मरणीय व्यक्तित्व के जीवन और उनके रचना-संसार से पाठकों को अवगत कराकर सिद्धेश्वर जी ने उनलोगों को सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की है। संस्मरणीय व्यक्तित्व के जीवन चरित्र को सिद्धेश्वर जी ने बहुत ही सजीव और भावपूर्ण भाषा में बहुत गहराई और आत्मीय जुड़ाव के साथ लिखा है। सबको सहेजने की उनकी प्रवृत्ति के कारण उसमें किसी तरह की संकीर्णता या तंगदिली नहीं है।

सिद्धेश्वर जी ने अपनी लेखनी और अद्‌भुत साहित्यिक सरोकार की वजह से ही बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का उच्चासन को पाया तथा उसकी गौरव गरिमा को पुनर्स्थापित करने का उन्होंने अपनी पूरी साहित्यिक एवं प्रशासनिक क्षमता का परिचय दिया जिसके कारण बिहार

तथा बिहार से बाहर के लोग भी उनके कार्यकाल को 'भूतो न भविष्यति' कहकर इनका गुणगान करते हैं। मैं भी संस्कृत बोर्ड में बिताए इनके कार्यकाल और संस्कृत एवं संस्कृति के लिए किए गए कार्यों को उत्कृष्ट कोटि में परिगति करता हूँ, क्योंकि मैं स्वयं उसका साक्षी रहा हूँ इनके साथ चलकर। मैंने देखा है उस दौरान इनके आत्मानुशासन को और यही उनकी सफलता की कुँजी रही। सचमुच जिसके आत्मानुशासन की दृढ़ ढाल है उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता है। बातचीत के दौरान वे स्वयं भी अक्सर कहा करते हैं कि 'मैं किसी भेदभाव और पक्षपात के सही मार्ग पर चल रहा हूँ इसलिए मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।' यही कारण है कि वे सदैव अपने जीवन में सुख का अनुभव करते हैं और दूसरों को भी ऐसा ही जीवन व्यतीत करने की सलाह देते हैं।

आप इस बात से अवगत हैं कि जिन धर्मशास्त्रों से भारतीय जीवन के आदर्श, सभ्यता, संस्कृति तथा विद्या वैभव को युगों से संजीवनी शक्ति मिलती रही है, मुझे लगता है कि उन्हीं आदर्शों, सभ्यता-संस्कृति और विद्या वैभव से सिद्धेश्वर जी को भी संजीवनी शक्ति मिल रही है, क्योंकि इन्हें अपनी संस्कृति पर अटूट विश्वास है और लोगों को भी भारत की समन्वित संस्कृति में बहाकर अमृतत्व प्राप्त करने की वे सलाह देते हैं। समय-समय पर देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, मौलाना अबुल कलाम आजाद, लौह पुरुष सरदार पटेल, सुब्रह्मण्य स्वामी, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, अमर कथा शिल्पी फणीश्वर नाथ रेणु तथा बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर की जयंतियों पर विचार संगोष्ठी का आयोजन कर लंबे सामाजिक राजनीतिक, साहित्यिक तथा वैचारिक गंभीर विचार-विमर्श वे करते रहते हैं और देश-दिशा पर विचार कर उसे एक नई रचनात्मक दिशा देते हैं। इनके द्वारा वर्तमान दौर में इनके पटना के ए.जी. कॉलोनी स्थित संस्कृति के प्रांगण में आयोजित विचार संगोष्ठी में शिरकत करने से एक बात साफ समझ में आती है कि समाज में वैचारिक अनेकता अक्सर वैचारिक विभ्रम ही नहीं, वैचारिक असंयम तक भी पहुँच जाती है। इनकी संगोष्ठियों के विचार-विमर्श से समाज की कुल स्थिति और सोच क्या है, इसका सहज अंदाजा लगता है। मुझे यह कहने में कतई संकोच नहीं कि देश व समाज के विकास के बीज नहीं संगोष्ठियों से उपजी स्थितियों में से तलाश जा सकते हैं। जाहिर है, ऐसी संगोष्ठियों में जो भी विचार-विमर्श हुए और जो भी निष्कर्ष निकले उन्हें पत्र-पत्रिकाओं खासकर राष्ट्रीय विचार मंच की दिल्ली से प्रकाशित 'विचार दृष्टि' के

माध्यम से उन्हें सारे काम किये जाते हैं। यही नहीं, सिद्धेश्वर जी स्वयं भी समय-समय पर पूरे देश की यात्रा पर अकेले-अकेले भी और छोटे-छोटे समुहों में भी इस काम् के लिए निकल पड़ते हैं। अभी-अभी पिछले 31 अक्टूबर, 2012 में पहली बार मंच और अणुव्रत समिति के संयुक्त तत्वावधान में गुलाबी नगर जयपुर में आयोजित मंच के छठे राष्ट्रीय अधिवेशन के अवसर पर 'राष्ट्रीय एकता के लिए संघीय ढाँचा की मजबूती' और 'काश! सरदार पटेल आज हमारे बीच होते'- इन दो विषयों पर जो विचार-विमर्श हुए उसने राजस्थान तथा देश के विभिन्न राज्यों से पधारे सैंकड़ों लोगों के दिलो-दिमाग में स्वाभाविक जगह बनाई। देश के जाने-माने विचारकों के गहनतम विचारों का साझा करने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। वस्तुतः मौजूदा पुनः निर्माण काल को यदि पूर्ववत् स्वर्णकाल में बदलना है, तो ऐसे ही सिद्धेश्वर जी की तरह सकारात्मक पहल करना आवश्यक होगा।

जरूरत केवल इस बात की है कि इसके लिए प्रतिबद्धता को हमारा सर्वप्रथम ध्येय बनाना होगा, क्योंकि प्रतिबद्धता की कमी के कारण ही देश व समाज में भय, उलझन और अस्त-व्यस्तता है। सिद्धेश्वर जी आमजन की संवेदना को झकझोरने का प्रयास कुछ इसी से कर रहे हैं, क्योंकि उनका मर्म और तड़प की भावना को पूरी तरह इन्होंने समझा है। इनके लेखन में इसीलिए जीवन की सच्चाईयाँ सहज और जीवंत रूप में आती हैं, जिसने भी उसे पढ़ा, सराहा।' वे हमारे दिल में उतरते हैं और अपने साथ बहा ले जाते है। इनके द्वारा लिखी गई रचनाओं का पढ़ने वाला हर पाठक रीझता है कारण कि उनके लिए यह सीधा उपदेश नहीं, पर उन्हें भीतर से बदल देती हैं और वे अपने-पराए सभी के दुख-दर्द को अधिक संवेदनशील होकर देखते और समझते हैं। यह सिद्धेश्वर जी के लेखन का एक असाधारण गुण है जो पाठकों के हृदय बोलते हैं और वे मन में गहरे उतर आते हैं। तात्पर्य यह कि अपने आत्मीय जीवन प्रसंगों, संस्मरणों के जरिए अपने आत्मकथ्य में सिद्धेश्वर जी मार्मिकता से अपने अहसासों के रेखांकन में रंग भरते हैं। इनके लेखन मे एक और विशेषता मुझे नजर आई है और वह यह कि धार्मिक अनुष्ठानों पर जोर न देकर आध्यात्मिक अनुष्ठानों को वे तरजीह देते हैं। वैसे भी वे धार्मिक अनुष्ठानों बहुत अधिक रुचि नहीं लेते हैं। वे कहते भी है कि वह आध्यात्मिक हैं, धार्मिक नहीं धार्मिक होना आध्यात्मिक होने से भिन्न है। यदि कोई व्यक्ति नियमित रूप से मेरी चर्च, मस्जिद या कोई धार्मिक स्थल

जाता है रोज प्रार्थना करता है तो वह धार्मिक तो हो सकता है लेकिन आध्यात्मिक नहीं। आध्यात्मिक वह है जो दूसरों के प्रति उतना ही प्रेमपूर्ण है जितना स्वयं के प्रति।

सिद्धेश्वर जी में चुनौतियों का सामना करने की अद्‌भुत क्षमता है। वह भी विधर्मी चुनौतियों की आक्रामकता को निष्प्रभ करने में पूर्णतः सफल हैं, जैसा कि बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहकर उन्होंने किया जिसे विरल नहीं, तो सहज भी नहीं कहा जाएगा। समरसता, समता और सौहार्दता उनकी जिजीविषा के अंतःसूत्र है। उनका सबके लिए सबके साथ निरंतर प्रवाहित होते रहना ही उनकी कर्म-साधना की सक्रियता है। आखिर तभी तो अपने लेखन में उनका विद्रोह परंपरा के प्रति नहीं, बल्कि प्रथा के प्रति देखने को मिलता है। परंपरा के उन्मेष, उन्नयन और प्रोन्नति के लिए वे यथा समय इस प्रकार की सार्थक भूमिकाएँ तैयार करते हैं जिसमें परंपरा का आधुनिकीकरण भी नजर आता है। दरअसल उनकी व्यग्रता सघन होती है। उनकी छटपटाहट को यदि कहीं तृप्ति मिलती है, तो वह उनका साहित्य है। सच कहा जाए, तो साहित्य और परंपरा सहधर्मी है। उसमें कोई प्रतिद्वंद्वता नहीं है। वे एक दूसरे के पूरक हैं। एक ओर परंपरा जहाँ अपने समय के भयांतक से जुझती है, वहीं दूसरी ओर साहित्य उसे भय से मुक्ति दिलाता है।

इस प्रकार सिद्धेश्वर जी के संपूर्ण साहित्य का जब हम अवलोकन करते हैं, तो पाते हैं कि अपनी जमीन, परंपराओं और संस्कृति से जुड़े उनका साहित्यिक मन, जिजीविषा की अंतरंगता में वे जीवन के रंग भरते रहे हैं। वे अब तक थके नहीं और न हारे ही। वादों की छाया से हटकर जब कभी किसी पर उनकी दृष्टि पड़ी तब उन्होंने परंपरा को आधुनिकता की रंग में भरकर पाठकों के सामने प्रस्तुत किया और साहित्य से जनाधार से खिसकतें संबंधों को थामने की कोशिश की। इसके साथ ही साहित्य सर्जना के क्षेत्र में उन्होंने अनेकशः समाज की विद्रूपताओं से संघर्ष करने के क्रम में उनकी आत्म करुणा और अभिजातजनों द्वारा उनकी उपेक्षा को दर्शाया, क्योंकि उनका साहित्यिक अभीष्ट स्वस्थ एवं संरक्षित समाज की स्थापना है। उन्होंने अपनी दूरदर्शितापूर्ण सर्जना द्वारा भविष्य सजाने-संवारने का चिंतन दिया है। वे हमेशा जन-जन को जगाना आवश्यक समझते हैं, क्योंकि आमजन की अंतश्चेतना से जो आवाज उठती है, वही अनिवार्य मूल्यों को सुरक्षित रख पाने में समर्थ हो पाती है। आमजन की जागृति से ही संस्कृति का परिष्कार

और प्रसार हो पाता है। इस दृष्टि से देखा जाए, तो साहित्य-साधना के क्षेत्र में सिद्धेश्वर जी ने अपनी सूक्ष्म, पैनी व दूरदर्शितासंपन्न होने का परिचय दिया है और आदर्श एवं यथार्थ में परस्पर अनुस्यूत सामन्वयिक सर्जना पर बल दिया। इसलिए उनकी प्रगतिशील चेतना को नकारा नहीं जा सकता।

अपने समय से जूझने वाले रचनाकार सिद्धेश्वर जी को मैं प्रबुद्ध साहित्यकार तो मानता हूँ, पर उनका संघर्ष सांस्कृतिक और वैचारिक होने के कारण पूरे राष्ट्र की जनता के संघर्ष का प्रतीक बन गया है। साहित्य-सृजन के प्रति समर्पित सिद्धेश्वर जी की इसीलिए मान्यता है कि जो अपने भीतर है, राष्ट्र के अंदर है, उसी का विकास संभव है। अपने स्थान और अपनी संस्कृति को छोड़कर पराए यश की लोलुपता में कहीं और दौड़-धूप करने से विकास संभव नहीं होता। इसलिए उनकी सर्जना में कहीं कोई कृतिमता नहीं, क्योंकि उन्होंने अपनी अंतस की सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है। विश्वास है सिद्धेश्वर जी की साहित्य-सर्जना मूल्यों एवं मर्यादाओं का संरक्षण और संवर्द्धन करने वाले भविष्य के लिए भी श्रेयास्पद होगी।

संकीर्णता की गुलामी से बाहर होकर सिद्धेश्वर जी अपने राष्ट्र, अपनी माटी, अपनी संस्कृति और संस्कारों से जुड़े रहना पसंद करते हैं, क्योंकि आधुनिकता और पश्चिमी संस्कृति की चपेट में आकर आज शांति कहीं खो गई है। सद्भावना और सहिष्णुता को लोग तिलांजलि देते जा रहे हैं। हम दूसरों की खुशी पर नहीं हँसते, बल्कि दूसरों के दुखी होने पर हँसते हैं और शायद इसी में आनंद का अनुभव करते हैं। इसी को देखते हुए सिद्धेश्वर जी ने संकल्प लिया है अहिंसा, प्रेम, शांति, सद्विचार जैसे मूल्यों का अपने जीवन में उतारने को, क्योंकि इनका स्पष्ट कहना है कि पाश्चात्य संस्कृति के हावी होने की वजह से भारतीय संस्कृति दबती जा रही है। इसीलिए भारतीय संस्कृति को सागर में डूबती नाव के समान मानकर उसे बचाने का आह्वान सिद्धेश्वर जी लगातार सभा-संगोष्ठियों के माध्यम के साथ-साथ अपने पत्र 'विचार दृष्टि' के जरिए कर रहे हैं। ऐसे समय, में कवि राधा चरण गोस्वामी की ये पंक्तियाँ मुझे याद आ रही हैं ज़ो सिद्धेश्वर जी के विचार पर सटीक बैठती हैं-

'मैं हाय-हाय दे धाय पुकारो कोई,
भारत की डूबी नाव उबारो कोई।'

राष्ट्रीय चेतना की झलक सिद्धेश्वर जी के लेखन में आप देख

सकते हैं। यही नहीं, देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दुरावस्था पर इनके भावों और विचारों से आप परिचित हो सकते हैं। अपनी अभिव्यक्तियों में वे निरंतर स्वर्णिम अतीत से प्रेरणा प्राप्त कर वर्तमान की कालिमा को हटाने का आह्वान वे करते रहे हैं। इस अवधारणा की कई रचनाएँ पाठकों तक पहुँच चुकी हैं। उन्होंने राष्ट्रहित को अपनी रचनाओं में जोर दिया है। उनका दृष्टिकोण समय सापेक्ष है। इनकी राष्ट्रीयता का आधार राजनीति की अपेक्षा समाज और संस्कृति है। इनका समग्र चिंतन मानवीय और भारतीय समाज के विकास के लिए प्रयासशील रहा है। राजनीति को गलत अनुपात में महत्व मिलने से वे लेखन में चिंतित दिखाई देते हैं और शोषण तथा उत्पीड़न की चक्की में डूबी जनता को जगाने की प्रेरणा भी देखने को मिलती है। आराम की कुर्सी पर बैठकर आलस्य के मंत्र जपने वाले लोगों के दिल और दिमाग को उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से झकझोरने का सद्प्रयास किया है। इनकी राष्ट्रीयता बौद्धिक होने के साथ-साथ आंतरिक और भावात्मक है।

सिद्धेश्वर जी का मानना है कि अँग्रेजों की तरह वर्तमान सरकार भी सामाजिक असमानता, धार्मिक व जातीय वैमनस्य और आर्थिक शोषण के बीज बो रही है। इनको समाप्त करना साहित्यकारों एवं प्रबुद्धजनों का राष्ट्रीय कर्त्तव्य बनता है। उनका यह दायित्व है कि जो लोग आलस्य की मीठी नींद ले रहे हैं उन्हें जगाने का प्रयास करें। मौनव्रत और तपस्या से आज काम न चलेगा।

सिद्धेश्वर जी के लेखन से जब मैं गुजरता हूँ, तो पाता हूँ कि सत्य, अहिंसा, सत्ता का विकेंद्रीकरण, मानसिक परिवर्तन, धार्मिक समता एवं सहिष्णुता, अश्पृश्यता निवारण, राष्ट्र-भाषा प्रश्रय आदि पर इनका स्पष्ट दृष्टिकोण है; क्योंकि इन तत्वों को ही इन्होंने अपने लेखन का विषय बनाया है। इसी प्रकार सरदार वल्लभभाई पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, मौलाना अबुल कलाम आजाद, डॉ. भीम राव अम्बेडकर, डॉ. राम मनोहर लोहिया, जय-प्रकाश नारायण, प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु, सुब्रह्मण्य भारती तथा नेताजी सुभाष चन्द्रबोस आदि राष्ट्र नेताओं के व्यक्तित्व भी इनके लेखन का विषय बन गया है। वैसे भी राष्ट्रीय विचार मंच, जिसके वे राष्ट्रीय महासचिव हैं की ओर से प्रतिवर्ष उनकी जयंतियों के अवसर पर निर्धारित विषयों का चयन कर विचार संगोष्ठी का आयोजन करते हैं।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की इन पंक्तियों-

'हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी
आओ मिलकर विचार करें, ये समस्याएँ सभी।

से प्रेरणा प्राप्त कर देश व समाज के सभी खड़ी चुनौतियों और समस्याओं का समाधान निकालने के लिए नियमित रूप से विचार संगोष्ठी के आयोजन को वे प्रासंगिक समझते हैं। सच तो यह है कि अतीत में झाँककर वर्तमान की दुर्दशा को दूर करने और भविष्य को देदीप्यमान बनाने का रास्ता इन्हें, सहज दिखता है जिसे वे अपनाए हुए हैं।

सिद्धेश्वर जी हिंदी के उन वरेण्य साहित्यकारों में हैं जो अपनी लेखनी और वाणी दोनों से ही राष्ट्रभाषा की समुचित अर्चना करने के साथ-साथ पत्रकारिता की भी आराधना कर रहे हैं। राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत सिद्धेश्वर जी मानते हैं कि किसी राष्ट्र का निर्माण तब तक नहीं हो सकता जब तक उसके पास अपनी भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्रति सम्मान का भाव न हो और ईमानदारी से उस पर वह अभिमान न करता हो। राष्ट्र तो तब बनता है जब उसकी कोई राष्ट्रीयता हो अर्थात सब लोगों के मिलने या मिल सकने की एक जगह हो। राष्ट्रीय विचारधारा के निर्भीक पत्रकार सिद्धेश्वर जी पिछले 15 वर्षो से दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका-'विचार दृष्टि' का संपादन बड़ी निष्ठा और ईमानदारी से कर रहे हैं और इसके लिए उन्होंने भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी जैसे पद से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली और उन्हें डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' जैसे शिक्षाशास्त्री, गिरीश चंद्र श्रीवास्तव जैसे कथाकार एवं प्रशासक तथा डॉ. शाहिद जमील एवं प्रो. अरुण कुमार भगत जैसे निष्ठावान सहयोगी से स्नेह, सहयोग और दिशा मिल रही है जिसके परिणामस्वरूप वे वैचारिक चेतना जगा रहे हैं और लेखकों, कवियों, विचारकों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं को राष्ट्रीय विचार मंच जैसा एक राष्ट्रीय मंच उन्होंने प्रदान किया है जो अपने समय का विश्वास सेतु है।

इस मंच और इसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के माध्यम से सिद्धेश्वर जी अपने गुणों और आत्मविश्वास के द्वारा समाज व राजनीति को दिशा देने की क्षमता रखते हैं जिसकी आवश्यकता आज इसलिए भी है, क्योंकि धर्म, समाज और राजनीति सहित प्राय: सभी क्षेत्रों में अंधकार का वातावरण बना हुआ है और अस्थिरता व्याप्त है। इसी के दुष्परिणामस्वरूप नेतृत्व ह्रास, अव्यवस्था, अनुशासनहीनता भरा परिवेश तथा आत्मबल की कमी और सिद्धांतहीनता दिखाई देती है। सुविधाभोगी मानसिकता से भरे

नेतृत्व के प्रति समाज में सम्मान का भाव जिस तेजी से तिरोहित हो रहा है उसमें सिद्धेश्वर जी जैसे समभाव, अनुशासित आचरण, कार्यो में पारदर्शिता और ऊर्जावान सामाजिक कार्यकर्ता के नेतृत्व का प्रयोग यदि ज़नहितकारी होता है, तो वह परिवर्तन की दिशा बदलने में कारगर सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व की इन्हीं सब विशेषताओं के चलते हमदोनों एक दूसरे के करीब आए। सिद्धेश्वर जी मेरे प्रिय है या मैं उनका प्रिय हूँ या हमदोनों एक दूसरे के प्रिय हैं, नहीं पता, पर इतना अवश्य है कि हमदोनों में आपसी स्नेह है। जब भी हमदोनों मिलते हैं, तो कोई निजी बातें न होकर सार्वजनिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक बातों के साथ-साथ राजनीतिक एवं जीवन जीने के रास्ते पर ही वे बातें केंद्रित रहती हैं। निष्कर्ष पर हमदोनों इस बात पर पहुँचते हैं कि यह सही है कि जीने के लिए पैसे चाहिए, पर उतना ही जितना से सादगी और सात्विकता के साथ जीवन गुजर सके। फिर भी हमदोनों को यह चिंता जरूर सताती है कि वर्तमान दौर के भौतिक युग में विशेषकर भारतीय राजनीति से जुड़े राजनेता 'पैसा, सेक्स और सत्ता' के पीछे पागल हैं, जबकि जिस पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति का अँधानुकरण वे कर रहे हैं, इन्हें ठुकरा कर पश्चिम के लोग साधना और तप के लिए जिस कठोर राह पर चलकर आध्यात्मिक ऊँचाई पर पहुँच रहे हैं, वह अविश्वसनीय है, पर यह सच है कि पश्चिम के लोगों को भारतीय सभ्यता-संस्कृति को अपनाने में शांति मिलती है। आखिर तभी तो पिछले दिनों इलाहाबाद के महाकुंभ में प्रयाग की त्रिवेणी में स्नान करने के लिए दस लाख से अधिक विदेशी आए। कहा जाए, तो भारतीय जीवन शैली को अपनाकर वे परम आनंद की अनुभूति महसूस करते हैं और दूसरी ओर हम हैं कि इस संस्कृति को छोड़ते जा रहे हैं।

(२८) राजनीति पर विविध व्यंग्य-वक्रोक्तियों में अभिव्यक्ति

जीवन जगत को जटिलताओं, संघर्षो, दुरभिसंधियों का यथातथ्य वर्णन और समाज, धर्म, साहित्य पर सर्जना करने वाले सिद्धेश्वर जी राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, आए दिन हो रहे घपले-घोटाले, राजनीतिक दलों के नेताओं द्वारा आरोप-प्रत्यारोप पर भी विविध व्यंग्य वक्रोक्तियों में अपने भावों को अभिव्यक्त करते रहे हैं और उसके विरूद्ध सचेतन अभियान चलाने को अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इन्होंने भारत भूमि की पावनता, स्वतंत्रता--संग्राम के शहीदों के त्याग और बलिदान को अपनी अनेक रचनाओं में उभारा है। उनकी अभिलाषा है कि आजादी और राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता को अक्षुण्ण बनाए रखना राजनेताओं सहित हम सभी देशवासियों का नैतिक एवं राष्ट्रीय कर्त्तव्य बनता है। उनका कहना है कि जिस देश में जन्म लेकर पले-बढ़े और शिक्षा ग्रहण कर अपने परिवार का पालन-पोषण हम सब कर रहे हैं वहाँ के बारे में भी सोचें, विचारें और यथासंभव उसके विकास में अपना योगदान दें, क्योंकि देश की आजादी के लिए अनेक ज्ञात-अज्ञात क्रांतिकारियों ने कठोरतम यातनाएँ सही हैं और अनेक सेनानियों ने इस देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व न्योछाबर किया है। अमानवीयता, क्रूरता, नृशंसता तथा आसुरी दमनवृत्तियों के आगे न झुकने वाले देशभक्तों के चरणरज से पावन इस धरा धाम के प्रति हम देशवासियों का परम कर्त्तव्य है कि आजादी के पहले और बाद की सामाजिक व राजनीतिक चेतना और बदलते जीवन-मूल्यों के प्रति चिंता करें और इसके इतिहास, भूगोल, समाज और संस्कृति को आत्मसात कर इन्हें राजनीति के हाथों नष्ट नहीं होने दें। सिद्धेश्वर जी का कामना है कि प्रदूषणमुक्त, कालुष्य रहित सुंदर और स्वस्थ समाज एवं राष्ट्र सबल हो। स्नेह, सौम्य और सद्भाव की इस धरती पर किसी तरह की विसंगति के पल्लवन पुष्पन के दृढ़ निषेध की कल्पना करने वाले सिद्धेश्वर जी के भावोच्छवास की अभिव्यक्ति समय-समय पर होती रही है, जो अपने-आप में महत्वपूर्ण और विचारणीय अनुभव हैं।

सिद्धेश्वर जी ने इस देश की जीवन शैलियों, रीति-रिवाजों, आस्था-विश्वासों, भाषा और बोलियों को अपनी रचनाओं में संजोते हुए कहा है कि आज राजनीति कहाँ जा रही है? उसकी दिशा क्या है? उसकी नियति और गति क्या है? ऐसे अनेक प्रश्नों से जुड़ी रचनाओं में उन्होंने वर्तमान समाज व राजनीति का बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा है और देश की प्रगति

के अवरोधक तत्वों की पहचान की है। इन्होंने राजनीति को अपने आस-पास फैली विसंगतियों तथा घटनाओं से उपजे आक्रोश को व्यक्त करने का माध्यम माना है और साथ ही राजनीतिक एवं सामाजिक बदलाव को एक आम आदमी की नजर से देखा है तथा उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप इनकी अनुभूतियाँ प्रकट हुई हैं। दरअसल, परिवेश और परिवेशगत यथार्थ रचना के जरिए अभिव्यक्त करे पाते हैं और राजनीतिक पहलुओं पर लेखक की दृष्टि बड़ी ही अन्वेषणात्मक और विश्लेषणात्मक होती है। वह उन सभी मुद्दों पर भावना के धरातल पर सोचता-विचारता और निष्कर्ष प्रस्तुत करता है जो समाज व व्यक्ति को संपोषण प्रदान करता है तथा उनसे अपनी असहमति प्रकट करता है जो उसके लिए खतरनाक दिखता है। सिद्धेश्वर जी इसी पथ के पथिक हैं। उनका पाथेय यही है और संधान भी।

सिद्धेश्वर जी का यह दृढ़ विश्वास है कि देश व समाज के समक्ष अनेक चुनौतियाँ रहते हुए भी भारतीय राजनीति के सरोकारों की दुनिया बदल रही है। 'अर्थ' के आकर्षण में उसकी संवेदनशीलता का लोप हो रहा है और आत्ममुग्धता एवं अहमन्यता का वातावरण व्याप्त है। ऐसे में यदि सिद्धेश्वर जी का संवेदनात्मक यथार्थ स्वस्थ समाज और सबल राष्ट्र को संकल्पना का चरितार्थ करने में लगा हो, तो यह सभी के लिए संतोष की बात है।

स्वतंत्रता संग्राम के युग के कई प्रस्फुटित भाव, विचार कुछ मायने में आज भी अर्थपूर्ण प्रतीत होते हैं। भूमंडलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की नीतियाँ अपनाए जाने की वजह से राष्ट्र की स्वतंत्रता पर कलंक लगता दिख रहा है और स्वतंत्रता संग्राम के युग के कई मंत्र आज पुनर्जीवित हो रहे हैं। साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद नए रूपों में सिर उठा रहे हैं। 'मेरा भारत महान' वाले नारों के साथ सरकारी खजाने को लूटा जा रहा है। इन्हीं सब विकृत्तियों को देखते हुए अप्रैल-जून, 2001 में प्रकाशित 'विचार दृष्टि' के अंक-7 के संपादकीय में सिद्धेश्वर जी लिखते हैं-'हम सब इस बात से अवगत हैं कि देश की संप्रभुता राजनीतिक लोगों में निहित है यानी वे ही देश के संचालक हैं, किंतु संसार के सबसे बड़े लोकतंत्र का दावा करने वाली भारतीय राजनीति जब भ्रष्टाचार के भयंकर भंवर में फँस ज़ाए, तो लोकतंत्र का खतरे में पड़ना स्वाभाविक है। भ्रष्टाचार की जड़ें राजनीतिक दलों व उसके नेताओं में इतनी पैठ बना ली हैं कि उसके जहर उनके रग-रग में समा गए हैं। राजनीतिक नेता सत्ता में हों या विपक्ष में,

आकंठं भ्रष्टा में डूबे होने के बावजूद उनकी आवाज भ्रष्टाचार के खिलाफ सबसे बुलंद होती है।' वे पुनः तहलका डॉट कॉम की एक वेबसाइट का हवाला देते हुए उसी संपादकीय में कहते हैं–'तहलका डॉट कॉम की एक बेवसाइट ने रक्षा सौदों की दलाली का मामला उजागर कर पूरे भारतीय राजनीति में एक तहलका मचा दिया है। जो अपनी कमीज को दूसरों से उजली और सफेद बताते थे, वे पाखंडी निकले। उच्च आदर्शो, नैतिकता और पारदर्शिता का ढिंढोरा पिटने वाली पार्टी की अध्यक्ष जया जेटली को मात्र एक लाख का नववर्ष फंड सारे देश ने लेते, गिनते और रखते देखा। सचमुच तहलका के इस बेबसाइट ने पूरे देश को शर्मिंदगी की स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है। जिस देश की सरकार में शामिल नेता चंद रुपयों के लिए देश की सुरक्षा का ही सौदा कर डाल रहे हों, उसकी रक्षा भगवान ही कर सकते हैं। जब जॉर्ज फर्नांडीस जैसे समाजवादी नेता का नाम सामने आता है, जिसे दूरदर्शन चैनल सादगी व समर्पण का आधुनिक संस्करण बताकर अपने कपड़े स्वयं धोते हुए दिखाते हैं, तो राष्ट्र को लेकर निराशा अत्यंत बढ़ जाती है। आखिर अब देशवासी किस पर भरोसा करे।'

आगे सिद्धेश्वर जी पुनः अपनी चिंता जताते हुए कहते हैं–'भारतीय राजनीति के भ्रष्टाचार का सबसे अधिक भयानक पहलू तो यह है कि जो जनता से भ्रष्टाचार मिटाने का दावे कर सत्ता में आते हैं वही भ्रष्टाचार में लिप्त हो जाते हैं। कल संसद में जिस दल ने हो-हल्ला कर नैतिकता के आधार पर वर्तमान सरकार के त्याग-पत्र की माँग की उन्होंने तो अपने शासनकाल में भ्रष्टाचार के नित नए मानदंड स्थापित किए हैं। जीप घोटाले से लेकर बोफोर्स, शेयर, यूरिया चारा घोटाले का लंबा इतिहास उन्हीं लोगों की देन है।

वास्तव में नारों की राजनीति से सरकारें और चेहरे तो बदल जाते हैं, पर सत्ता चरित्र और व्यवस्था नहीं बदलती है। यही सबसे बड़ी चिंता की बात है।'

साहित्य की प्रत्येक विधा तत्कालीन परिस्थितियों की उपज होती है। साहित्य की निबंध विधा भी अपनी श्रेष्ठता के कारण आज भी महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है। सिद्धेश्वर जी ने भी निबंध विधा को समृद्ध किया है और धीरे-धीरे दशकों से इसमें इन्होंने निरंतर अपनी जागरूकता और गंभीरता का परिचय देते हुए राजनीति पर अपनी व्यंग्य-वक्रोक्तियों में अभिव्यक्ति की है जिसकी वानगी के तौर पर उनके कुछ निबंधों पर हम नजर डालें। 'विचार

दृष्टि' के अप्रैल-जून 2011 में प्रकाशित 'फणीश्वरनाथ रेणु की राजनीतिक चेतना' शीर्षक निबंध में सत्ता के आचरण पर कटाक्ष करते हुए सिद्धेश्वर जी लिखते हैं-'हालांकि ऊपरी तौर पर हमारा लोकतांत्रिक ढाँचा वे मर्यादाएँ तो पूरी करता है, जो पार्थिव रूप से हमें दिखाई देती हैं, लेकिन हमारी सत्ता के आचरण में उनका कोई मूल्य नहीं है, न उनके प्रति कोई आदर व सम्मान का भाव रह गया है।'

सिद्धेश्वर जी की उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि लोकतांत्रिक प्रणाली के तहत बनी सरकार में सत्ता के आचरण में पारदर्शिता की आवश्यकता है, तभी राष्ट्र विकास के पथ पर जा सकेगा। सच तो यह है कि राष्ट्र का निर्माण तब तक नहीं हो सकता जब तक उसके पास ईमान और आदर्शो का बल, अभियान करने योग्य वस्तुओं की उपस्थिति और बलिदान का निश्चय न हो।

राजनीति के अपराधीकरण होने के संदर्भ में सिद्धेश्वर जी वर्ष 2005 में प्रकाशित 'विचार दृष्टि' के अंक-23 के संपादकीय में लिखते हैं-'देश की आजादी की लड़ाई के वक्त समाज के विभिन्न क्षेत्रों की श्रेष्ठतम प्रतिभाएँ आकर्षित होकर उन्होंने अपना ज्ञान, सम्मान और संपत्ति सब कुछ न्योछावर कर दिया था, किंतु आजादी के बाद सत्ता मोह, दलीय लाभ-हानि, निजी मान-सम्मान गुण-दोष योग्यता की परख रखने वाले विवेक पर हावी और प्रभावी हो गए। नतीजा यह हुआ कि सत्ता और समाज का संचालन करने के लिए योग्यता-संपन्न के स्थान पर मनपसंद व्यक्तियों को वरीयता दी जाने लगी। वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, साहित्यकार, कूटनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ, विधिवेत्ता, प्रशासक, सलाहकार और सहयोगी ऐसे लोग नियुक्त किए जाने लगे जो योग्य हों या न हों, किंतु नेतृत्व को पसंद हों। परिणामस्वरूप घटिया व्यक्ति सत्ता प्रतिष्ठान का संरक्षण प्राप्त करके सम्मान के अधिकारी बन गए और योग्य एवं प्रतिभावान व्यक्ति अवसर की तलाश में निराश होकर निष्क्रिय हो गए। इसी प्रक्रिया ने अवसरवादी गुंडा एवं अपराधी तत्वों को उपर उछाला और अब तो राजनीति का ही अपराधीकरण हो चुका है।' सिद्धेश्वर जी सार्वजनिक जीवन में 'खोटे सिक्कों' के चलन के सिलसिले में पुनः अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं-भारतीय राजनीति के मौजूदा दौर में आज चरित्रसंपन्न, प्रबुद्ध, प्रतिष्ठित, उदारचेता, प्रतिभाशाली एवं समन्वित दृष्टिकोणवाले व्यक्ति आकृष्ट नहीं हो पा रहे हैं, क्योंकि समाज रचनात्मक और समाज सेवा कार्यो में रत व्यक्तियों और

संख्याओं को सम्मान नहीं देता। बल्कि सच तो यह है कि समाज आज उन्हें महिमामंडित कर रहा है, जो डंके की चोट पर उन्हें लूटते हैं, उपेक्षा और अपमान की खरीद पर उन्हें तराशते हैं। आज जो जितना ही अधिक तिकड़मी, भ्रष्ट, असामाजिक और आपराधिक प्रवृत्ति का है वह उतना ही प्रतिष्ठित, सफल, कुशल और सम्मानित व्यक्ति है। उसके लिए प्रतिष्ठा और प्रगति के द्वार खुले हुए हैं। इस प्रकार 'खोटे सिक्कों' का चलन इतना अधिक हो गया है कि अब 'खरे सिक्के यदि कहीं दिखाई भी देते हैं, तो वे नकली होने का भ्रम डाल देते हैं।'

मैं इन सब बातों की चर्चा से पाठकों को यह बताने का प्रयास कर रहा हूँ कि सिद्धेश्वर जी द्वारा अंकों की दुनिया में 36 साल बिताए जाने के बाद अंकों से खेलते हुए भी अक्षरों के सफर में समाज व देश को साहित्य के माध्यम से वह काफी कुछ दे पा रहे हैं जो अच्छे-अच्छे रचनाकार नहीं दे पाते हैं। राजनीति पर भी अब उनकी कलम चलती है तो उसमें भारतीयता के जीवंत रंग दिखते हैं। उनके विलक्षण व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ही मैंने ऐसा अनुभव किया कि अक्षरों पर उनकी पकड़ से पाठकों को अवगत कराया जाए। अपनी भावना को व्यक्त करने में माहिर सिद्धेश्वर जी जब सरकारी सेवा से निवृत्त हुए तो उनकी अभिव्यक्ति के तकनीक में भी एक नया मोड़ आया। वह मोड़ राष्ट्रीयता का है। आखिर तभी तो तमिलनाडु हिंदी अकादमी के अध्यक्ष डॉ. बालशौरि रेड्डी को अमेरिका के न्यूयॉर्क में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन, जहाँ सिद्धेश्वर जी भी भारतीय प्रतिनिधिमंडल में बिहार का प्रतिनिधित्व कर रहे थे में जब अपनी पुस्तक 'समकालीन संपादकीय' की पांडुलिपि हस्तगत कराते हुए उस पर उन्होंने अभिमत लिखने को कहा, तो डॉ. रेड्डी ने 14 जुलाई, 2007 को न्यूयॉर्क में भी अपने भाव भरे शब्दों में लिखा-'समकालीन संपादकीय' में संकलित संपादकीयों को पढ़ने से ऐसा लगता है कि इसके विद्वान लेखक, संपादक, विचारक सिद्धेश्वर ने अपनी प्रतिभा के बल-बूते, 'विचार दृष्टि' की जो गरिमा बढ़ाई है और 1999 में कल्पित भावी स्वरूप को साकार करके इसे दसवें वर्ष तक पहुँचाया है, उसके लिए इसके संपादक तो प्रशंसा के पात्र हैं ही, संपादक परिवार और इससे जुड़े सभी कर्मचारी-अधिकारी भी बधाई के हकदार हैं। अपने संपादकियों का ऐसा सुंदर और आकर्षक संकलन प्रकाशित कर सिद्धेश्वर जी ने बहुत अच्छा काम किया है जिसे देख-पढ़कर आँखों को तृप्ति तो मिलती ही है मन को भी शांति और संतोष मिलता है।'

इसके पूर्व भी वे उसी अभिमत में लिखते हैं कि पत्रकारिता के ऐसे अवमूल्यन के वक्त भी सिद्धेश्वर जी जैसे कुछ संपादक सत्य को उद्घाटित करते हैं, यथार्थ को खोज लेते हैं और किसी निर्णय तक पहुँचना संभव हो पाता है। कम-से-कम इनके संपादकियों के इस संकलन को पढ़ने से तो यही लगता है कि इनकी लेखनी सत्यं शिवं सुंदरम की सृष्टि करती रही है। पत्रकारिता के आदर्शो और परंपराओं को जीवित रखने वाले संपादक सिद्धेश्वर द्वारा संपादित 'विचार दृष्टि' पत्रिका अभी शेष है जिसमें पत्रकारिता की परंपरा का लोप नहीं हुआ है और पत्रिका की यह पारंपरिक-यात्रा स्वयं में एक अजूबा है, जो संपादक और पत्रकार की छवि को धूमिल नहीं होने देती, बल्कि सच तो यह है कि सच्चाई और निष्ठा के साथ प्रवृत्त रहने की प्रेरणा देती है।'

इसी प्रकार शलाका सम्मान से सम्मानित वरिष्ठ पत्रकार एवं 'जनसत्ता' के पूर्व संस्थापक-संपादक प्रभाष जोशी 'समकालीन संपादकीय' की भूमिका में लिखा है-'ध्यान रखना चाहिए कि ये संपादकीय किसी दैनिक या साप्ताहिक के लिए नहीं लिखे गए थे। फिर भी सिद्धेश्वर जी ने इनमें सामयिकता ही नहीं तात्कालिकता को भी साधने की कोशिश की है। इसलिए इनमें गुजरते समय और घटती घटनाओं का संदर्भ तो है, लेकिन बात ऐसी कही गई है कि जो तात्कालिकता और राजनीति की उठापटक से पार जाती है। निजी और सामूहिक जीवन के ऐसे कालजयी मूल्यों को पकड़ने का प्रयास किया गया है, जिसमें दैनंदिन जीवन की आपाधापी में खो जाते हैं। सिद्धेश्वर जी की लगातार कोशिश है कि वर्तमान में जीते हुए और अपने आसपास की घटनाओं पर लिखते हुए शाश्वत को हमेशा सामने रखा जाए।'

एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के पूर्व अध्यक्ष तथा 'आउटलुक' के पूर्व संपादक एवं नेशनल इंडिया के वर्तमान संपादक आलोक मेहता भी 'समकालीन संपादकीय' की शुभाशंसा में कहते हैं-'वस्तुतः सिद्धेश्वर के हर संपादकीय में अपने कल के दहाड़ते-ललकारते सच हैं और इस दौर में पत्रकारिता से जुड़े सिद्धेश्वर को रचनाकार बड़े भारी तनावों-संघर्षो से गुजरा है जिसमें समय, समाज, राजनीति और संस्कृति के अनुभव-सत्य बड़ी जीवंतता के साथ धड़के हैं। कठिन से कठिन आर्थिक संकट की घड़ी में भी इन्होंने अभाव, अपमान, पीड़ा और विवशता के सामने कभी घुटने नहीं टेके। अपने वर्तमान और भविष्य को सिद्धेश्वर जी ने स्वयं अपने कठोर कर्म से गढ़ने-संवारने का काम किया। इस अवधि में हर असंभव को संभव बनाने

के लिए जैसे वे कृत संकल्पित रहे।''

आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व सिद्धेश्वर जी ने 'विचार दृष्टि' पत्रिका का प्रकाशन दिल्ली से प्रारंभ किया था और इसके माध्यम से अपने निर्भीक विचारों से सैकड़ों प्रशंसकों के दिल में इन्होंने खुद के लिए जगह बना ली है। इस पत्रिका ने अपने नाम की सार्थकता सिद्ध करते हुए विचार और दृष्टि दोनों क्षेत्रों में खास तौर पर राजनीति के भ्रष्टाचार के खिलाफ लोगों को आवाज उठाने में निर्भीक होकर सहायता की है। इससे प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जनता के मानसिक विकास में जो सहायता मिल रही है, वह वाकई सराहनीय है।

राजनीति की समझ और शक्ति को अपने विचार और काम से कोसों दूर जाने वाले सिद्धेश्वर जी राजनीतिक वर्चस्व की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दलों के साथ कुछ क्षेत्रीय दलों के भीतर चलने वाली खींचतान में पार्टी से ज्यादा अलग-अलग हित-समूहों के लोकतांत्रिक संघर्ष का एक प्लेटफॉर्म बनते जा रहा है जिससे राष्ट्रीय हित को क्षति पहुँचती है। दूसरी बात यह कि भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका मौजूदा दौर में और अधिक होती जा रही है जिससे समाज व देश को नुकसान पहुँच रहा है और वे इसे भारतीय लोकतंत्र के पिछड़ेपन की पहचान भी मानते हैं।

इस दृष्टि से देखा जाए, तो अपनी पीढ़ी में सबसे अलग छवि रखने वाले सिद्धेश्वर जी अपने कहने की अलग शैली और सच को सच एवं गलत को गलत कहने के कारण अधिक जाने जाते हैं। अपनी रचनाओं और अभिव्यक्तियों में वे सीधे-सीधे राजनीतिक और सामाजिक सवालों से भी टकराते दिखते हैं। यह एक सामाजिक कार्यकर्ता और रचनाकार का विस्तार ही है। दुष्ट प्रकृतिवालों पर इनकी रचनाओं में खुला और सीधा आक्रमण होता है। यही कारण है कि स्पष्टवादिता और ईमानदारी इनका सबसे बड़ा दुश्मन है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि एक संसदीय लोकतंत्र में राजनीति देश के जीवन को प्रभावित करती है और उसकी नीतियाँ भारत की दिशा निर्धारित करती हैं। सिद्धेश्वर जी ने इसी दृष्टि से भारतीय राजनीति को देखते हुए यह महसूस किया है कि विगत दो-ढाई दशकों से राजनीतिक दलों में न तो आंतरिक लोकतंत्र दिखता है और न वे जन-भावनाओं का ख्याल करते हैं। कुछ राजनीतिक दलों का आधार जहाँ जातियाँ हैं, वहीं कुछ

दल परिवार के इर्द-गिर्द सिमटी हुई हैं। स्वाभाविक है इससे राजनीति की गुणवत्ता में तेजी से गिरावट आ गई है जिसके दुष्परिणामस्वरूप देश में अव्यवस्था और भ्रष्टाचार का बोलबाला है और जनता में बेचैनी है। इसी के मद्देनजर सिद्धेश्वर जी जनमत पर निरंतर जोर दे रहे हैं और जनता को जागरूक बनाने की बात करते हैं, क्योंकि वही राजनीति की दिशा बदल सकता है। देश की मौजूदा राजनीति नीतियों एवं सिद्धांतों से विचलित होकर व्यक्तियों की ओर केंद्रित हो रही है और फलने-फूलने की सुविधाएँ प्राप्त कर अराजनीतिक होती जा रही है। यही कारण है कि जनाक्रोश बढ़ रहा है। राजनेताओं में बढ़ती सामंती प्रवृत्ति और उसके बेहद खतरनाक नतीजे पर सिद्धेश्वर जी ने 'विचार दृष्टि' के जुलाई-सितंबर 2006 में प्रकाशित 28वें अंक के संपादकीय में जो टिप्पणी की है वह काबिलेगौर है। वे लिखते हैं-'मौजूदा लोकतंत्र में सत्ता की कुर्सी पर बैठे राजनेताओं में सामंती प्रवृत्ति पनप रही है। लोकतंत्र में सत्ता के प्रति सामंती प्रवृत्ति बेहद खतरनाक और भयानक सिद्ध होती है। कारण कि सामंती मनोवृत्ति के शासकों की चारित्रिक विशिष्टता यह रहती है कि वे अपने-अपने देश की जनता को सिर्फ 'प्रजा' ही बनाए रखते हैं, उनमें लोकतांत्रिक चेतना व संस्कार पैदा नहीं होने देते और उन्हें जाति, संप्रदाय, नस्ल, रंग, वर्ग, वर्ण, भाषा तथा क्षेत्र आदि के जरिए उलझाए रखकर शासकोश्रित बनाए रखते हैं। इसी वजह से परिवारवाद या खानदानवाद पनपता है। भारत में केंद्र से लेकर राज्यों तक पनपे परिवारवाद के, नए सत्ता संस्करण इसी का प्रतिफल है। इस सामंती मानसिकता से मुक्त होने के लिए यहाँ की जनता में चेतना लाने की जरूरत को यहाँ के सजग नागरिक अपने दायित्व से इंकार नहीं कर सकते।'

ऐसी विषम परिस्थिति में सिद्धेश्वर जी जनसंग्राम व जनांदोलन से ही सबका हित होने की बात करते हैं जिसके लिए यहाँ के नागरिकों को उनके दायित्व का अहसास कराते हुए लोगों को तैयार करने की सलाह देते हैं। यही नहीं प्रतिभाशाली युवकों में आकर्षित करने वाले परिवर्तन में भी तेजस्विता लाने के प्रयास को जहाँ वे जेहाद् वक्त का तक़ाज़ा मानते हैं, वहीं लोकतंत्र का अभिष्ट भी। जनता में जागरूकता जगाने की जरूरत के संदर्भ में वे पुनः 'विचार दृष्टि' के 30वें अंक में लिखते हैं कि 'देश की वर्तमान राजनीतिक तथा विकास प्रक्रियाओं पर नजर डालने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे सामूहिक पतन के लिए उत्प्रेरक का काम कर रही हैं। आज समाज परिवर्तन तथा विकास प्रक्रिया के निग्रह के स्थान पर शक्ति-संचय, नैतिकता

की जगह धन-संपत्ति का अर्जन, मानवता के स्थान पर ज्ञानार्जन, सबकी भागीदारी और सहभागिता की जगह जनोत्तेजन को अधिक महत्व देता हैं अतः उसे सामूहिक विवेक के अभाव में भारी कीमत चुकानी पड़ती है। दिन-ब-दिन बढ़ती हिंसा, बलात्कार, अत्याचार, दुराचार, लूट-डकैती, अपहरण, रंगदारी और अशांति की घटनाएँ इस बात का संकेत है कि हमारे नैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक मूल्य-मर्यादाएँ ध्वस्त हो रही हैं। परस्पर विश्वास, व्यक्ति-व्यक्ति तथा समुदाय-समुदाय के बीच परस्पर सौहार्द एवं एक दूसरे की चिंता का अभाव इस बात का सूचक है कि सहिष्णुता, न्याय, नैतिकता और सामाजिक समरसता का जो सुपरिचित मार्ग हमारे पूर्वजों, नेताओं, मनीषियों, समाज-सुधारकों एवं चिंतक-विचारकों ने दिखाया था, उसे आज के अधिकांश नेताओं तथा देशवासियों ने त्याग दिया है।' इसी क्रम में सामान्य नागरिक की दयनीय स्थिति पर अपनी चिंता व्यक्त करे हुए सिद्धेश्वर जी पुनः कहते हैं कि 'आमजनता के मन पर अमीर-गरीब के बीच बढ़ती खाई, जनसंख्या का तीव्र गति से बढ़ना और जातिभेद के कारण इन दवाबों का कम करने की प्रक्रिया में एक आत्म-केंद्रित समाज उभरकर आया है। यह समाज केवल अपना संकीर्ण स्वार्थ, अपनी प्रगति तथा अपनी महत्वाकांक्षाओं की परवाह करता है। यह अपवाद नहीं नियम बन गया है, जिसके भारी बोझ से सामान्य नागरिक दबे जा रहे हैं।'

सिद्धेश्वर जी की उपर्युक्त टिप्पणी से यह स्पष्ट है कि स्वतंत्रता सेनानियों के सपनों को साकार करने की बात करना एक कल्पना मात्र है। उन्होंने तो यहाँ तक कह डाला कि 'आज देश की राजनीतिक दलों, विचारधाराओं, कार्यक्रमों और आश्वासनों की बहुलता के बावजूद कोई ऐसा जनप्रतिनिधि खोजना कठिन है, जो जनता में कोई राजनीतिक भरोसा जगा सके या भविष्य में परिवर्तन की तस्वीर दिखा सके। लोकतंत्र के मुखौटे में सत्ता हासिल करने के तमाम कर्म-कुकर्म धड़ल्ले से किए जा रहे हैं। स्वार्थ की राजनीति जिस ढंग से बढ़ रही है वह चिंतनीय ही नहीं, दुर्भाग्यपूर्ण भी है।'

उन्होंने सत्ता पर विराजमान नीति-नियंताओं के लिए इसे लज्जा की बात बताई कि जिस हेलीकॉप्टर को महँगा होने की वजह से अमेरिका सरीखे आर्थिक रूप से समृद्ध देश ने उसे खरीदने से इन्कार कर दिया उन हेलीकॉप्टरों को इटली के दलालों को घूस देकर हमारे देश के नीति-नियंताओं ने खरीदने में कोई शर्म-संकोच नहीं किया। यही नहीं भारतीय संसद पर विगत 13 दिसंबर, 2001 को हुए आतंकी हमले की साजिश में शामिल

अफजल गुरु को 2002 में विशेष अदालत द्वारा फांसी की सजा सुनाने और उस पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपनी मुहर लगाए जाने के बाद जब भारत के राष्ट्रपति ने उसकी पत्नी की दया याचिका को खारिज कर फांसी को बरकरार रखा और अफजल को फांसी दे दी गई, तब कश्मीर घाटी में हिंसा और विरोध प्रदर्शन आखिर क्या रेखांकित करता है? क्या इससे भारत को रक्तरंजित करने में जुटे पाक पोषित जिहादियों का मनोबल नहीं बढ़ेगा और यदि उनका मनोबल बढ़ रहा है, तो क्या इस देश के सत्ता अनुष्ठान की नीतियाँ जिम्मेदार नहीं हैं? सिद्धेश्वर जी ऐसे कारनामों को वोट बैंक के कारण उनकी मध्यकालीन मानसिकता को संरक्षण करने वाला बताते हैं। वे अफजल गुरु को फांसी देना देश में कानून का राज बहाल करने के लिए की गई आवश्यक कार्रवाई कहते हैं।

जिस देश की एक चौथाई से ज्यादा आबादी को दोनों वक्त का खाना नसीब नहीं होता है और जहाँ प्रतिवर्ष लाखों बच्चें और महिलाएँ बिना चिकित्सा के दम तोड़ देते हों उस देश के चंद लोगों की काली कमाई का तकरीबन 25 लाख करोड़ रुपए से अधिक धन विदेशी बैंकों की शोभा बढ़ा रही है। सरकार के गले की हड्डी बने इस मुद्दे की धार को कम करने की कोशिश भी सत्ता पर आसीन राजनेता नहीं कर पा रहे हैं। एक अध्ययन के अनुसार यदि यह सारे काले धन की वापसी हो जाए, तो इस देश के प्रत्येक नागरिक और उद्योगों को एक साल तक कर देने की जरूरत नहीं पड़ेगी। देश की इस धन-संपदा को जोंक की तरह चूस कर विदेशी बैंकों की शोभा बढ़ाने के इस खेल में सिद्धेश्वर जी राजनेताओं से लेकर बड़े उद्योगपति का शामिल होना बताते हैं। वे यह भी कहते हैं कि इस कालेधन की वापसी करना तो दूर, फिलहाल सरकार ऐसे लोगों के नाम भी उजागर करने का जोखिम उठाना नहीं चाहती है।

राजनीति के तेजी से बदलते स्वरूप और मतलब परस्त राजनीति एवं गुटबंदी से घातक रूप से प्रभावित होने की वजह से मूल्यहीनता बढ़ी है और सिद्धेश्वर जी ऐसा मानते हैं कि इसके लिए पूरी व्यवस्था कठघरे में है। उनके मुताबिक जनता में केवल आक्रोश काफी नहीं है, राजनीतिक दलों और उसके नेताओं की पहचान भी जरूरी है, ताकि संसद एवं विधानमंडलों में जाने से आपराधिक एवं धनपशुओं को रोका जा सके।

अपने रचनात्मक जीवन में सिद्धेश्वर जी राजनीति के अनेक चटक एवं धुमिल रंगों को देखा है. और देख रहे हैं। वे ऐसा महसूस करते हैं कि

राख के नीचे दबी चिनगारियों से व्यक्ति कब तक और कहाँ तक सावधान रह सकता है। इनके उत्तर तो उन्हें स्वयं खोजने ही होंगे। माना कि समस्याएँ अनेक हैं, पर उनसे पार पाने के रास्ते तो सीमित हैं। इन सीमाओं में भी अगर साहित्यकार, पत्रकार, प्रबुद्धजन तथा सजग नागरिकों की रोशनी की एक हल्की-सी किरण दिखाई दे जाए, तो कुछ दूर तक तो रास्ता साफ हो सकता है, सिद्धेश्वर जी की यही समझ है। कुछ इसी भावना से वे मौलाना अबुल कलाम आजाद, देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद, बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, लौह पुरुष सरदार पटेल, सुब्रह्मण्य भारती तथा अमर कथा शिल्पी जैसे महापुरुषों की जयंतियाँ केवल उनके व्यक्तिगत जीवन को आधार बनाकर राष्ट्रीय विचार मंच की ओर से नहीं मनाते, बल्कि उनके माध्यम से किसी सार्वजनिक भावना का प्रचार-प्रसार तथा प्रोत्साहन के लिए करते हैं। वर्ष 1996 में लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल की 121वीं जयंती पर प्रकाशित स्मारिका के संपादकीय में सिद्धेश्वर जी समय रहते सार्वजनिक जीवन में निरंतर लग रहे घुन से उबरने की चेतावनी इस तरह देते हैं-'इसलिए देश की जनता के सामने सबसे बड़ा सवाल सार्वजनिक जीवन में निरंतर लग रहे घुन से उबरने का है। ऐसी स्थिति में जनता की जागरूकता तथा बुद्धिजीवियों का सक्रिय योगदान अत्यंत आवश्यक है। यदि समय रहते इस समस्या का समाधान नहीं किया गया, तो भारत का शासन तंत्र अपराधियों के चंगुल में जाने से कोई रोक नहीं सकता और तब वर्तमान की तरह भविष्य भी गर्त में डूब जाएगा।' सिद्धेश्वर जी एक शायर की शेर की निम्न पंक्तियों को प्रस्तुत कर आज के जुल्म व सितम को अपने भावों में इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

'जब जुल्म का सैलाब रवां होता है
जब कोई गरीब नहा सवां होता है।
मजलूम की गरदन पे छूरी चलती है जब
या रब उस वक्त, तू कहाँ होता है?'

कोई भी रचनाकार न केवल अपने कृतित्व से बल्कि साहित्यकारों व पत्रकारों सहित प्रबुद्धजनों से अपनी संगत-सोहबत के लिए भी जाना जाता है। सिद्धेश्वर जी एक ऐसे रचनाकार हैं जो अपने कृतित्व से तो जाने ही जाते हैं उच्च कोटि के साहित्यकार तथा प्रभाष जोशी एवं आलोक मेहता जैसे यशस्वी पत्रकारों का भी सान्निध्य इन्हें मिला है जिसका प्रभाव इनके लेखन पर काफी पड़ा। आखिर तभी तो इनका पूरा निबंध उनके वैदुष्य की आभा

से मंडित है जिसे वानगी के रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत किया गया। विद्वत्जनों के सान्निध्य में रहते हुए सिद्धेश्वर जी ने हिंदी साहित्य के गद्य में ही नहीं, बल्कि काव्य में भी दक्षता हासिल की है। प्रकाशनाधीन पुस्तक 'हमें अलविदा ना कहें' संस्मरणात्मक निबंध संग्रह के साथ-साथ अनेक लेखकों, कवियों, कलाकारों, पत्रकारों, राजनीतिज्ञों तथा समाजसेवियों के व्यक्तित्व और उनके सान्निध्य के अनेक रोचक प्रसंगों, संस्मरणों से भरी हैं। अपने समकालीन बहुतेरे साहित्यकारों के व्यक्तित्व पर भी इन्होंने डूबकर लिखा है, क्योंकि इनमें दृढ़ता के साथ-साथ सहृदयता भी विद्यमान है और इनके भीतर ज्ञानार्जन की अपार लालसा ने उन्हें यश के शिखर पर पहुँचाया। मेरा प्रयास रहा है कि उनके व्यक्तित्व के बहुत बहिरंग व अंतरंग पक्ष को उद्घाटित करते हुए उनके विचारों, अनुभूतियों व संस्मरणों के स्पर्श के साथ उनके साहित्यिक अवदान व रचनाशीलता के बहुरंगी आयामों को प्रकाश में लाया जाए।

इस प्रयास में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय तो खैर आप पाठक ही कर पाएँगे, किंतु इतना जरूर है कि इसके माध्यम से सिद्धेश्वर जी के साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक सरोकारों की सार्थक खोज कर बौद्धिक संवाद स्थापित करने में मैंने एक कदम आगे बढ़ाया है ठीक उसी प्रकार जैसे पिकासो ने अपनी कला में अनेक पुरानी कलाकृतियों से ऐसा संवाद किया है।

दिलचस्प और गौर करने की बात यह है कि सिद्धेश्वर जी संपूर्ण साहित्य-साधना और चिंतन, भाषा, सरोकार, स्मृतियाँ और सपने इनकी कृतियों में देखे जा सकते हैं और इनकी संवेदनशीलता मानसिकता की छननी में छन कर पाठकों के समक्ष आती है। ऐसे वक्त मुझे कवि प्रेम रंजन 'अनिमेष' की दो पंक्तियाँ यांद आ रही हैं जो सिद्धेश्वर जी के सपने के संदर्भ में सटीक बैठती हैं-

'हों भरी पलकें रहे दिल में हरा कुछ हरदम
इनके चलते ही तो सपनों की फसल जिंदा है।'

जब राजनीतिक दलों और उसके नेताओं पर भ्रष्टाचार के आरोप की बात चल ही रही है, तो लगे हाथ हेलीकॉप्टर सौदे में घिरी सरकार पर चर्चा करना और सिद्धेश्वर जी की इस पर प्रतिक्रिया से पाठकों को अवगत कराना लाजिमी होगा। अभी तक 2जी स्पेक्ट्रम, राष्ट्रमंडल खेल तथा कोयला घोटालों के बादल छटे भी नहीं थे कि विशिष्ट जनों की सुरक्षा देने के उद्येश्य से

कुल तेरह ऐसे हेलीकॉप्टर की खरीद के सौदे में सरकार घिरी नजर आई, जो 18 फीट की ऊँचाई तक उड़ सकने और मिसाइलों की मार से भी सुरक्षित रहे। उल्लेखनीय है कि ये हेलीकॉप्टर दुनिया में सबसे महंगे हैं जिसे अमेरिका जैसा सर्वशक्तिशाली देश के राष्ट्रपति ओबामा ने भी इन्हें खरीदने से इनकार कर दिया था, क्योंकि वे उन्हें बहुत महंगे लग रहे थे। इटली की अगस्टा वेस्टलैंड कंपनी ने 13 हेलीकॉप्टर के लिए 3600 करोड़ रुपए का सौदा किया था जबकि आज दुनिया के बाजार में एक अच्छे लड़ाकू वायुयान की कीमत भी सौ से सवा सौ करोड़ रुपए हैं। इसी हेलीकॉप्टर की खरीद के सौदे में कहा जाता है कि 362 करोड़ रुपए की दलाली यानी बतौर घूस एक ऐसे दलाल को दिया गया जो पूर्व वायु सेनाध्यक्ष चीफ एयर मार्शल एस.पी.त्यागी के सगे संबंधी बताए जाते हैं। देश की सशस्त्र सेनाओं के मनोबल की दृष्टि से यह खबर अच्छी नहीं है। अभी मात्र एक साल पूर्व थल सेनाध्यक्ष जेनरल बी.के.सिंह ने सौदे की दलाली में कार्यरत सैनिक अधिकारियों के नाम उजागर किये थे। उनके एक सैनिक अधिकारी ने यहाँ तक कह दिया था कि आपके पहले भी घूस लेते थे आपके बाद भी लेते रहेंगे। आनन–फानन में प्रतिरक्षा मंत्री, जिनकी पहचान एक ईमानदार एवं बेदाग राजनीतिज्ञ की है, ने इस घोटाले की जाँच का जिम्मा उस सी.बी.आई को दे रखा है जिसपर आए दिन ऊँगलियाँ उठती रही हैं, इसलिए लोगों का विश्वास उस पर से उठता जा रहा है, क्योंकि न तो आज तक बोफोर्स तोप घोटाले की संतोषजनक जाँच हुई और न पनडुब्बी खरीद घोटाले का। अर्थात उसने हर जाँच में लीपा–पोती की है इसलिए उसे निष्पक्ष जाँच एजेंसी नहीं कहा जा सकता।

सिद्धेश्वर जी ने इस पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए कहा कि देश में चारों तरफ फैले भ्रष्टाचार का यह रोग राजनेताओं अधिकारियों और अपराधियों की सांठगांठ का नतीजा है जिसे तोड़े जाने की जरूरत है अन्यथा यह हमारे समूचे ढाँचे को घून की तरह खोखला कर देगा और भ्रष्ट राजनेताओं पर कड़ी कार्रवाई करने की अगर इच्छाशक्ति नहीं दिखाई गई, तो भ्रष्टाचार का यह दीमक पूरी व्यवस्था को नष्ट कर देगा।

सिद्धेश्वर जी की इस मान्यता को इनकार नहीं किया जा सकता कि समाज में फैल रहा भ्रष्टाचार और अराजकता प्रशासन की कमजोरी और शासन की लचर नीतियों के चलते ही कायम है। 2जी स्पेक्ट्रम, राष्ट्रमंडल खेल, आदर्श सोसाइटी से जुड़े घोटाले हों या मध्य प्रदेश के बिजली विभाग

के एक लिपिक के पास से छापेमारी में 40 करोड़ की संपत्ति का मिलना हो अथवा मधुकोड़ा एवं जगमोहन रेड्डी के द्वारा हजारों करोड़ रुपए की अकूत संपति का मामला हो सभी आम जनता की गाढ़ी कमाई ही तो है जिसे राजनेता और अधिकारी बेतहासा लूट रहे हैं। आपने देखा नहीं नगालैंड में ऐन चुनाव के वक्त वहाँ के गृहमंत्री तथा कोरिढिंगा के उम्मीदवार इम्कोंगएल इमचेन के वाहन से एक करोड़ बीस लाख रुपए नकद और असलहों का जखीरा बरामद होना इस बात का द्योतक है कि भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में उम्मीदवारों के आचरण में भ्रष्टाचार का शामिल होने की स्थिति के लिए राजनीतिक दल ही तो जिम्मेदार हैं जो चुनाव जीतने के लिए तरह-तरह के हथकंडे आजमाते हैं और अवैध धन का इस्तेमाल करते हैं। भ्रष्ट तरीके से अर्जित अकूत संपत्ति तथा एक के बाद एक अनगिनत घपले-घोटालों की वजह से सत्ता पर विराजमान नेता न तो देश में मुँह दिखाने लायक रह गए हैं और न दुनिया में उनकी साख बच पा रही है। भ्रष्टाचार और घपले-घोटालों की भयावहता, सामान्यजन की पीड़ा और वक्त की नजाकत को दृष्टि में रखकर यदि शीघ्र ही कोई कारगर निर्णय नहीं लिया गया तो संविधान और समाज का बेड़ा गर्क हो जाएगा, ऐसा मानना है सिद्धेश्वर जी का।

सिद्धेश्वर जी का कहना है कि अगर किसी राज्य के गृहमंत्री जैसे अहम पद पर पैसों, हथियारों और शराब का चुनाव में इस्तेमाल करने वाले ऐसे 'चरित्र' के नेता बैठे हों, तो राजनीति में ईमानदारी और स्वच्छता की उम्मीद किससे की जा सकती है। उन्होंने पूरे देश के राजनीतिक परिदृश्य पर अपनी टिप्पणी देते हुए कहा कि हरियाणा के निर्दलीय विधायकों के समर्थन के एवज़ में गोपाल कांडा को गृह राज्यमंत्री के पद से उस वक्त नवाजा गया था जब कांडा पर तकरीबन दर्जन भर अपराध के मामले चल रहे थे। फिलहाल गोपाल कांडा गीतिका हत्याकांड में जेल की सलाखों के पीछे हैं।

दरअसल, लोकाचार और व्यवस्था के बीच एक बुनियादी द्वंद्व ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को कमजोर कर दिया है। वर्तमान संदर्भ में भ्रष्टाचार सत्ता से इतना जुड़ गया है कि हत्यारे नेताओं ने राजनीतिक नैतिकता के प्रति नकारात्मक रवैया अपना लिया है। इसकी प्रतिक्रिया में सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि राजनेताओं को यह सोचने-समझने के लिए मजबूर किया जाना चाहिए कि शासन करने के लाइसेंस का मतलब भ्रष्ट

होने का लाइसेंस नहीं है? वे पुनः कहते हैं कि आजादी के साढ़े छह दशक के लोकतांत्रिक शासन ने नेताओं और लोगों को भ्रष्टाचार के प्रति इतना संवेदनहीन बना दिया है कि वे इसके साथ जीना सीख गए हैं, लेकिन इसे सहन करते जाने से यह खतरनाक रोग बढ़ेगा ही जो अंततः राष्ट्र को ही नष्ट कर सकता है। ऐसे वक्त दुष्यंत कुमार का यह शेर कहकर वह खुद को परिवर्तन का मनवाते हैं–

'इस तालाब का पानी बदल दो
इसके कमल सब कुम्हलाने लगे हैं।'

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि हमारे राजनेता जनभावनाओं की इच्छा व चाहत का प्रतिनिधित्व करने में विफल रहे हैं। यही कारण है कि भारत आज अराजकता के दौर में पहुँच गया है, क्योंकि आज यहाँ व्यक्ति से लेकर राष्ट्र सभी असंतोष से घिरे हैं। आखिर आदमी जीवन मूल्यों को खोकर कब तक संतोष धारण करता रहेगा। सामरिक मामलों के विशेषज्ञ ब्रह्माचेलानी तो यहाँ तक मानते हैं कि भारत का सुरक्षा का सबसे बड़ा खतरा चीन या आतंकवाद से नहीं, संस्थागत भ्रष्टाचार से है, जो भारत को खोखला कर रहा है। भारत उन देशों में शीर्ष पर है जिनकी चुराई सुई संपदा स्विस बैंकों में जमा है। उनका तो यह भी कहना है कि रक्षा सौदों में घुसखोरी देश के खिलाफ युद्ध अपराध सरीखी है। जो रक्षा सौदों में रिश्वत लेते हैं वे अफजल गुरु से भी अधिक घृणित हैं। फिर भी रक्षा सौदा में घूसखोरी पर आज तक किसी भी राजनेता को सजा देने की बात तो दूर, दोषी तक नहीं ठहराया जा सका है।

वस्तुतः अलग-अलग रूपों में आज पूरे देश में जो एक कुत्सित राजनीतिक शैली को बढ़ावा दे रही है उसका और कारण चाहे जो हो, पर राजनीतिक दलों और उसके नेताओं के बीच परस्पर घृणा और नफरत के बूते सियासी बढ़त बनाने की कोशिश भी एक प्रमुख कारण है।

भारत के राजनीतिक दलों में व्यक्तिवादी राजनीति की जड़ें काफी गहरी होती जा रही हैं जिसके परिणामस्वरूप चापलूसों की पूछ बढ़ी और जनाधारवाले नेताओं को कमजोर करने के साथ ही हाशिए पर डालने की लगातार कोशिश हो रही है। यही कारण है कि पार्टियों में आंतरिक लोकतंत्र का लोप होता जा रहा है और सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यकर्ता सिर्फ सत्ता-पूजक बनते जा रहे हैं। सिद्धेश्वर जी का यह भी कहना है कि गुलाम मानस सदैव सत्ता के चरणों पर नतमस्तक रहता है। राजनीति में आज यही

बीज बोया जा रहा है। हम आदतन या संस्कारवश चापूलस, चारण और रीढ़हीन होते जा रहे हैं। पता नहीं, आखिर हम जयचंद और मीरजाफर संस्कृति की तरह पराजय, पराधीनता और गुलामी की नींव क्यों रखते जा रहे हैं। यही कारण है कि हाल के वर्षों में कोई बड़ा आंदोलन खड़ा नहीं हो सका और सार्वजनिक जीवन में चाहे अन्ना का आंदोलन हो या अरविंद केजरीवाल अथवा बाबा रामदेव का आंदोलन, वह मुकाम तक नहीं पहुँच पा रहा है। दरअसल, बहत्तर वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते अनुभवों ने सिद्धेश्वर जी को काफी कुछ सीखा दिया है। इन वर्षों में इन्हें महसूस हुआ कि यदि समाज व देश की समस्याओं का मुकाबला करना है, तो सरकार और राजनीतिक दलों के भरोसे हाथ पर हाथ धरे आम नागरिक को बैठे रहने से नहीं, बल्कि एक कारगर आंदोलन छेड़ना समय का तकाजा है।

जहाँ तक भारत में राजनीतिक संस्कृति की बात हैं 'प्रभात खबर' के प्रधान संपादक हरिवंश जी के समय संवाद स्तंभ के तहत पटना संस्करण के दिनांक 24 फरवरी, 2013 को हमारा असल राष्ट्रीय चरित्र! 'शीर्षक से प्रकाशित अभिमत का उल्लेख करते हुए सिद्धेश्वर जी ने बताया कि फरवरी के दूसरे सप्ताह में अमेरिका में कैंपेन डिसक्लोजर रिपोर्ट (चुनाव प्रचार खर्च विवरण) सार्वजनिक हुई। राष्ट्रपति के 2008 के चुनाव में हिलेरी क्लिंटन राष्ट्रपति पद की उम्मीदवार थीं और पार्टी के अंदर उनका मुकाबला बराक ओबामा से था, मगर ओबामा के राष्ट्रपति बनने पर हिलेरी को उन्होंने अपना विदेश मंत्री बनाया। बाद में ओबामा को जब यह पता चला कि राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने के लिए हिलेरी क्लिंटन ने बाजार से जो कर्जा लिया था वह बढ़कर 2,50,000 डॉलर यानी 1.36 करोड़ रुपए हो गया है। ओबामा ने अपनी टीम से हिलेरी क्लिंटन के लिए चंदा एकत्र कराकर चुपचाप जमा करा दिया और हिलेरी तब जाकर कर्ज से मुक्त हो गई।

कोई देश अपने देशवासियों के चरित्र संकल्प और उसूल से महान बनता है। ओबामा के द्वारा हिलेरी के कर्ज के भुगतान के लिए चंदा एकत्रित करना महज एक घटना नहीं, बल्कि राजनीतिक संस्कृति का प्रतिबिंब और राष्ट्रीय चरित्र की झलक है। अपने विरोधियों के प्रति उदारता, सदाशयता, सम्मान और आदर जिस मूल्क का चरित्र होता है, वहीं सामान्य जन जीवन में इस तरह की झलक मिलती है; वहीं आम नागरिक भी स्वाभिमानी, देश प्रेमी और उसूलों के साथ जीता है। क्या भारतीय राजनीति में इस तरह के चरित्र की झलक की कल्पना की जा सकती है? ऐसा नहीं कि हमारे देश

में ऐसी संस्कृति नहीं रही हैं। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में आजादी के लिए लड़ने वाले हिंसक-अहिंसक क्रांतिवीरों के धवल चरित्र हमारी राष्ट्रीय पूंजी रही है, लेकिन मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति में अपने विरोध के प्रति न तो उदारता है और न सम्मान व आदर का भाव रह गया है।

यह कहना बिल्कुल सच है कि शासन चरित्र से चलता है, प्रताप से दौड़ता है और प्रतिबद्धता से आभा पाता है। हमारे राष्ट्रीय जीवन का कोई भी क्षेत्र आज बचा नहीं दिखता जिसमें चरित्र का तेज हो, आदर्श की आभा हो और देश के लिए कुछ कर गुजरने की तमन्ना हो। राजनीति से लेकर नौकरशाह तक में सैकड़ों लोग आज भी ईमानदार लोग हैं, पर राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा आज ऐसे लोग तय नहीं कर रहे हैं, क्योंकि वे हाशिए पर पड़े हैं।

निचली अदालत द्वारा दोषी माने गए सांसदों एवं विधायकों की सदस्यता समाप्त करने वाली याचिका पर सुनवाई के दौरान उच्चतम न्यायालय में सरकार द्वारा पेश हलफनामे पर सरकार और राजनीतिक दलों की मंशा पर सिद्धेश्वर जी अपनी चिंता जाहिर करते हुए कहते हैं कि उनकी मंशा संदिग्ध है, क्योंकि सरकार मानती है कि सदन को सुचारू रूप से चलाने के लिए दागी-दोषी जन प्रतिनिधियों को बनाए रखना जरूरी है। सरकार की इस दलील को वे लज्जाजनक और निंदनीय करार देते हुए कहते हैं कि एक जनहित याचिका पर सुनवाई के दौरान उच्चतम न्यायालय ने भी निचली अदालत द्वारा दोषी करार दिए गए सदस्यों की अयोग्यता की घोषणा को लंबित रखने के सदन के अधिकार पर सवाल उठाते हुए इसे संवैधानिक प्रावधानों के प्रतिकूल बताया है। कोर्ट ने तो यहाँ तक कह दिया कि हम यह कल्पना नहीं कर सकते कि सदन चलाने के लिए संसद को दोषी सदस्यों की जरूरत है। उनका मानना है कि वैसे भी जब किसी अदालत में दोष सिद्ध व्यक्ति चुनाव नहीं लड़ सकता, तो दोषी करार दिया गया जनप्रतिनिधि अपने पद पर कैसे बना रह सकता है। यह विरोधाभाष असंवैधानिक है वे पुन: कहते हैं कि जब देश में आम आदमी के लिए प्रावधान है तो जनप्रतिनिधियों के लिए विशेष कानून कैसे हो सकता है?

जहाँ तक देश की सुरक्षा व्यवस्था की बात है, जो सिद्धेश्वर जी निश्चित रूप से इसे तुष्टीकरण की घिनौनी राजनीति का हिस्सा मानते हैं। राष्ट्र की सुरक्षा के प्रति सदैव सरकार का रवैया ढुलमुल रहा है। वे आतंकवाद के खिलाफ देश के सभी लोगों के एकजुट होकर लड़ने की बात कहते हैं, क्योंकि आतंकियों को कोई धैर्य नहीं होता और बम मजहब

देखकर जान नहीं लेता। इसलिए वक्त का तकाजा है कि राजनीतिक स्वार्थ को भूलकर और वोट बैंक की चिंता छोड़कर दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ आतंकवाद का सामना किया जाए। मुश्किल यह है कि आज जिस तेजी से राजनेताओं पर से विश्वास उठता चला जा रहा है उसका लाभ हमेशा अराजक तत्वों को मिलता है जबकि नुकसान आम आदमी को ही उठाना पड़ता है। दरअसल, इस देश की आम जनता का आत्मविश्वास और राजनेताओं पर से भरोसा गंदी राजनीति ने बहुत तोड़ा है, क्योंकि सरकार द्वारा आतंकवादियों और उन्हें शह देने वालों के खिलाफ सख्ती नहीं बरती जा रही है। आपने देखा नहीं कसाव और अफजल गुरु जैसे खुंखार अपराधियों के खिलाफ उच्चतम न्यायालय से सजा सुनिश्चित कर दिए जाने के बावजूद उन्हें फांसी देने में पहले तो काफी देर लगी और उसके बाद भी इस निर्णय पर सवाल उठाए गए। इसे लोकतंत्र की मूल अवधारणा का दुरुपयोग नहीं तो और क्या कहा जाएगा? सिद्धेश्वर जी अंततः मानते हैं कि जबतक राजनेता वोट बैंक के लिए काले को सफेद और सफेद को काला कहते रहेंगे तबतक अराजकता और आतंकवाद पर काबू पाना संभव नहीं दिखता।

अपने व्यंग्य लहजे में सिद्धेश्वर जी राजनेताओं के कारनामें पर अपने भावों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि राजनेताओं की आदत बन गई है आम आदमी को सपने दिखाना और आश्वासन देना। वे सोंचते हैं कि उनके झूठे आश्वासनों से ही लोगों का पेट भर जाएगा और उनके सपने को चार चाँद लग जाएँगे। देश की आजादी के बाद यह उम्मीद जगी थी कि कम-से-कम रोटी, कपड़ा और मकान जैसी उनकी बुनियादी जरूरतें पूरी होंगी, पर आजादी के 65 वर्षो के बाद भी न तो उनकी बुनियादी जरूरतें पूरी हो पाई और न सामान्य जनमानस के संघर्ष भरे दिन खत्म हुए। इंतजार का यह सिलसिला जारी है। देश का बुद्धिजीवी वर्ग मानता है कि देश के नीति नियंता जब वोटों की राजनीति के प्रेम से ऊपर उठकर सामान्य जन की जरूरतों के बारे में सोचेंगे, तो शायद उनके सपने पूरे होंगे।

इस प्रकार हम पाते हैं कि सिद्धेश्वर जी की चिंता के केंद्र में भारतीय राजनीति के साथ-साथ भारतीय लोकतंत्र के सामने मौजूद चुनौतियाँ हैं, लेकिन अच्छी बात यह है कि वे सिर्फ समस्याओं तक सीमित नहीं रहते, बल्कि उससे जूझने का वैचारिक साहस भी करते हैं। वे भारतीय राजनीति में वंशवाद की परंपरा और राजनीतिक दलों में राजतंत्र की तरह किसी राजनेता के एकाधिकार का मौन स्वीकृति देना चिंताजनक है।

ऐसे समय में जब राजसत्ता और राजनेता कुंभनदास के शब्दों को याद कर मनमर्जी के मुताबिक इस्तेमाल करते हैं और संतों, मनीषियों को अपनी लक्ष्मण रेखा नहीं लाँघने की बात कहकर उन्हें केवल भजन कीर्तन, प्रवचन तथा कथा-वार्ता करने की सलाह दे डालते हैं, किंतु उन राजनेताओं को कुंभनदास की उक्ति 'संतन को कहां सीकरी से काम' के मूल में राज सत्ता के प्रति जो तिरस्कार, रोष और विरोध का अंदाज है उसे वे नेपथ्य में ढकेल देते हैं। सच तो यह है कि कुंभनदास ने अपने समय की राजसत्ता का तिरस्कार कर जो चुनौती दी थी, आज की राजसत्ता उन शब्दों को बड़ी चालाकी से इस्तेमाल कर उन्हीं शब्दों को लक्ष्मण रेखा बताती रहती है। दरअसल, संतों को सीकरी से दूर रहने का उपदेश और दूर रखने का षड्यंत्र सत्ता और उसके दरबारी नवरत्न ही रचते हैं। यह बात और है कि सत्ता भ्रम बनाए रखने के लिए प्रायः अपने नवरत्नों में छद्म संत रचनाकार भी रखती आई है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कोई भी राजसत्ता चाहे कितनी भी लोकतांत्रिक ढंग से चुनकर आई हो, सत्ता पर विराजमान होने के बाद इस कदर मद में चूर हो जाती है कि उसे उस आम आदमी का किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नागवार गुजरता है जिसने उसे सत्ता सौंपी है। मौजूदा भारतीय राजनीति की यही विडंबना है।

भारतीय राजनीति के ऐसे हालात में सिद्धेश्वर जी याद दिलाते हैं सोल्जेनित्सिन जैसे ख्यातिप्राप्त लेखक-विचारक के शब्दों की जिसमें उन्होंने कहा था -'किसी समाज में एक बड़े लेखक की उपस्थिति उस देश में दूसरी सरकार के समान है।' कौन सत्ता चाहेगी कि उसके राज्य में समानांतर दूसरी सत्ता हो?

सिद्धेश्वर जी पुनः कहते हैं कि इस देश की मौजूदा संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में सत्ता के सिंहासन पर आसीन राजनेताओं को कार्टून और किताब से डर लगता है। यही कारण है कि नाटक और फिल्म पर प्रतिबंध लगते हैं और लेखक निर्वासन की जिंदगी जीने के लिए विवश किए जाते हैं। साथ ही भ्रष्टाचारी खुलेआम रिश्वत के पैसे से लोगों को चिढ़ाते रहते हैं और नौकरशाह भी उसी की तरफदारी करते हैं, क्योंकि उनके हाथ भी गीले कर छूट जाते हैं। बस यही तो खराबी है हमारे देश की। क्या करेंगे अन्ना हजारे और क्या करेंगे बाबा रामदेव? हमारे देश में तो पूरा का पूरा आंवा ही जल रहा है। तालाब में एक नहीं सारी मछलियाँ ही सड़ी हुई हैं। देश का समूचा आवाम घपलों-घोटालों एवं भ्रष्टाचार तथा महंगाई से पूरी तरह त्राहि-त्राहि कर रही है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी देश की छवि धुमिल हो रही हैं ऐसी स्थिति में देश के राजनीतिक दलों को जनता और राष्ट्र के हित को देखते हुए अपने स्वरूप को बदलने और निख़ारने के लिए गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है और उन्हें अपनी संकीर्ण राजनीति से उबरना ही होगा, क्योंकि इस देश में संकीर्णता पर आधारित राजनीति अधिक दिनों तक नहीं चलने वाली है।

सिद्धेश्वर जी की उपर्युक्त टिप्पणियों से यह स्पष्ट होता है कि चाहे राजनीति हो या समाज, साहित्य हो या संस्कृति इनकी दृष्टि सकारात्मक है। यानी इनकी सोच और विचार मनुष्य को सही बनाने और सही राह दिखाने के लिए है, क्योंकि भौतिकता की अँधी दौड़ और लालच ने प्रायः सभी तबके और क्षेत्र के लोगों को तोड़कर रख दिया है और वे अपने को उपभोक्ता की आँधी से बचा नहीं पा रहे हैं। ऐसे समय में सिद्धेश्वर जी समय और समाज को अपनी कलम की ताकत बनाने की सलाह देते हैं। जिसे समाज की चिंता होगी और जिसके खून में सामाजिक चिंता रची-बसी होगी, वही लेखन कर सकता है।

सिद्धेश्वर जी इस बात से अपनी सहमति जताते हैं कि लोकतंत्र की राजनीति में जब किसी देश या राज्य के प्रमुख की लोकप्रियता परवान पर हो जाती है तो तानाशाही का खतरा बढ़ जाता है और वह मुखिया राजतंत्र जैसा काम करने लगता है। यहाँ तक कि वह कोई भी निर्णय व्यक्ति को देखकर करने लगता है। सामूहिक अथवा विचार आधारित फैसला करने से प्रायः अधिकतर राजनीतिक दल का मुखिया कतराने लगता है। राजनीतिक दल भी अपने मुखिया के प्रभाव और लोकप्रियता को देखकर सामूहिक निर्णय न लेकर उस मुखिया को ही अधिकृत कर देते हैं। इसका प्रतिफल यह होता है कि उस मुखिया के द्वारा चयन किया गया नेता उसका गुलाम हो जाता है और सरकारी निर्णय गलत होने पर भी वह अपना मुँह खोलने से कतराता है।

भारत में भी आज लोकतंत्र धीरे-धीरे राजतंत्र की ओर खिसक रहा है, क्योंकि प्रायः प्रत्येक राजनीतिक दल के मुखिया का अपने दल पर एकाधिकार हो गया है। इसलिए संसद तथा विधान सभाओं में भी उसके द्वारा किए गए गलत फैसले पर कुछ बोलने से सकुचाते थे। दूसरी ओर प्रतिपक्ष में भी डॉ. राममनोहर लोहिया, भूपेश गुप्त, अटल बिहारी बाजपेयी, इंद्रजीत गुप्त, मधु लिमए सरीखे नेता अब नहीं रहे जो जवाहर लाल नेहरू जैसे

लोकप्रिय नेता होने के बाद भी सही को सही तथा गलत को गलत कहने में कभी सकुचाते नहीं थे। प्रतिपक्ष के ये सांसद नेहरू जी के खिलाफ बोलने तथा उनपर लगाम लगाने से कभी बाज नहीं आते थे। इसके मद्देनजर सिद्धेश्वर जी का मानना है कि मंत्रिमंडल के भीतर अथवा सांसदों एवं विधायकों से संपर्क करके सामूहिक रूप से विचार करने पर जनपक्षीय राय बनने की संभावना बढ़ जाती है।

इस संदर्भ में सिद्धेश्वर जी अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि इतना होने के बाद भी राजनीतिक कार्यकर्ताओं की ओर से चुप्पी साधना लोकतंत्र के लिए खतरे की घंटी है, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि अब मुख्यधारा की राजनीति धीरे-धीरे जीवन का हिस्सा मानकर चलती नजर आ रही है। वे यह भी महसूस करते हैं कि आम आदमी अपने अनुभव से यह देख रहा है कि राजनीतिक दलों के मुखिया की यह नीति उसकी दुश्मन है। इसलिए वक्त आने पर आम जनता सत्ता पर काबिज सरकार को भी ठीक उसी प्रकार खा सकती है जिस प्रकार पिछले दिनों बिहार की जनता लालू सरकार को खा गई। इसलिए वैसे मुखिया को वक्त रहते चेत जाना मुनासिब होगा।

(२९) स्वयं गढ़ रहे तकदीर

जीवन को लेकर सिद्धेश्वर जी का खास नजरिया है। बनी बनाई लकीर पर चलने की बजाय वे अपनी राह बनाना बेहतर समझते हैं ओर अपनी तकदीर स्वयं गढ़ते हैं। उनके अपने सपने और आदर्श हैं और आधुनिकता व परंपरा के बीच समन्वय बैठाने की क्षमता भी। हाँ, दकियानूसी उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं, मगर सामाजिक कुरीतियों को दूर करने की अपनी जिम्मेदारी से वे वाकिफ है। बदलते जमाने के साथ वे अन्ना हजारे जैसे व्यक्तित्व से प्रभावित हैं और व्यवस्था की बेहतरी के लिए संघर्ष करते हैं तथा संघर्ष करते युवाओं का सम्मान करते हैं। यही नहीं भ्रष्टाचार के खिलाफ उनकी प्रतिबद्धता का भी सम्मान करते हैं।

व्यस्त जिंदगी जी रहे सिद्धेश्वर जी अपने लिए काम करने वाले ईमानदार लोगों को अबतक खुद के साथ जोड़े हुए हैं। यही नहीं उनकी ईमानदारी और काम के प्रति समर्पण की कद्र करते हुए न सिर्फ उनका ख्याल रखते हैं, बल्कि जब भी अवसर मिलता है, उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। उनकी कामयाबी इन लोगों के सहयोग के बिना संभव नहीं। सामाजिक और साहित्यिक जीवन में लंबा सफर तय कर चुके सिद्धेश्वर जी

अपना ख्याल रखने वालों को खास तरजीह देते हैं। संस्कृत बोर्ड में तीन साल तक रहने के दौरान उनके कार्यक्रमों में साथ काम करने के बावजूद मुझे यह महसूस होता है कि वह आज भी नहीं बदले। वे अपने काम के प्रति उसी तरह समर्पित हैं। रत्नगर्भा धरती तो समर्पण चाहती है। आज बीज डाल दीजिए, उष्मा, नमी और अपनी स्नेहमयी गोद का प्यार-दुलार देकर वह उसमें अंकुरण पैदा कर देती है। तना, शाखाएँ, पत्र-पुष्प और बीजों की पुनः सृष्टि हो जाती है। सिद्धेश्वर जी काम के प्रति समर्पण का भाव नित्य ही लोगों में चेतनता उड़ेल रहा है और हँसते रहने का संदेश दे रहा है।

एक कहावत है- ऐसा मानो कि तुम सदा जीवित रहोगे, पर रहो ऐसे जैसे आज ही मर जाओगे।' सिद्धेश्वर जी ने इसी कहावत को अबतक अपने जीवन में चरितार्थ किया है। लोगों का प्यार इनके जीवन में गर्माहट बनाए रखता है और जीने का ढांढ़स देता है, उनको किसी तरह की खतरनाक बीमारियाँ नहीं होतीं। सिद्धेश्वर जी भी अबतक किसी भी खतरनाक बीमारियों से बचते रहे हैं जिसकी सबसे बड़ी वजह इनकी दिनचर्या का दमदार होना है। समय पर खाना और सोना इनकी दमदार दिनचर्या में से महत्वपूर्ण है। तूफानों और भारी बारिश के बावजूद मुस्तैदी से झूमते पेड़ों से इन्हें सीख मिलती है जिसकी वजह से इनकी सोच सकारात्मक है।

'जो है जैसा है अच्छा है' का दर्शन इन्हें जीवंत बनाए रखता है। उकताऊपन, उदासीनता, निराशाजनक बातें, दुख को ओढ़े रहने की आदतें जीवन को छोटा करती हैं। दिनचर्या में आने वाले उतार-चढ़ावों को आशावादिता के साथ जीने की आदत इनके जीवन में किसी दवा से कम नहीं होती। खुलकर हँसी-मजाक करना इनकी आदत है। इनके दोस्तों की सूची भी लंबी-चौड़ी है। मसखरी और खिंचाई के मौके भी उनके पास दूसरों से अधिक होते हैं। बुरे दिनों या समस्याओं पर उनके पास विमर्श करने के लिए हर तरह के साथी होते हैं। वे घुटन के साथ जीना पसंद नहीं करते। उनकी मस्ती उनको खुशहाली और सुकून देने वाली होती है। वे दुखों और नैराश्य को ज्यादा ढोते नहीं हैं। सिद्धेश्वर जी साधारण जीवन जीते हैं जिसमें सबसे ज्यादा राग-रंग, विविधताएँ, सुंदरता और संघर्ष है। यह साधारण ही सबसे असाधारण है। यह साधारण जीवन ही इन्हें संतोष देता है। इन्हें साधारण जीवन जीते हुए कर्म पर विश्वास है। वे हमेशा कहते हैं कि अच्छे और बुरे कर्म ही भाग्य का निर्माण करते हैं। इसलिए वे अपने भाग्य के निर्माता खुद है। बस! अच्छे कर्म करते जाना है।

३०. खुशहाल दांपत्य जीवन का राज

अपनी खुशहाल जिंदगी का राज बताते हुए सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि सप्ताह में कम से कम एक बार पत्नी से किसी बात पर चकचुक होने से हमदोनों के बीच बेहतर तरीके से अपनी बात एक दूसरे से शेयर कर पाते हैं। मजेदार बात यह है कि जैसे-जैसे हमदोनों की उम्र बढ़ती जाती है हमदोनों के बीच होने वाले इन झगड़ों की संख्या भी बढ़ती जाती है। वे पुन: कहते हैं कि श्रीमति जी हमारी छोटी से छोटी भूलों को नजरअंदाज नहीं करतीं। जैसे भूल से मैंने पानी का नल खुला छोड़ दिया या छत पर धूप खाने के बाद चटाई नीचे के तल पर लाना भूल गया तो मुझे बिना दो बात कहे उन्हें शांति नहीं मिलती। और तो और हमारे मित्र या शुभेच्छुओं के साथ ओसारे पर जब बाचतीत में हमसब मशगूल रहते हैं तब उसी वक्त हमारी भूल को लोगों के सामने रखना जैसे उन्होंने अपनी आदत बना रखी है, ताकि मैं उनलोगों के समक्ष अपनी शर्मिंदगी महसूस कर सकूँ। संभवत: मेरी शर्मिंदगी महसूस करने में मेरी श्रीमति जी को मजा आता है और वह राहत अनुभव करती हैं। सच मानिए, तो इस बकझक और उन्हें चिढ़ाने में मुझे भी अच्छा लगता है और लिखने की प्रेरणा भी।

वैसे यह भी सच है कि मियां-बीबी की कहासुनी में ऐसी बातें अक्सर जुबान पर आ जाती हैं जो एक-दूसरे को अच्छी नहीं लगती हैं। मगर हमारे यहाँ तो प्रीत के लिए भी भय होना जरूरी माना गया है। तुलसीदास भी लिख गए हैं-'भय बिनु प्रीत होई नहीं देवा।' बेहद अनुशासन प्रिय व समय के पाबंद सिद्धेश्वर जी की पत्नी श्रीमति बच्ची प्रसाद की काम के प्रति प्रतिबद्धता देखते ही बनती है। जीवन व परिवार के मूल्यों से भी उनका गहरा जुड़ाव है। सिद्धेश्वर जी भी अपनी जीवन संगिनी व परिवार के प्रति पूरी तरह समर्पित हैं। 50 वर्ष के लंबे वैवाहिक जीवन के खट्टे-मीठे हर पल का उन्होंने बड़ी सहजता से सामना करते हुए 8 जुलाई, 2012 को अपने वैवाहिक जीवन का स्वर्ण सालगिरह सादे किंतु बहुत आकर्षक ढंग से मनाया। आज भी इस दंपति की जिंदादिली औरों के लिए मिसाल है। सिद्धेश्वर जी बताते हैं कि 8 जुलाई, 1962 को उनकी शादी हुई और तब से उनकी संगिनी ने जीवन के हर कदम पर उनका साथ दिया। नौकरी के दौरान यह महसूस हुआ कि जीवन में संगिनी के क्या मायने हैं। घर की सारी पारिवारिक जिम्मेदारी पत्नी ने ले ली। शादी के वक्त ही उन्होंने सोच रखा था कि दो या तीन बच्चों का उनका परिवार होगा, यही हुआ। यही है उनके खुशहाल दांपत्य जीवन का राज।

डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

जन्म तिथि : 27 दिसम्बर, 1933

जन्म स्थान : ग्राम-सहाजितपुर, जिला-सारण

शिक्षा : एम. ए., पटना विश्वविद्यालय
पीएच.डी., लंदन विश्वविद्यालय

कार्यक्षेत्र : 1. बिहार तथा भागलपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष
2. 1986 से 1988 तक कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति
3. पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, राँची विश्वविद्यालय, राँची तथा विनोवा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग में विजिटिंग प्रोफेसर तथा इमेरिटस फेलो
4. इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज, शिमला में 2003 से 2006 तक फेलो,
5. राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, भारत सरकार द्वारा 2011 में प्रायोजित 15वें विश्व संस्कृत काँग्रेस के विभिन्न शैक्षिक सत्रों के अध्यक्ष

रचना : विश्व प्रसिद्ध-**Sanskrit Syntax and Grammar of Case**

सम्मान : ग्रेट ब्रिटेन के कॉमनवेल्थ स्कॉलरशिप कमीशन द्वारा भाषा विज्ञान में पीएच. डी. के लिए इन्हें स्कॉलरशिप मिला।

अभिरुचि : अध्ययन, लेखन और पर्यटन

स्थायी पता : 75सी, पाटलीपुत्र कॉलोनी, पटना

देहावसान : 28 अगस्त, 2016 को 83 वर्ष की उम्र में

डॉ...

जन्म तिथि :

जन्म स्थान :

शिक्षा :

कार्यक्षेत्र :

रचना

सम्मान

अभिरुचि

स्थायी पता

देहावसान

लेखक : डॉ॰ ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

संपादकद्वय

जयप्रकाश मल्ल मनोज कुमार

प्रकाशक - सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन

दिल्ली-92